उपहार

पाठकों से छिपा नहीं है कि भारत में प्रति वर्ष कितने अधिक बालकों की मृत्यु होती है। इसका कारण सौरि-गृह तथा बालकों के पालन-पोषण सम्बन्धी असावधानी के साथ-साथ हमारी माताओं में आयुर्वेद के ज्ञान का अभाव भी है। मूर्ख दाइयों के उपचार द्वारा योग्य सन्तान की प्राप्ति असम्भव है। पहले ज़माने में माताओं के विदुषी होने के कारण बालकों की यह दशा नही होती थी। समय के फेर से हमारे समाज में इतनी अज्ञानता फैल गई है कि हम लोगों का स्वास्थ्य दिन-ब-दिन बिगडता जा रहा है। ऐसी दशा में प्रत्येक देश-प्रेमी का कर्तव्य है कि वह अपनी शक्ति के अनुसार समाजोन्नति के लिए पूरा प्रयत्न करे, जिससे हम फिर उसी तरह दीर्घायु, हृष्ट-पुष्ट और श्रेष्ठ मस्तिष्क वाली सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ हो सकें। परन्तु ऐसी दशा को हम तभी प्राप्त हो सकते हैं जब कि हमारे बच्चों का जीवन बाल्यावस्था से ही निरोग और सुखमय हो। इसी बात को लक्ष्य में रख कर मैंने इस पुस्तक में जन्म से बालकोपयोगी सभी पालन-पोषण तथा रोगादि के विषय में आर्ष-ग्रन्थों से तथा अपने अनुभव से पूरा प्रकाश डालने का प्रयास किया है। यदि इससे जनता की भावी-सन्तान का कुछ भी उपकार हो सकेगा, तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा।

—धर्मानन्द विल्वपाल

क्रमाङ्क	विषय	पृष्ठ

पहला परिच्छेद

१—बाल-परिचर्या १

(१) शिशु की प्रसवानन्तर परिचर्या ... २

(२) मृतप्राय शिशु का उपचार ४

(३) नाभि-रज्जु का स्पन्दन ४

(४) नाल काटना ७

(५) विवृद्ध मस्तक ७

(६) अङ्ग-प्रत्यङ्गों का चिपका रहना ... ७

(७) जिह्वा-स्तम्भ ८

(८) मल-द्वार का अवरोध ६

(६) नाभि-नाल से रक्त-स्राव ६

(१०) नाभि-पाक १०

(११) बेडौल अङ्गों का ठीक करना... ... ११

(१२) बालक का स्नान १२

(१३) शरीर का ताप १३

(१४) नवजात शिशु का स्नानीय जल ... १४

(१५) बालकों का पालन-पोषण १५
(१६) बालकों का निवास-स्थान १६
(१७) वायुसेवन १७
(१८) बालक का स्नान १७
(१९) बालक के आभूषण १८
(२०) बालक के कपड़े १९
(२१) वस्त्रों को धूप देना २१
(२२) बालक की सफ़ाई २१
(२३) मन्त्र, तावीज़ आदि २१
(२४) कटि-सूत्र २२
(२५) जन्म-घुट्टी २३
(२६) साधारण जन्म-घुट्टी २३
(२७) बालक का दूध-पान २५
(२८) बालक के लिए ऊपर का दूध पिलाना ... २७
(२९) अवस्थानुसार बालक को दूध पिलाने का समय २९
(३०) बालोपयोगी मोदक ३२
(३१) बालक को भूमि पर बैठाना ३३
(३२) बालक की निद्रा ३४
(३३) बालक का अति-भोजन ३५
(३४) आहार-दोष ३७
(३५) कोष्ठ-रोग... . . . ३९
(३६) बालक की सर्दी ४१
(३७) कान और शिर में तेल डालना ... ४२

(३८) बालक का नासिका आदि खुरचना ... ४३

(३९) दाँतों का निकलना ४४

(४०) मिट्टी आदि खाना ४८

(४१) बालकों को डराना ४९

(४२) बालक का खेलना ५०

(४३) टीका लगवाना ५१

(४४) बालक को घृत-पान ५३

(४५) बालक के लिए अवलेह ५६

(४६) उबटन और स्नान ५६

(४७) बालक का व्यायाम ५७

(४८) बालक को गर्म रखना ५९

(४९) बालक के सिर का टोपा ६०

(५०) सोने के समय के वस्त्र और बिछौने ... ६०

(५१) नींद और विश्राम ६१

(५२) बालक को नियमित आदत का अभ्यास... ६२

(५३) कायमी कब्ज़... ... ... ६५

(५४) बच्चों की ख़राब आदतें . .. ६८

(५५) बिस्तर पर दस्त-पेशाब करना ... ६८

(५६) मूत्रेन्द्रिय को मसलना ६९

(५७) झूले में हिलाना या गोद में लेना ... ७०

(५८) हकला कर बोलना ७०

(५९) नशीली चीज़ों का सेवन ७०

(६०) बालकों से बर्ताव ७१

दूसरा परिच्छेद

२—बाल-रोग-परिज्ञान... ... .. ७५

(१) बालकों का पथ्यापथ्य ७६

(२) बालकों के रोग और चिकित्सा ... ८०

(३) बालकों के लिए औषधि-मात्रा ... ८२

(४) ख़ाली पेट में औषधि का निषेध ... ८४

तीसरा परिच्छेद

३—बाल-रोग-चिकित्सा ८६

(१) क्षीरदोष-जन्य-रोग ८६

(२) क्षीरालसक-रोग ६५

(३) हरे-पीले दस्त और दूध का उलटना ... ६७

(४) पारिगर्भिक-रोग १००

(५) कुकूणक-रोग १०२

(६) दाँत निकलना १०३

(७) दाँत न निकलने का कारण ... १११

(८) स्वप्न में दाँतों का चबाना ११२

(९) सूखा-रोग ११२

(१०) गुदपाक ११७

(११) दुग्ध-वमन ११९

(१२) दूध न पीना १२१

(१३) धनुष्टङ्कार १२२

(१४) आक्षेप १२५

(१५) मूर्च्छा १२८
(१६) ज्वर १३१
(१७) सविराम-ज्वर १३१
(१८) एक-ज्वर १३७
(१९) विषम-ज्वर १३८
(२०) ज्वर-विकार १४१
(२१) ज्वर की सामान्य चिकित्सा ... १४५
(२२) ज्वरातिसार १५०
(२३) अतीसार १५३
(२४) रक्तातिसार १५८
(२५) ग्रहणी १५९
(२६) सर्दी की खाँसी १६२
(२७) पसुली (डब्बा) १६६
(२८) कूकर-खाँसी या काली-खाँसी ... १७६
(२९) साधारण खाँसी १८०
(३०) श्वास-रोग १८३
(३१) निमोनिया (फुफ्फुस-प्रदाह) ... १८४
(३२) क्षय-कास १८६
(३३) शोष या मेरेसमस १८८
(३४) यकृत्-रोग १९३
(३५) डिफ़थेरिया १९८
(३६) इन्फ़्लुएंज़ा २०३
(३७) कृमि-रोग २०५

(३८) मृत्तिका-भक्षण २११
(३९) बालकों का हैज़ा २१३
(४०) कण्ठमाला २१७
(४१) अन्त्र-वृद्धि २२०
(४२) अण्ड-वृद्धि २२२
(४३) गुदा-भ्रंश या काँच निकलना ... २२४
(४४) उपदंश २२६
(४५) ऐक्ज़िमा या छाजन २२९
(४६) पामा या खुजली २३०
(४७) खाल का लग जाना २३१
(४८) गञ्ज-रोग २३३
(४९) विसर्प-रोग २३५
(५०) साधारण विसर्प २३७
(५१) व्रण २३८
(५२) अजगल्ली या इल्ला २४०
(५३) वृषण कच्छू २४१
(५४) अहिपूतन-रोग २४२
(५५) शोथ या सूजन २४४
(५६) आँख दुखना २४४
(५७) रोहे अथवा खुथुवा २४९
(५८) शुक्र-रोग या फ़ूली २५२
(५९) मुख-क्षत २५४
(६०) कान का दर्द २६०

(६१) कान बहना २६२
(६२) मूत्राघात २६५
(६३) पथरी २६७
(६४) मूत्रकृच्छ्र २६९
(६५) शय्या पर मूतना २७०
(६६) बहुमूत्र २७१
(६७) अफरा २७५
(६८) उदर-शूल २७७
(६९) अजीर्ण २७९
(७०) रक्त-पित्त या नक्सीर २८०
(७१) लू लगना २८२
(७२) अलाई निकलना २८३
(७३) तृष्णा २८४
(७४) हिचकी २८५
(७५) विस्फोट या अफोह २८६
(७६) हकलाना या तुतलापन २८८
(७७) काग का लटक आना २९१
(७८) नाभि जाना २९२
(७९) हँसली जाना २९३
(८०) मृगी २९३
(८१) पाण्डु-रोग २९९
(८२) रक्त-ज्वर (लाल बुख़ार) ३०२
(८३) शीतला (डॉक्टरी मत) ३०५

(८४) शीतला (आयुर्वेदिक मत) ... ३१०

(८५) शीतला में चिकित्सा की उपेक्षा ... ३२२

(८६) शीतला से बचने के उपाय ... ३२४

(८७) बालक का अधिक रोना ३२६

(८८) बालक की दुर्बलता ३३०

(८९) दैवी दुर्घटनाएँ ३३१

(९०) आग से जलना ३३२

(९१) चोट लगना ३३४

(९२) जल में डूबना ३३५

(९३) मकड़ी फर जाना ३३६

(९४) मक्खी का काटना ३३७

(९५) ततैया या बर्र का काटना ३३८

(९६) बिच्छू का काटना ३३९

(९७) कुत्ते का काटना ३४०

(९८) अफ़ीम का विष ३४०

(९९) सङ्खिया का विष ३४१

(१००) धतूरे का विष ३४२

(१०१) ग्रह-बाधा ३४३

(१०२) ग्रह-बाधा के लक्षण ३४४

(१०३) ग्रह-बाधा की चिकित्सा ३५०

बाल-परिचर्या
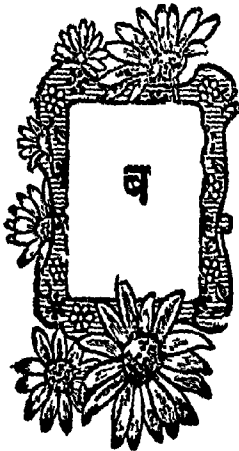
ड़ी उमर में प्राय. सबको अपने हिता-हित का कुछ न कुछ ध्यान अवश्य रहता है। सभी इस बात की चेष्टा में रहते हैं कि उनको कभी कोई दुःख न मिले। परन्तु बालकों के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। उनका सुख-दुःख उनके माता-पिताओं के ऊपर निर्भर रहता है। विशेष कर प्रसव के समय तथा प्रसवानन्तर होने वाले रोगों तथा कष्टों का भार उनकी दाइयों पर रहता है। ऐसी दशा में जब कि शिशु भूमिष्ट हो जाता है तब उसकी कुल जिम्मेदारी दाइयों तथा परिचारिकाओं पर रहती है, शिशु के भूमिष्ट होने पर भी प्रसव-कालीन अनेक रोगों तथा त्रुटियों के कारण पुत्र-सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए शिशु

के भूमिष्ट होने पर तत्काल या उसके बाद उसकी किस प्रकार परिचर्या तथा पालन-पोषण करना चाहिए, इस बात को जानने की अत्यन्त आवश्यकता है। यह बात भी ध्यान में रखने की है कि शिशु की परिचर्या तथा पालन-पोषण सम्यक रूप से होने के लिए शिशु के वास-गृह (सूतिका-गृह) का शास्त्रानुकूल होना अत्यन्त आवश्यकीय है। तभी शिशु प्रसूत-काल सम्बन्धी अनेक रोगों से बच सकता है। और जीवन-यात्रा को सकुशल समाप्त कर सकता है।

शिशु की प्रसवानन्तर परिचर्या

अधिकांश बालक भूमिष्ट होते ही रोने लगते हैं। पैदा होते ही बालक का रोना एक अत्यन्त शुभ लक्षण है और उसके स्वास्थ्य तथा निरापत्ति का द्योतक है। यदि बालक पैदा होते ही या पैदा होने के कुछ देर बाद भी न रोवे तो उसकी उसी समय यत्नपूर्वक परीक्षा करनी अत्यन्त आवश्यक है, कि शिशु सजीव, निर्जीव अथवा अवसन्न (मूर्च्छित) किस प्रकार की दशा में उत्पन्न हुआ है। इसलिए उसके शरीर में थपकी लगानी चाहिए जिससे जाग उठे और सचेत हो जाय। निर्जीव अथवा अवसन्न अवस्था मे उत्पन्न होने पर हाँपने या कराहने आदि का कोई शब्द सुनाई नहीं देता। ऐसी दशा में किसी चतुर वैद्य को बुला कर चिकित्सा करानी चाहिए अथवा आगे लिखे कृत्रिम उपायों से काम लेना चाहिए। कभी-कभी सजीव अवस्था में उत्पन्न होने पर भी

बालक नहीं रोता है । इसका कारण यह होता है कि बालक के मुख में गर्भ-कालीन एक प्रकार का कफ जमा रहता है जिसके कारण वह शब्द निकालने में असमर्थ रहता है । उस कफ को चतुर दाइयाँ ही पहचान सकती हैं । ऐसी दशा में कोई चतुर दाई शीघ्र ही बालक के मुख तथा नासिका के छिद्रों में अँगुली डाल कर कफ को अच्छी तरह निकाल मुख पोंछ देवे । इससे बालक शीघ्र ही श्वास लेने लगता है । इस उपाय के न करने से सजीव अवस्था में उत्पन्न हुआ बालक भी श्वास-रोध् के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।

बालक के न रोने का दूसरा कारण यह भी है कि बालकों के गले में प्रायः एक नार (नली) लिपटा हुआ रहता है, जिससे बालक रोने में असमर्थ रहता है । इसलिए पहले उसे छुड़ा देना चाहिए । कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बालक थैली (गर्भ-कोष) में लिपटा हुआ पैदा होता है । ऐसी दशा में चतुर दाई को आवश्यक है कि वह शीघ्र ही होशि-यारी से उसे हाथ या शस्त्र के द्वारा काट देवे, परन्तु शस्त्र प्रयोग द्वारा काटने में बालक के अङ्गों की पूरी रक्षा करनी चाहिए । पूर्वोक्त रीति से थैली को फाड़ने या काटने से उसका जल निकल जाता है और बालक श्वास लेने में समर्थ होता है । इस थैली में देर तक रहने से बालक की मृत्यु की पूरी सम्भावना रहती है । यदि बालक किसी प्रकार की नस से लिपटा हुआ पैदा हो तो उसे भी तुरन्त ही छुड़ा देना चाहिए,

नहीं तो वह इसके कारण हाँप कर मर जाता है। जो बालक हाँपता हुआ पैदा होता है उसको चैतन्य करने के लिए उसके मुख की लार निकाल कर मुख में शीतल जल के छींटे देने चाहिएँ। इन क्रियाओं से बालक शीघ्र रो उठेगा। यदि ऐसा करने पर भी न रोवे तो उसको आकण्ठ (गले तक) शीतल जल में डुबो कर शीघ्र ही बाहर निकाल लेना चाहिए, इससे बालक रोने लगता है। इतने पर भी न रोवे तो दो टबों को लेकर एक में शीतल और दूसरी में गरम (गुन-गुना), जिसे बालक सह सके, जल भरे। फिर बालक को पहले शीतल जल में दो-तीन मिनट गले तक डुबो कर रक्खे और बाहर निकाल कर तुरन्त तीन मिनट तक गरम जल में स्नान करावे। इससे बालक चैतन्य हो जाता है।

मृतप्राय शिशु का उपचार

यदि बालक मृतप्राय: अवस्था में पैदा हो अथवा भूमिष्ट होने के पश्चात् अल्पक्षण में ही उसके जीवन के सम्पूर्ण लक्षण अदृश्य हो जायँ तो ऐसी दशा में बहुत शीघ्र उसके पुनर्जीवन के लिए चेष्टा करनी चाहिए। इसके लिए आगे लिखे अनेक प्रकार के उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है।

नाभि-रज्जु का स्पन्दन

जब तक माता तथा बालक का सम्बन्ध-विच्छेद न हो, अर्थात् परिस्रव (फूल) न गिरा हो और नाभि-नाल न

काटी गई हो तो उसको धीरे से तर्जनी अँगुली तथा अँगूठे से दबा कर उसमें स्पन्दन शक्ति है कि नहीं, इसकी पूर्ण ध्यान के साथ परीक्षा करे। यदि उसमें स्पन्दन (गति) अनुभव होता हो, तो जब तक बालक जोर से न रोवे उसको (नाल को) काटना किसी भी दशा में उचित नहीं है। क्योंकि जब तक उसमें स्पन्दन होता है तब तक यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि बालक के सम्पूर्ण शरीर के शोणित-सञ्चालन का कार्य पूर्ण नहीं हुआ है। इस उपाय से कभी-कभी श्वास पुनः आरम्भ हो जाता है और बालक जीवित हो जाता है।

यदि बालक का श्वास-कार्य स्वतः आरम्भ न होवे तो उसके लिए शीघ्र नाभि-रज्जु या नाल को दबा कर देखना चाहिए। यदि उसका स्पन्दन अत्यन्त धीमा हो अथवा उसमें किसी प्रकार का सन्देह जान पड़े और बालक में जीवन के कोई भी चिह्न न दिखाई दें, तो एक मिनट के अन्दर बिना देर लगाए, नाभि-नाल काट डालना चाहिए। इसके पश्चात् निम्न-लिखित कृत्रिम उपायों का अवलम्बन करना चाहिए।

नाभि-नाल काट कर बालक के वक्षस्थल तथा मुख-मण्डल में शीतल जल लगावे और उसके हृदय तथा चूतड़ों को जल्दी-जल्दी हलके हाथों से थपथपावे इसके बाद बालक को आधे मिनट तक १०२ डिग्री के गरम जल में डुबो कर उसी समय पोंछ डाले। तब उसको दोनों तरफ़ बग़ल में हाथों

से पकड़ कर ऊपर को उठा कर आगे और पीछे की तरफ दो-तीन बार हिलाना या झकोरना चाहिए। इस प्रकार करने से वायु के सञ्चालित होने से उसकी जीवनी शक्ति उत्तेजित होती है।

पूर्वोक्त उपाय के विफल होने पर निम्न-लिखित उपाय द्वारा बालक को श्वासोत्पादन कराना चाहिए। बालक का शैया सीधा सुला कर एक आदमी उसकी जीभ को अँगुली से पकड़ कर उसके मसूड़ों के नीचे दबाए रक्खे। दूसरा आदमी बालक की दोनों कुहनियों को पकड़ कर उसके माथे की तरफ खींच कर उनको परस्पर मिलावे। इससे बालक का वक्षःस्थल फैलता और चौड़ा होता है, तथा उसमें अधिक प्रमाण में वायु प्रवेश करता है। इसके बाद कुहनियों को धीरे-धीरे दृढ़ता के साथ सीधा रख कर नीचे की तरफ पसुलियों तक झुका लावे और आहिस्ता-आहिस्ता दोनों पसुलियों को दबावे। इस प्रकार हाथों के नीचे करने से बालक का वक्षःस्थल तथा दोनों पसवाड़े दब कर कुछ झुक जाते हैं और बालक के श्वास-यन्त्र (फेफड़े) से वायु स्वतः बाहर निकलती है। यह उपाय तब तक बार-बार करते रहना चाहिए जब तक श्वास अपने आप ही न चलने लगे। इस प्रकार जब श्वास स्वतः चलने लगता है तो बालक ज़ोर से चिल्ला उठता है। यहाँ पर यह बात भी ध्यान में रखने की है कि जब तक बालक के शरीर में जीवन के

सामान्य लक्षण, जैसे कि शरीर का गरम रहना आदि, विद्यमान रहें तब तक इस उपाय का अवलम्बन करना चाहिए।

नाल काटना

पूर्वोक्ति उपायों द्वारा या स्वतः बालक जीवित उत्पन्न होने पर उसका नाभि-नाल काटना चाहिए। अवस्था विशेष में काटने को पहले ही लिख दिया है। नाल काटने की विधि हमारी बनाई "स्त्री-रोग-विज्ञानम्" नामक पुस्तक में विस्तारपूर्वक लिखी हुई है। उसके अनुसार नाल काटना चाहिए।

विवृद्ध-मस्तक

कभी-कभी बालक के पैदा होते समय उसका मस्तक बहुत फूला हुआ रहता है, जिसको देख कर स्वभावतः मन में भय उत्पन्न होता है। परन्तु वास्तव में मस्तक फूल कर बड़ा होने से किसी प्रकार का भय नहीं समझना चाहिए; क्योंकि कुछ दिनों में वह अपने आप कम होकर ठीक हो जाता है।

अङ्ग-प्रत्यङ्गों का चिपका रहना

बालक के स्वस्थ अवस्था में उत्पन्न होने पर दाई को यह देखना अत्यन्त आवश्यक है कि उसके सब अङ्गो-प्रत्यङ्ग ठीक हैं अथवा कहीं पर जुड़े या बेडौल हैं। जैसे कि बहुत

से मनुष्यों की अँगुलियाँ आपस में जुड़ी हुई देखने में आती हैं। जिह्वा-स्तम्भ, मलद्वार का अवरोध, नेत्र और पलकों का जुड़ा रहना, नाक-कान आदि इन्द्रियों का बेडौल होना आदि ऐसी त्रुटियाँ हैं जिन पर जन्म के समय अच्छी तरह ध्यान देना आवश्यकीय है।

यदि बालक के उत्पन्न होते समय कोई अङ्ग आपस में जुड़ा दीख पड़े तो उसे शीघ्र ही किसी चतुर सर्जन या दाई से नश्तर द्वारा अलग-अलग करा देना चाहिए। चीर-फाड़ का काम आजकल की मूर्खा दाइयों के द्वारा कराने से बड़ी हानि होती है, क्योंकि वे चीर-फाड़ में कुण्ठित-शस्त्र (चाकू आदि) से काम लेती हैं। उसके न होने या काम न देने पर काँच को तोड़ कर उसकी पैनी धार से चीरती हैं, जिससे बालक के रक्त में काँच का विष मिल जाता है और उससे अनेक रोग और खराबियाँ उत्पन्न होती हैं।

जिह्वा-स्तम्भ

जो बालक स्वस्थ अवस्था में पैदा होते हैं वे आसानी से स्तनों को दबा कर दूध पी सकते हैं। यदि कोई बालक स्वस्थ जान पड़ता हुआ भी स्तन पान नहीं कर सके तो उसके लिए विना विलम्ब किसी सुचिकित्सक को बुलाना चाहिए। चिकित्सक को देखना चाहिए कि बालक की जिह्वा मे किसी प्रकार की जड़ता तो नहीं

है या वह बन्धनियों के जुड़ने से बँधी तो नहीं है, इन बातों का अच्छी तरह निरीक्षण करना आवश्यक है। जब तक योग्य चिकित्सक न मिल सके तब तक बालक को रुई के फोए से या चाय पीने वाले चम्मच से दूध पिलाना चाहिए। यह रोग दुखदाई माना जाता है। पर यह बहुत कम बच्चों को होता है और होने पर सहज में ही दूर हो जाता है। पर बालक यदि दूध न पीए तो उसको एकाएक जिह्वा-स्तम्भ रोग-ग्रस्त समझ लेना असङ्गत है, क्योंकि अन्यान्य कारणों से भी बालक स्तन-पान करने में असमर्थ रहता है।

मलद्वार का अवरोध

बालक के जन्म लेने के १२ घण्टे बाद तक यदि उसे दस्त न हो तो उसके गुदाद्वार की परीक्षा करनी चाहिए। इसके लिए प्रायः पान के डण्ठल को या एक पेन्सिल के बराबर मोटे और डेढ़ इञ्च लम्बे साबुन के टुकड़े को गुदा में डालने से दस्त ठीक-ठीक होने लगता है। कभी-कभी बालक की गुदा में एक चौड़ा चमड़े का टुकड़ा अटका रहता है। ऐसी दशा में सुतीक्ष्ण शस्त्र प्रयोग से उसको काट डालना ही सबसे अच्छा उपाय है।

नाभि-नाल से रक्तस्राव

यदि नाल काटने के बाद उससे रक्त बहता हो तो नाभि-

कुण्ड के समीप उसमें एक दृढ बन्धन बाँध देना चाहिए। इससे रक्त बन्द हो जाता है।

नाभि-पाक

नाल काटने के समय वायु प्रवेश करने से, या काटने में असावधानी होने से बालक की नाभि फूल कर बेर या आँवले के सदृश होकर बाहर निकल आती है, अथवा पक कर पानी सा बहने लगता है।

यदि नाभि-पाक मे सूजन हो तो पीली मिट्टी को पानी में सान कर गोला बना ले फिर उसको सुखा कर अग्नि में तपा कर गो-दुग्ध मे बुझा कर उसका गरम-गरम सेक करे। यदि नाभि-पाक नाल के खींचने से हुआ हो तो कपड़े पर मोम का मरहम लगा कर ढीला बाँध देवे अथवा एक कपड़े को कडुवे या गोले के तेल में भिगो कर लगा दे। धनिया की पत्ती (हरी) पीस कर लेप करने से नाभि-पाक में बहुत लाभ होता है। अथवा फूल प्रियङ्गु, मुलेठी, लोध और हल्दी दो-दो तोले लेकर जल के साथ सिल पर बारीक पीस कर, उसको डेढ़ पाव काले तिलों के तेल में डेढ़ सेर पानी के साथ पका लेवे। पानी के जल जाने पर उतार कर छान लेवे। इस तेल को दिन में तीन-चार बार लगाने से नाभि-पाक अच्छा हो जाता है। यदि नाभि में से पीव अधिक निकलता हो तो पहले उसे त्रिफला के काढ़े से धोकर इस तेल को लगावे अथवा नाभि को धोकर उसमें "जात्यादि तैल" लगा दिया करे।

बेडौल अङ्गों का ठीक करना

पहले बताया जा चुका है कि बालक के जन्म के समय यदि कोई अङ्ग जुड़ा हो या बेडौल हो तो उसको उसी समय उचित उपाय द्वारा ठीक कर देना चाहिए—अन्यथा क्षण भर के आलस्य से जन्म भर के लिए बालक को दुःख भोगना पड़ता है।

नासिका के चपटी होने पर उसको दोनों हाथों की अँगुलियों से धीरे-धीरे सूत कर ऊपर को उठा कर ऊँची और सुडौल बना देना चाहिए। इसी प्रकार मस्तक के लम्बा होने पर तथा चेहरे के बहुत लम्बा होने पर होशियारी के साथ बालक के मस्तक तथा ठोड़ी पर एक सुडौल पट्टी बाँध देवे। इससे चेहरा और मस्तक दोनों ठीक आकार में आ जाते हैं। हाथ-पैर आदि अङ्गों के टेढ़े होने पर उसी समय उनमें तेल लगा कर उनको धीरे से सीधा कर देना चाहिए! कानों के मिले रहने पर उनको भी चीर कर ठीक कर देना चाहिए। जन्म-समय की इस थोड़ी सी सावधानी से अङ्ग सदा के लिए सुडौल और दोष-रहित बन जाते हैं; क्योंकि उस समय शरीर की हड्डी तक इतनी कोमल होती है कि उसको छोटे वृक्ष की टहनी की तरह जिधर चाहो, झुका या मोड़ सकते हो। परन्तु वही हड्डी वायु के लगते ही धीरे-धीरे इतनी कड़ी हो जाती है कि फिर उसका झुकाना कठिन हो जाता है।

बालक का स्नान

नाभि-नाल के काटने के बाद ही बालक को स्नान कराना चाहिए। स्नान कराने से पूर्व मृदु गुण वाला कोई तेल जैसे चन्दनादि या लाक्षादि तैल, बालक के सर्वाङ्ग में, और विशेषतः बग़ल, रानों, लिङ्ग के नीचे, ग्रीवा के नीचे तथा अँगुलियों के बीच में, जहाँ-जहाँ पर अङ्ग-प्रत्यङ्ग आपस में जुड़े रहते हैं, अच्छी तरह मल देना चाहिए। इसके बाद एक सूखा हुआ फ़लालैन का टुकड़ा लेकर बालक के सर्वाङ्ग को अच्छी तरह पोंछ देना चाहिए। इस प्रकार बालक के शरीर में जो एक प्रकार का आटे की लेई के सदृश पदार्थ (लेची) चिपका हुआ रहता है, वह साफ हो जाता है और बालों की जड़ के साफ होने से त्वचा का कार्य उचित रूप से होने लगता है। त्वचा के मैल को निकालने के लिए पुरानी रीति यह है कि बालक की नाल काट कर उसके शरीर में बेसन मल कर गरम पानी से स्नान कराया जाता है।

फ़लालैन से शरीर पोंछने के बाद बालक को गुनगुने जल में साबुन लगा कर स्नान कराना चाहिए। किन्तु साबुन लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि बालक के मुख तथा आँखों में साबुन न लगने पावे, क्योंकि इसके लगने से बालक को बहुत हानि पहुँचती है। इसलिए बालक का

मुँह बिना साबुन लगाए शुद्ध जल से धोना चाहिए। इसी का नाम बालक का प्रथम स्नान है। यह जितना शीघ्र और होशियारी से कराया जायगा उतनी ही बालक की त्वचा साफ-सुथरी होकर पामा, कच्छु (खाज) आदि चर्म-रोगों के आक्रमण से बची रहेगी।

शरीर का ताप

बालक के जन्म के समय सूतिकागार का गरम रखना अत्यन्त आवश्यक है। सूतिका-गृह के आवश्यकता से अल्प या अधिक प्रमाण में गरम होने से हानि होने की सम्भावना रहती है, इसलिए सूतिका-गृह में मध्यम दर्जे की गर्मी रहनी चाहिए। पहले इस देश मे सूतिका-गृहों में अग्नि जला कर उनको गरम रखने की प्रथा थी और गाँवों में अब भी अधिकांश में इसका प्रचार है। परन्तु आजकल शहरों के रहने वाले तथा नई रोशनी वाले मनुष्यों ने इसको प्रायः छोड़ दिया है। यही कारण है कि अनेक बालक सूतिकागार में ही नाना प्रकार की कफ-सम्बन्धी बीमारियों के शिकार होते दिखाई देते हैं। परीक्षा द्वारा यह निश्चित रूप से स्थिर हो चुका है कि हाल के उत्पन्न बालक का शारीरिक ताप (गर्मी) बहुत अधिक परिमाण में, यहाँ तक कि कभी-कभी स्वाभाविक ताप की अपेक्षा २५ डिग्री कम हो जाता है। इसका कारण जान सकना कुछ कठिन

नहीं है। बालक माता के गर्भ में जिस जरायु-कोष मध्यस्थ तरल पदार्थ के अन्दर रहता है उसकी गर्मी ९९ डिग्री होती है, और बाहरी हवा का ताप उसकी अपेक्षा कम होता है। इसलिए उत्पन्न होते ही बालक का संस्पर्श अपेक्षाकृत अल्प ताप के वातावरण से होता है और इससे उसके शरीर की गर्मी एकाएक कम पड़ जाती है।

इन सब बातों पर अच्छी तरह विचार करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि जन्म के समय बालक के शरीर के ताप की रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है। चरक ने भी इस सम्बन्ध में उपदेश दिया है कि सूतिकागार में अग्नि का रहना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु साथ ही यह भी विचार रखना चाहिए कि सूतिका-गृह में शुद्ध वायु भली प्रकार आती-जाती रहे। अन्यथा कोयलों के जलने से जहरीली वायु उत्पन्न होकर बालक और प्रसूता (जच्चा) को मूर्च्छित कर देती है। इसी मूर्च्छित दशा में लोग बालक को मसान ग्रसित समझने लगते हैं।

नवजात शिशु का स्नानीय जल

नवजात बालक को आरम्भ में प्रतिदिन एक बार स्नान अवश्य कराना चाहिए। पहले स्नान के जल की गर्मी तत्काल दुहे हुए दूध के बराबर होनी चाहिए। इसके बाद धीरे-धीरे जल की गर्मी के परिमाण में कमी करते जाना चाहिए।

कुछ सप्ताह के बाद 'शृत-शीतल' अर्थात् गरम जल को ठण्ढा करके बालक को स्नान कराना उचित है। किन्तु यह बात याद रखनी चाहिए कि शीतल मकान में बालक को कभी ठण्ढे जल से स्नान नहीं कराना चाहिए और न उसको प्रतिदिन स्नान कराने की आवश्यकता है। यदि मकान में आवश्यकता से कम गर्मी हो तो कृत्रिम उपाय से (अग्नि आदि जला कर) उसको गरम रखना उचित है। बालक को इतना ही स्नान कराना चाहिए जिससे वह प्रसन्न रहे। रोते हुए जबर्दस्ती उनको स्नान कराने से वह अनेक प्रकार की स्नायविक पीड़ाओं (वात-व्याधि रोग आदि) से आक्रान्त हो जाते हैं!

बालकों का पालन-पोषण

जिस प्रकार पक्षियों के अण्डों को अपने माता-पिता के ताप की आवश्यकता होती है, और उससे वे धीरे-धीरे बढ़ कर सर्वाङ्ग पूर्ण बन जाते हैं, उसी प्रकार बालकों को भी अपनी माता की गर्मी की अत्यन्त आवश्यकता होती है। जल-चिकित्सा के प्रवर्तक लुई कुहनी साहब ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि—"मैंने कई ऐसे बालकों की चिकित्सा की कि जो केवल अपनी माता की गर्मी के न मिलने से बीमार थे। उनको यथेष्ट प्रमाण में माता की गर्मी के साथ मामूली 'सिज-बाथ' (स्नान) से बिल्कुल आराम हो गया। इसलिए जहाँ तक हो सके बालकों को माता के

पास रखना ही उसका सर्व-प्रथम पालन है ।" देखा भी जाता है कि जिन बच्चों की माता उनके जन्म के कुछ दिनों बाद ही मर जाती हैं, उनके पालन-पोषण का अच्छा प्रबन्ध होने पर भी उनकी दशा वैसी अच्छी नहीं दिखाई पड़ती जैसी कि जीवित माता वाले बालकों की होती है । बालक और किसी व्यक्ति के शरीर के संयोग से इतना आनन्द अनुभव नहीं करता जितना कि अपनी माता की गोद में बैठ कर या उसके साथ सोकर । इस वास्ते बाल्यावस्था में माता से बच्चे को कभी नहीं छुड़ाना चाहिए ।

बालकों का निवास-स्थान

बालकों को शुद्ध हवा तथा साफ़ मकान की परम आवश्यकता है । इसलिए शास्त्रोक्त विधि से बनाए हुए मकान में उनको रखना चाहिए । बालकों के रहने का मकान (कुमारागार) बहुत सुन्दर, साफ और हवादार होना चाहिए, जिसमें सूर्य की किरणें प्रवेश करती हों और अँधेरा न रहता हो, जिसके फ़र्श वग़ैरह अच्छे दृढ़ बने हुए हों, जिसके अन्दर किसी प्रकार के पशु तथा दाढ़ वाले, कुत्ता बिल्ली, साँप, चूहा आदि न आ सकते हों; और न किसी प्रकार के कीड़े-मकोड़े आदि ही उसके अन्दर हों । उस स्थान में, जहाँ पर बालक का उठना-बैठना विशेष रूप से हो, दरी, कालीन या कोई वस्त्र अवश्य बिछा होना चाहिए ।

जिससे बालक के गिरने पर उसको कोई भारी चोट न लगने पावे। इसके सिवाय उसी मकान में जल-स्थान, तथा मूत्र व मल त्याग करने के स्थान आदि सब अलग-अलग बने हुए होने चाहिएँ। साथ ही ऋतु के अनुसार सोने के लिए ओढ़ने-बिछाने के कपड़े वगैरह रक्खे रहने चाहिएँ। उसमें हर समय सरसों, तिल, यव, बच आदि औषधियाँ रक्खी रहनी चाहिएँ। इस प्रकार के मकान में रहने से बालक का स्वास्थ्य ठीक रहता है और उसको कोई रोग नहीं सताने पाता।

वायु-सेवन

बच्चों के लिए वायु का सेवन कराना बहुत ही गुणदायक है। छोटी अवस्था में गोद में लेकर या किसी गाड़ी आदि में बैठा कर वायु-सेवन कराना चाहिए। जब चलने-फिरने लगे तब बच्चे की अँगुली पकड़ कर फिराना चाहिए। बच्चों को घुमाने का समय जाड़ों में दोपहर को जब अच्छी तरह धूप निकल रही हो, गर्मी के दिनों में शाम और सुबह को, बरसात में जब बादल न हो और बूँद न पड़ती हो, होना चाहिए। इस बात का सदैव ध्यान रखना आवश्यक है कि बालक विशेष सर्दी तथा गर्मी से बचा रहे।

बालक का स्नान

तीन-चार मास तक प्रतिदिन बालक के शरीर में तेल लगा कर, उसको आटे की लोई से साफ करके, जाड़ों में

गरम जल से, गर्मी में ठण्ढे जल से और बरसात में गुनगुने जल से स्नान कराना चाहिए। छोटे बालकों के स्नानीय जल में नमक मिला कर स्नान कराया जाय तो अति गुण-कारी होता है। ऐसा स्नान निर्बल बालकों को थोड़े ही दिनों में हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान् बना देता है और वे हमेशा स्वस्थ रहते हैं।

बालक के आभूषण

आजकल बहुत से लोगों का कहना है कि बालकों को बहुत छोटी अवस्था में गहना नहीं पहिनाना चाहिए। उस उम्र मे गहना पहिनाने से माता-पिता का दिल खुश होने के सिवाय बालक को किसी प्रकार का लाभ नहीं होता। बालकों का शरीर नए पौधे की तरह रात-दिन बढ़ता रहता है। उस दशा में गहना पहिनाने से उसके पुष्ट होते हुए अवयवों की शिरा और धमनियाँ दब कर सङ्कुचित हो जाती हैं और बालक जन्म भर के लिए क्षीण-देह हो जाता है। दूसरा कारण यह है कि आजकल कितने ही मुक़दमे न्याया-लयों में ऐसे आते हैं कि उसके बच्चे को अमुक ने गहनों के लोभ मे आकर मार डाला। ऐसी दशा में आजकल गहना पहिनाना ठीक नहीं मालूम पड़ता। इस सम्बन्ध में चरक ने लिखा है :—

मणयश्च धारणीयः कुमारस्य खंगरुरुगवय वृषभाणां

जीवितामेव दक्षिणेभ्यो विर्षाणेभ्य स्त्वग्राणि गृहीतानिस्युर्म-न्त्राद्या औषधयो जीवकर्षभकौ च यानि चान्यानि अपि ब्राह्मणाः प्रशंसेपुरथर्व वेदविदः

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि प्राचीन समय में आज-कल की तरह गहने नहीं पहिनाए जाते थे। किन्तु उन दिनों बहुमूल्य मणियों का व्यवहार होता था, और वे मणियाँ गैंड़ा, हरिण, बैल आदि पशुओं के सींगों के अगले भागों के साथ हार की तरह पोकर गले में पहिनाई जाती थीं। इससे बालक के किसी अङ्ग में कोई न्यूनता नहीं आती थी। साथ ही उन दिनों में सब लोग न्याय-परायण तथा धर्मात्मा होते थे। गहनों के कारण बालक को प्राण-भय नहीं रहता था, परन्तु आजकल के ज़माने को देख कर गहना पहिनाना उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि इससे बालकों को दुख तथा हानि पहुँचने की बहुत सम्भावना रहती है।

बालक के कपड़े

बालकों के बिछाने-ओढ़ने तथा पहिनने के कपड़े सदा हलके, कोमल, साफ़-सुथरे और सुगन्धित होने चाहिएँ। उनको कभी तङ्ग कपड़े न पहिनाना चाहिए। इससे फेफड़े, हृदय और पाकाशय को हानि पहुँचती है, श्वास लेने में कष्ट होता है, भोजन ठीक नहीं पचता और रक्त का सञ्चार भी भली-भाँति नहीं हो सकता। साथ ही अत्यन्त ढीले

कपड़े पहिनाना भी अच्छा नहीं, क्योंकि इससे उनके हाथ-पाँव उलझ जाते हैं। निद्रावस्था में बालक के मुख को नहीं ढकना चाहिए, जिससे दुर्गन्धयुक्त वायु भीतर न रुक सके। अङ्गरखे की तनी या कोट के बटन सोते समय खोल देने चाहिएँ और यदि गले में कोई रुमाल आदि बँधा हो तो उसको भी खोल देना चाहिए। बच्चों को जाड़े के दिनों में गरम और काले रङ्ग के कपड़े, गर्मी तथा बरसात में ढीले तथा श्वेत रङ्ग के कपड़े और वसन्त-ऋतु में दोहरे अधरङ्गे हलके रङ्ग के कपड़े पहिनावे। चटकीले और रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े पहिनाने की आदत बच्चों को नहीं डालनी चाहिए। छोटे बच्चों के ओढ़ने-बिछाने के कपड़े सदा साफ़ और नए होने चाहिएँ। यदि सदा नए कपड़े न मिल सकें तो मल-मूत्र लगे हुए कपड़ों को तुरन्त धोकर साफ करके सुखा देवे और सूख जाने पर औषधियों की धूप देकर काम में लावे। बच्चों के गन्दे कपड़ों को बिना धोए उलट-पुलट कर नहीं बिछाना चाहिए। इससे अनेक रोग होने का डर रहता है। चरक में लिखा है :—

शयनासनास्तरण प्रावरणानि कुमारस्य मृदु लघु शुचि सुगन्धीनिस्युः स्वेदमलजन्तुमन्ति मूलपुरीषोय सृष्टानि च परिवर्ज्यानिस्युः असति सम्भवेऽन्येषां तान्येव च सुपक्षालितोय धूपितानि शुद्धशुष्काण्युपयोगं गच्छेयुः।

वस्त्रों को धूप देना

बालकों के ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों को सदा औषधियों की धूप देते रहना चाहिए। धूप बनाने की विधि यह है :—

यव, सरसों, अलसी, हींग, गूगल, बच, चोरक, क्षीर-काकोली, गोलोचन, बालछड़, अशोक की छाल, रोहिणी और साँप की केंचुल—इन चीज़ों के साथ घी मिला कर काम में लावे। इस धूप से बालक को किसी प्रकार की सांक्रामिक व्याधि नहीं होती और न भूत आदि की बाधा ही सताने पाती है।

बालक की सफ़ाई

बालकों के शरीर या मुँह पर धूल, मिट्टी आदि लगने पर स्नान करा कर या धो-पोंछ कर साफ़ कर देना चाहिए। रात्रि को प्रतिदिन नीम या सरसों के तेल का काजल आँखों में लगाना चाहिए और प्रातःकाल उठते ही शौच कराके मुँह धो देना चाहिए। जब बड़े हो जावें तो उनको दतौन कराने की भी आदत डालनी चाहिए। सायङ्काल की तरह प्रातःकाल भी काजल लगा देना चाहिए।

यन्त्र-तावीज़ आदि

बालकों को इस भय से कि इनको भूत, प्रेत आदि की बाधा न हो, स्यानों (झाड़-फूँक करने वालों) के बनाए हुए यन्त्र-तावीज़ आदि कभी नहीं पहिनाने चाहिएँ। क्योंकि

इनके पहिनाने से कुछ भी लाभ नहीं होता। उल्टा यह देखने में आया है कि ऐसे बालक सदा रोगी बने रहते हैं और उनके माता-पिता उनको सदा स्यानों को दिखाते ही रहते हैं। इसके सिवाय बालकों के गले में जो यन्त्र (तावीज़, कठले, गण्ड आदि) पहिनाए जाते हैं, उन पर पानी पड़ने से या दूध, लार के जमे रहने से एक प्रकार की दुर्गन्ध आने लगती है, जिससे बच्चे प्रायः बीमार रहते हैं। इसलिए बालकों को जितने अधिक गहने या यन्त्र (तावीज़) आदि पहिनाए जाएँगे उतने ही वे अधिक बीमार और कष्ट-ग्रसित रहेंगे। तात्पर्य यह कि गहने या यन्त्र आदि पहनाना उनके स्वास्थ्य को चौपट करना है।

कटि-सूत्र

हमारे देश में पहले बालकों को कटि-सूत्र पहिनाने की रीति बहुत प्रचलित थी। परन्तु आजकल दिन-बदिन उस प्रथा का ह्रास हो रहा है। उसके स्थान में बच्चों को कड़े, छड़े आदि कठोर चीज़ें पहिनाई जाती हैं, जिससे उनके रक्त-सञ्चार में बहुत बाधा पड़ती है। अमीर लोग कटि-सूत्र के स्थान पर चमड़े या कपड़े की पेटी का व्यवहार करते हैं। उसका मतलब यही होता है कि बालक का पेट और आँते न बढ़ने पावें तथा उसको चलने-फिरने में सुविधा हो। यही मतलब प्राचीन ऋषियों का कटि-सूत्र बाँधने में था। आजकल की ग्रामीण स्त्रियाँ समझती हैं कि इसके

बाँधने से नज़र का भय नहीं रहता। कुछ भी हो, कटि-सूत्र बाँधना हर दशा में अच्छा है।

जन्म-घुट्टी

बालकों को पैदा होने से छः दिन तक दूध के अतिरिक्त जुलाब या घुट्टी भी देनी चाहिए। क्योंकि इन दिनों माता का दूध बहुत ही निर्बल होता है। एक तोला गुड़ में कुछ अजवायन मिला कर जल के साथ मिट्टी के पात्र में रख कर अग्नि पर औटावे और फिर छान कर बच्चे को पिलावे। बच्चों को देने की घुट्टी अनेक प्रकार की होती हैं। उनमें मुग़लानी घुट्टी सबसे अच्छी मानी जाती है, जिसकी विधि यह है :—

सौंफ, बनफशा, मुनक़्क़ा, मुलैठी, अमलतास का गूदा, तुरञ्जबीन—सब चीजें एक-एक माशे और बूरा चार तोला लेकर जल में डाल कर पका ले। पकने पर छान कर बालक को पिलाना चाहिए। इसमें गर्मी के दिनों में गुलक़न्द और जाड़े के दिनों में अजवायन और मिला देनी चाहिए।

सधारण जन्म-घुट्टी

१—सौंफ, दोनों हरड़, सोंठ, सनाय, किरमाला, अजवायन, अजमोद, इन्द्रजौ, नौसादर, सुहागा और पाँचों नमक दो-दो रत्ती और खाँड़ या बूरा छः माशे ले। नौसादर, सुहागा, पाँचों नमक और बूरा इन चीज़ों को छोड़कर शेष

चीज़ों को जल में औटा ले और फिर छान कर बची हुई चीज़ों को पीस कर मिला दे। इससे बालक का पेट साफ़ रहता है।

२—पोदीना, सौंफ, मरोड़फली, अमलतास, पितपापड़ा, सफेद जीरा, सनाय और पाँचों नमक चार-चार रत्ती; सोंठ, मिश्री, पलासपापड़ा, नरकचूर, सुहागा दो-दो रत्ती; और उन्नाव एक दाना—इन सबको मिला कर और जल में पका कर पिलाना चाहिए।

३—सौंफ, एलुआ, पलासपापड़ा, मरोड़फली, अमलतास, काली मिर्च, बड़ी हरड़, छोटी हरड़, गोखुरू, दुधबच, सोए के बीज—इन सबको चार-चार रत्ती लेकर पानी में औटा और छान कर प्रातःकाल बालक को पिला देना चाहिए। छः महीने की अवस्था तक बालक को प्रत्येक सप्ताह में एक दिन घुट्टी अवश्य पिला देनी चाहिए।

४—सौंफ, सौंफ की जड़, बायबिड़ङ्ग, अमलतास, सनाय, दोनों हरड़, दुधबच, अञ्जीर, अजवायन, गुलाब के फूल, ढाक के बीज, मुनक़्क़ा, हाऊबेर, गुड़, सुहागा और सौंचल नमक—इन सब औषधियों को, सौंचल नमक को छोड़ कर, जल में पका ले। फिर उसमें सौंचल नमक मिला कर बच्चों को पिलावे। इससे बालक को शीत आदि लगने या क़ब्ज़ होने का ज़रा भी डर नहीं रहता।

बालक का दुग्ध-पान

बालक को मोह-वश हर घड़ी दूध नहीं पिलाना चाहिए। बहुत सी स्त्रियाँ ऐसा करती हैं कि बालक के किसी भी बात पर रोने लगने से तुरन्त उसके मुँह में आँचल दे देती हैं। ऐसा करना ठीक नहीं। बालक को जब भूख लगी हो तभी दूध पिलाना चाहिए, न कि उसके रोदन आदि स्वाभाविक कार्यों के रोकने के लिए। बिना भूख के बार-बार दूध पिलाने से बालक को अजीर्ण, पेट की पीड़ा, अफरा आदि हो जाते हैं और वह दूध पटकने लगता है।

बालक को दूध पिलाने के लिए उसकी माता या धाय को सीधी बैठ कर स्तनों को धोकर बालक के मुख में देना चाहिए। पहले कुछ दूध निकाल देना चाहिए, क्योंकि कुछ दूध न निकाल कर स्तन-पान कराने से बच्चे को कभी-कभी श्वास, कास तथा उलटी होने लगती है। लिखा है कि—"अपरिस्रुतेऽप्यतिस्तब्ध पूर्णस्तनपाना दुत्स्रंसितस्रोतसः शिशोः श्वास-कासवमी प्रादुर्भावः तस्मादेवं विधं स्तन्यं न पाययेत्।" बालक को सदैव पहले दाहिना स्तन पिलाना चाहिए, बाद को बाँया। बहुत सी स्त्रियाँ अज्ञानवश एक ही स्तन से बालक की तृप्ति होती देख कर उसी को पिलाती रहती हैं। इस तरह एक ही स्तन पिलाना अत्यन्त हानिकारक है। क्योंकि इससे दूध जम कर स्तन-विद्रधि (थनैल) रोग होने का बहुत डर रहता है; और स्तनों में से एक छोटा और दूसरा बड़ा दीखने

लगता है। बालक को सदैव गोद में लेकर दूध पिलाना चाहिए, लेट कर दूध पिलाने से प्रायः बालकों का कान बहने लगता है। इसलिए बालक को गोद में लेकर एक हाथ उसके शिर के नीचे रख कर उसको ऊपर उठाते हुए स्तन-पान कराना चाहिए। माता की निद्रा की अवस्था में दूध पिलाना हानिकारक है।

माता की भूख, शोक, थकावट, धातु-विकृति, गर्भ, ज्वर अत्यन्त दुर्बलता या अत्यन्त मोटेपन की अवस्था में बालक को उसका दूध नहीं पिलाना चाहिए। क्रोध, भय, स्वेद, रोदन अथवा कलह (झगड़ा) करने पर भी दूध नहीं पिलाना चाहिए। क्योंकि ऐसी दशा में पिलाया हुआ दूध शरीर में विष का कार्य करता है। इसलिए माता को पूर्ण स्नेह के साथ प्रसन्न-चित्त होकर दूध पिलाना चाहिए। स्नेह-रहित दुग्ध-पान से पला हुआ बालक बड़ा होने पर अपनी दूध पिलाने वाली माता या धाय से कभी प्रेम न रक्खेगा। क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखने में आता है कि घर में अनेक स्त्रियों के होते हुए भी (जो उसको अच्छी तरह रखती और प्रेम करती हों) बालक अपनी दूध पिलाने वाली माता से ही अधिक प्रेम करता है। स्नेहपूर्वक बालक को स्तन-पान कराने से स्त्री भी केवल मामूली शारीरिक दुर्बलता के साथ, सदा नीरोग रहती है, और उसको गर्भ-स्राव या गर्भ-पात के रोग भी नहीं होने पाते।

दूध पिलाने वाली स्त्री को सदैव शुद्ध, साफ, ताजा,

पौष्टिक तथा हल्का आहार करना चाहिए, जिससे दूध उत्तम और पर्याप्त परिमाण में हो। धाय और माता के लिए साधारणतः जीरा, सोंठ, धनिया, दलिया, दूध, चावल, रोटी तथा पतले, मधुर, अम्ल, लवण-रस, विशिष्ट भोज्य-पदार्थ खाने चाहिएँ। तात्पर्य यह है कि उसका आहार ऐसा हो जो अच्छी तरह पच जावे। अधिक तथा गरिष्ठ आहार करने से स्त्री को अजीर्ण होकर दूध विकृत हो जाता है और बालक को भी अजीर्ण के साथ अनेक रोग घेर लेते हैं। स्तनों में कठिनता होने के कारण यदि दूध कम निकलता हो तो किसी सयाने बालक के द्वारा पिला कर उनको ढीला कर देना चाहिए, अथवा स्तनों में कोई नर्मी पैदा करने वाला लेप लगाना चाहिए, या एरण्ड के पत्तों का रस निकाल कर स्तनों में मलना चाहिए, या डण्ठल समेत एरण्ड के पत्तों को पीस-छान करके दूध पिलाने वाली स्त्री को पिला देना चाहिए। इसके सिवाय स्त्री को अपनी अँगिया, चोली आदि के बन्धन या बटन भी खोल देने चाहिएँ।

बालक को रात्रि में दूध पिलाने की आदत नहीं डालनी चाहिए, इससे माता तथा बालक दोनों को हानि पहुँचती है। निद्रा खराब होती तथा स्तनों में पीड़ा होने लगती है।

बालक के लिए ऊपर का दूध पिलाना

पहले बताया गया है कि यदि माँ का दूध किसी कारण से न मिल सके तो बालक को गाय या बकरी का दूध देना

चाहिए। यदि ऐसा दूध देना पड़े तो उसमें बराबर का पानी और दो-एक बताशे मिला कर पिलाना चाहिए। ज्यों-ज्यों बालक बढ़ता जाय त्यों-त्यों उसके दूध का पानी भी कम करता जावे। जब पानी रहित दूध अच्छी तरह पचने लगे तो उसमें पानी नहीं डालना चाहिए। दूध सदैव गुन-गुना पिलाना चाहिए, ठण्ढा दूध कभी नहीं देना चाहिए। यदि दूध न पचता हो या वायु पैदा करता हो, तो उसमें सोडा या चूने का पानी मिला कर पिलाना चाहिए। यदि इस दूध से दस्त न आता हो तो सुबह थोड़ा शीतल जल पिला देना चाहिए, या दूध में थोड़ी कच्ची खाँड़ मिला कर पिलाना चाहिए, या थोड़ा सा शहद चटा देना चाहिए। इससे दस्त आने लगता है।

बालक को यदि गाय का दूध पिलाया जावे तो एक ही नीरोग गाय का दूध पिलाना चाहिए। तीन-चार गायों का मिला हुआ दूध पिलाने से बालक को रोग होने की आशङ्का रहती है, क्योंकि गायों में भी अनेक प्रकार के क्षय आदि रोग होते हैं। जिस पात्र में दूध रक्खा या पकाया जाय, उसको अच्छी तरह धोकर साफ़ कर लिया जाय। बालक को दूध रुई के फाए से पिलाया जाय या चम्मच अथवा काँच की शीशी से। इस शीशी को प्रतिदिन दूध पिलाते समय गरम जल से अच्छी तरह धोकर साफ कर लेना चाहिए, क्योंकि बासी दूध के छीछड़े खट्टे और दुर्गन्ध-

युक्त हो जाने से ताज़ा दूध को भी बिगाड़ देते हैं। पिलाते समय दूध को अवश्य छान लेना चाहिए, जिससे उसमें मलाई या किसी प्रकार के तृण आदि न रहने पावें। दूध को कभी बहुत औटा कर नहीं पिलाना चाहिए। किन्तु उसमें बराबर का पानी मिला कर पका ले। जब पानी जल जाय और केवल दूध बाक़ी रहे, तब उतार और छान कर पिलाना चाहिए। जहाँ तक दूध कम औटा और पतला होगा बालक को शीघ्र पच जायगा। लुई कुहनी साहब तो दूध में थोड़ा जल डाल कर और केवल एक उफान देकर दूध पिलाने का आदेश देते हैं। कुछ भी हो, बालक को गाढ़ा दूध कभी नहीं देना चाहिए। यदि दूध के पचने में कुछ आशङ्का हो तो उसमें थोड़ा सा सोडा या सेंधा नमक डाल देना चाहिए। इससे दूध शीघ्र पचता है।

अवस्थानुसार बालक को दूध पिलाने का समय

बालकों को कभी अनियमित रूप से दूध नहीं पिलाना चाहिए। इसके कारण बालक सदा किसी न किसी रोग में फँसा रहता है। इसलिए निम्न-लिखित नियमानुसार दूध पिलाने की आदत डालनी चाहिए।

एक महीने तक के बालक को एक-एक घण्टे पीछे दूध पिलाना चाहिए।

तीन महीने तक के बालक को दो-दो घण्टे के बाद दूध पिलाना चाहिए।

चार से छः महीने तक के बालक को तीन-तीन घण्टे बाद दूध पिलाना चाहिए।

सात से नौ महीने तक के बालक को चार-चार घण्टे बाद दूध पिलाना चाहिए।

नौ महीने की अवस्था तक बालक को केवल दूध ही पिलाना चाहिए, अन्य कोई अन्न, फल आदि वस्तु नहीं देनी चाहिए। कहावत है कि—"नौ महीने भरे और नौ महीने धरे।" अर्थात् पहले के नौ महीने तक केवल दूध ही पिलावे और पीछे के नौ महीने में थोड़ा-थोड़ा आहार देकर दूध को छुड़ा देवे। धर्मशास्त्र में लिखा है कि "षष्ठेऽन्नप्राशनम्" अर्थात् छठे महीने बालक को अन्न खिला देना चाहिए। नौ महीने तक दूध ही देने पर अन्नप्राशन का छठे महीने होना स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसका मतलब यह है कि प्रायः बालकों के छठे महीने दाँत निकल आते हैं, और बिना अन्न खाए दाँतों का निकलना धर्म-ग्रन्थों में अनिष्टकारक लिखा है। इसलिए उन्होंने छठे महीने, अन्न का स्पर्श-मात्र करा देने को लिखा है, न कि छठे महीने से दूध छुड़ा कर केवल अन्न का ही प्रयोग करना उनका आशय है।

वाग्भट्ट में लिखा है कि—"अथैनं जात दशन क्रमेणापनेयत्स्तनात्।" अर्थात् जब बालक के दाँत आ जायँ तो उसे स्तन से छुड़ा देना चाहिए। इसलिए नौ या दश महीने के बाद बालक का दूध पीना धीरे-धीरे छुड़ा देना चाहिए। एक

साथ छुड़ाने से बालक कमज़ोर हो जाता है। इसलिए माता के दूध के साथ-साथ कभी-कभी खीर, खिचड़ी, आरारोट, साबू आदि हल्का भोजन देते रहना चाहिए। ऐसी दशा में बालक को यथासम्भव वही वस्तु देनी चाहिए, जो उसको अच्छी लगती और पचती हो। यह नियम नहीं कि सबको एक ही प्रकार का आहार दिया जाय। आजकल बाज़ार में सौदागरों की दूकान में अनेक प्रकार की बच्चों के खाने की वस्तुएँ (Child-food) बिकती हैं, उनको दूध या पानी में मिला कर पिलाने से वे माता तथा गौ के दूध के बराबर ही गुण करती हैं। परन्तु हमारे यहाँ अधिकतर बच्चे को दलिया देने की रीति प्रचलित है। यह होम्योपैथिक-चिकित्सा-पद्धति के अनुसार बहुत ही उपयोगी माना जाता है। क्योंकि इसमें पाचन तथा दस्तावर दोनों गुण रहते हैं। बाज़ार में बिकने वाली चीज़ों में से आजकल मेलिन्स साहब का बनाया हुआ बच्चों का खाना (Melin's infant food) अधिक प्रसिद्ध है। इसके सिवाय आजकल बालकों को बिस्कुट, डबल-रोटी आदि, भी दिया करते हैं। परन्तु इस देश के आहार-विहार वालों के लिए यहीं की चीज़ें अच्छी और गुणदायक होती हैं।

बालक जितना अधिक अपनी माता का दूध पीएगा उतना ही बलवान् होगा। दुनिया में आज तक कहावत है कि—"देखें तैंने अपनी माँ का कितना दूध पिया है।"

बालक के लिए दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है, जोकि माता के दूध की समानता कर सके। इसलिए जब तक माता के गर्भ न रहे या दूध में कोई ख़राबी न आवे, तब तक बराबर उसका दूध पिलाते रहना बहुत अच्छा है।

माता के गर्भवती न होने पर भी निम्न-लिखित अवस्थाओं में कभी बालक को माता का दूध नहीं पिलाना चाहिए। जैसे स्तनों में दूध न रहने, कानों में सनसनाहट होने, आँखों में अँधेरा छाने, पीड़ा होने, शिर में चक्कर आने, हृदय की व्याकुलता होने, मूर्च्छा तथा देह में कम्प होने, अग्निमान्द्य, देह की दुर्बलता और थकावट, कमर में दर्द तथा चलने-फिरने में असमर्थता होने, और पाण्डु-रोग रक्त की कमी, श्वास-रोग, पैरों या टखनों में शोथ होने पर बालक को दूध कभी नहीं पिलाना चाहिए।

बालकों को दूध पिला के या भोजन करा के उनके मुँह, हाथ, पैर और जहाँ पर दूध या भोजन लग गया हो, धोकर साफ कर देने चाहिएँ। क्योंकि दूध आदि के लगे रहने से बच्चों के शरीर पर मक्खियाँ बैठती हैं और मुख में से दुर्गन्ध आने लगती है। ऐसे बालक को मुख के रोग अधिक सताते हैं।

बालोपयोगी मोदक

बालक का दूध छुड़ाने पर उसके मन को प्रसन्न करने वाले पौष्टिक तथा हल्के लड्डू बना कर देने चाहिएँ। इनके

खाने से बालक दूध पीने के लिए नहीं रोता है और न दूध छोड़ देने से कोई उसके शरीर मे खराबी या कमजोरी ही आती है। वैद्य को बालक की अवस्थानुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के मोदक बतलाने चाहिएँ अथवा निम्न-लिखित प्रकार से बना लेना चाहिए।

१—लड्डू बनाने की विधि से चिरौंजी, मुलैठी, शहद, खील और मिश्री इन सब चीजों को मिला कर और मोदक बनाकर बालक को देना चाहिए। इसका नाम प्रीणन मोदक है। इसके खाने से बालक प्रसन्न-चित्त और हृष्ट-पुष्ट होता है।

२—छोटे कच्चे बेल की गिरी, छोटी इलायची, चीनी, खील और सत्तू—इनको विधि के अनुसार मिला कर मोदक बना कर खिलाने से बालक की अग्नि दीप्त होती है। यह दीपन मोदक है।

३—यदि किसी को मल बँध कर न होता हो तो उसे धाय के फूल, चीनी और खीलों का पतला हरीरा सा बना कर देना चाहिए; या इन चीजों का मोदक बना कर देना चाहिए। यह संग्राही मोदक है।

बालक को भूमि पर बैठाना

वाग्भट्ट में लिखा है कि—"पञ्चमेमासि पुण्येऽह्नि धरण्यामुपवेशयेत्"—अर्थात् बालक को पाँचवें महीने से बैठने की आदत डालनी चाहिए। इसके पूर्व उसकी ग्रीवा

तथा रीढ़ की अस्थियाँ अस्थिर होती हैं। इसलिए जब तक बालक छः महीने का हो तब तक सदा उसकी ग्रीवा (गर्दन) को हाथ लगा कर सहारे से उठाना या रखना चाहिए। ऐसा न करने से कभी-कभी उसकी ग्रीवा में झटका चला जाता है और ग्रीवा टूटने से बालक की मृत्यु भी हो जाती है। बालक को गोद आदि में लेते समय इस तरह पकड़ना चाहिए कि उसे किसी प्रकार का दुःख न हो। चरक ने भी लिखा है कि—"बालं पुनर्गात्र सुखं गृह्णीयात्।" बालक को बिना सहारे कभी न बैठावे, क्योंकि बिना सहारे शरीर के बोझ के कारण उसकी रीढ़ की अस्थियाँ प्रायः झुक जाती हैं और बालक कुबड़ा हो जाता है। इसी तरह एक वर्ष की आयु के पूर्व बालक को कभी जोर से उसके पैरों पर खड़ा न करे। यदि बालक स्वयं खड़ा हो सकता हो तो उसे खड़ा कर सकते हैं। बहुत से बच्चे ११वें महीने से ही खड़े होने लगते हैं और कोई डेढ़ वर्ष तक भी खड़े नहीं होते। बालक को उसकी टाँग फाड़ कर गोद में बिठाना भी हानिकारक है।

बालक की निद्रा

बालक को नींद लगने पर सुला देना चाहिए और स्वतः जागने पर उठाना चाहिए। एकाएक जगा देने से उसके मन में भय सा बैठ जाता है। बालक को औंधा या चित कभी नहीं सुलाना चाहिए, किन्तु सदैव करवट से सुलाना चाहिए।

झूले में झुला कर या गीत गाकर, जैसा कि बहुत सी स्त्रियाँ करती हैं, सुलाने की आदत नहीं डालनी चाहिए। बालक को सुला कर घर में बन्द कर अकेला नहीं छोड़ना चाहिए।

दूध पीकर या भोजन करते ही बालक को सोने नहीं देना चाहिए, ऐसा करने से दूध या भोजन पचने नहीं पाता और उसको ख़राब स्वप्न दिखाई देने लगते हैं, जिनके कारण वह एकाएक चौंक उठता है और रोने लगता है। बालक के लिए तीन वर्ष की आयु तक ही दिन में सोना अच्छा है। इसके बाद केवल रात्रि में ही सोने की आदत डालें। अफ़ीम आदि नशीली वस्तु खिला कर बालकों को सुलाने की आदत नहीं डालनी चाहिए। बहुत सी मूर्ख या आराम-तलब स्त्रियाँ अपने सुख के लिए प्रायः बालकों को सोते समय पोस्त की ढोंड़ आदि घिस कर पिला देती हैं, जिससे बालक रात भर चुपचाप पड़ा रहे और उनको कोई तकलीफ़ न हो। उनका ऐसा करना बड़ी भूल है, क्योंकि नशीली चीज़ों की आदत से बालकों का मस्तिष्क शून्य और निर्बल हो जाता है।

बालक का अति-भोजन

बालकों के भोजन के बारे में सुप्रसिद्ध डॉ० जॉनसन का कथन है—"यदि कोई मनुष्य बड़े मनुष्य की अपेक्षा छोटे-छोटे बच्चों को अधिक और बार-बार भोजन कराना युक्ति द्वारा विज्ञान तथा न्यायमूलक सिद्ध कर दे, तो हम

उसे सानन्द स्वीकार करेंगे।" इसका अर्थ यह है कि किसी युक्ति द्वारा इस विषैले कुव्यवहार का समर्थन नहीं किया जा सकता। दूसरे प्राणियों की आहार-प्रणाली को देखने से यह बात सहज में ही समझ में आ सकती है। गाय का बछड़ा दिन में केवल दो बार अपनी माँ का दूध पीता है, तथापि वह छः सप्ताह में ही खूब हृष्ट-पुष्ट और बड़ा हो जाता है। खरगोश, बिल्ली आदि अन्यान्य प्राणी भी ऐसा ही करते हैं। बिल्ली अपने छोटे बच्चों को पाँच-छः घण्टे तक छोड़ कर भोजन के लिए अनेक स्थानों में घूमती रहती है, इसके बाद वह अपने बच्चों को दूध या खाना देती है। खरगोश प्रायः प्रातः और सायङ्काल ही अपने बच्चों को आहार देते हैं, किन्तु ऐसा होने पर भी उनके बच्चे पर्याप्त प्रमाण में बलवान् और पुष्ट होते हैं। इसलिए यह कभी नहीं समझना चाहिए कि बालकों को बार-बार भोजन न दिया जायगा तो वे कमज़ोर या क्षीण हो जावेंगे। वास्तव में उचित प्रमाण में और ठीक समय पर दिया हुआ भोजन ही बालकों के लिए लाभकारी हो सकता है। प्रायः बालकों का यह स्वभाव हो जाता है कि वे खाने के लिए बहुत शोर-गुल मचाते हैं। परन्तु उनको जैसी आदत डाली जाती है वैसा ही वे करने लगते हैं। इस बात को सभी विषयों में स्मरण रखना चाहिए कि बालक छोटी अवस्था में जिन बातों को देखता-सुनता है, उनको बड़ी जल्दी ग्रहण कर लेता है। इस-

लिए बालक की बुरी आदतों को बाल्यावस्था में ही होशि-यारी से काम लेकर बदल सकते हैं। बालकों की बुरी आदतों के विषय में हम आगे चल कर विशेष रूप से लिखेंगे।

आहार-दोष

आयुर्वेद में लिखा है कि भुक्त-आहार के परिपाक होने के पूर्व दुबारा आहार करना आमादि और अजीर्ण उत्पन्न-कारक होता है। अपरिमित वा कम मात्रा में, या कुसमय में भोजन करने से अजीर्ण, अतीसार आदि रोग उत्पन्न होते हैं। डॉक्टर लोगों ने भी पूर्वोक्त कारणों द्वारा अजीर्ण आदि रोगों की उत्पत्ति होनी लिखी है। बच्चों की शोचनीय अकाल-मृत्यु का मूल कारण बहुधा आहार-दोष ही होता है। परन्तु यह दोष उन अज्ञान बच्चों का नहीं, वरन् उनके माता-पिता या पालन-पोषण करने वालों का समझना चाहिए। हमारे देश में "अधिकस्याधिक फलम्" या "जितना गुड़ डालोगे उतना मीठा होगा" कहावत प्रचलित है। इससे कितने ही लोग समझते हैं कि बालकों को भी जितना अधिक खिलाया-पिलाया जायगा, उतना ही वे हृष्ट-पुष्ट होंगे। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि यह सिद्धान्त अनिष्टकारक है। यह दोष हमारे देश में ही नहीं, किन्तु विलायत और अमे-रिका आदि देशों में भी वर्तमान है, जिसके कारण असंख्य बालकों को कष्ट होता है।

बालकों को गरिष्ठ भोजन कभी नहीं देना चाहिए। जहाँ तक हो सके, कुमारावस्था तक उन्हें सुपच भोजन, साधारण दाल, रोटी, भात और खिचड़ी आदि देना चाहिए। बालकों के भोजन में घी अधिक नहीं डालना चाहिए। साधारण रूप से दाल आदि के छौंक में जो घी पड़ता है, उसका निषेध नहीं है। बालकों के लिए पूरी, कचौड़ी, हलवा, पकौड़ी, चाट आदि भोजन गरिष्ठ होने के कारण कभी नहीं देने चाहिए और न उनको बार-बार भोजन देना चाहिए। उनके भोजन का समय नियत कर देना चाहिए। क्योंकि नियत समय पर खिलाया हुआ भोजन अच्छी तरह पच जाता है और उससे बालकों को भूख भी अच्छी लगती है। यदि किसी दशा में भोजन अच्छी तरह हज़म न हो सका हो तो उसके पच जाने के बाद ही भोजन कराना चाहिए। घी या मेवों की विशेष रूप से बनी हुई वस्तुओं को उन्हें कभी भूल कर नहीं देना चाहिए। बहुत से मनुष्यों का विचार है कि घी-मेवा आदि पौष्टिक पदार्थों का बना हुआ भोजन बालकों को विशेष गुणदायक होता है, परन्तु यह उनकी बड़ी भूल है। घी-मेवा वा अन्य किसी प्रकार के गरिष्ठ भोजन को पचाने के लिए विशेष बल की आवश्यकता होती है। परन्तु बालकों के शरीर में इतना बल नहीं होता कि जिससे वे ऐसे भोजन को पचा सकें। जब भोजन पचता नहीं तो पाकाशय को अपनी

शक्ति अधिक खर्च करनी पड़ती है, जिससे पाकाशय निर्बल हो जाता है और उसमें फिर मामूली भोजन पचाने की भी शक्ति नहीं रहती। अतएव यदि बालकों को विशेष कर केवल अन्न का ही भोजन दिया जाय तो वे उसे अच्छी तरह पचा सकेंगे। क्योंकि जो मनुष्य सूखा सेर भर अन्न खाता है, वह पाव भर घी नहीं खा सकता, और यदि खा ले तो उसको अच्छी तरह नहीं पचा सकता। घी-मेवा आदि की अपेक्षा खाली अन्न बहुत शीघ्र पच जाता है और शरीर में बल पैदा करता है। जो भोजन नहीं पचता है, उससे बल की प्राप्ति नहीं होती, बल्कि उलटे पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है। ग्रामीण मनुष्य, जो अधिकतर खाली अन्न ही खाते हैं, अन्न को अच्छी तरह पचा लेते हैं। वे उन मनुष्यों की अपेक्षा, जोकि शहरों में रहकर घी, मेवा, दूध आदि गरिष्ठ भोजन करते हैं किन्तु पचा नहीं सकते, अधिक बलवान् होते हैं।

कोष्ठ-रोध

बालकों को अतिरिक्त परिमाण में भोजन कराने से जिन-जिन रोगों का आक्रमण होता है, अब हम उनका क्रमानुसार वर्णन करते हैं। सबसे पूर्व कोष्ठ-रोध (क़ब्ज़) को ही लीजिए। इसके विषय में अनेकों का कथन है कि अधिक भोजन करने से अजीर्ण, अतीसार आदि रोग उत्पन्न हो सकते हैं, न कि कोष्ठ-रोध। इस विषय में सुप्रसिद्ध डॉ० डासन

कहते हैं —"इसका उत्तर अत्यन्त सहज है। जब बालकों का पाकाशय पिए हुए दूध के अतिरिक्त भार से पीड़ित होता है, तब अवश्य ही उसको अतिरिक्त परिमाण के दूध के पचाने के निमित्त अधिक कार्य करना पड़ता है। उसके अधिक परिमाण में कार्य करने पर भी भुक्त द्रव्य का परिपाक अच्छी तरह नहीं हो सकता। कुछ जीर्ण, कुछ अजीर्ण, और अधिकांश अल्प जीर्ण रह जाता है। ऐसी दशा में वह अल्प जीर्ण दुग्ध पाचक रस के साथ मिल कर जम जाता है। यदि दूसरी बार कम आहार किया जाय या देर से आहार किया जाय तो वह सम्पूर्ण जमा हुआ पदार्थ नरम होकर छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त हो जाता है और पाचक-रस के साथ मिल कर सहज में ही जीर्ण हो जाता है। किन्तु अति भोजन करने से यह क्रिया नहीं होने पाती। जमे हुए पदार्थ के नरम और छोटे-छोटे टुकड़ों के आकार में होने के पूर्व ही फिर नया दूध पाकाशय में जाने से उसका सम्यक् परिपाक नहीं हो सकता। इस प्रकार जल्दी-जल्दी आहार करने से पाकस्थली का कार्य बढ़ जाता है। प्रतिदिन पिए हुए अपरिमित दूध के परिपाक न होने से बहुत शीघ्र ही पाकाशय में जमाव होने लगता है। उपयुक्त परिमाण में पाचक रस न मिलने के कारण दूध का वह जमाव कड़ा पड़ जाता है और उसकी बड़ी-बड़ी गाँठें बन जाती हैं। ये गाँठें अँतड़ियों में प्रवेश कर रुकती रहती हैं, जिससे कुछ दिनों के बाद कोष्ठ-

रोध हो जाता है। इसी कारण बालक कोष्ठ-रोध, कटि-वेदना आदि पीड़ाओं से आक्रान्त होते हैं।" अमेरिका के जगत-प्रसिद्ध प्रवीण व बहुदर्शी शरीर-तत्वज्ञ डॉ० जॉनसन साहब का कथन है—"बार-बार अधिक परिमाण में भोजन करने से पाकाशय पर बहुत अधिक दबाव पड़ता है और शारीरिक सम्पूर्ण यन्त्रों में विकार पैदा हो जाता है। शारीरिक व मानसिक परिश्रम करने के कारण शरीर का सञ्चित बल नित्य-प्रति क्षय को प्राप्त होता रहता है। आहार का अच्छी तरह परिपाक होने से ही शरीर में नूतन बल का सञ्चार होता है। किन्तु आहार का परिपाक न होने पर वह पेट में रुका रहता है और उसके अन्दर रासायनिक विश्लेषण होता है, जिसके कारण पेट में गुड़गुड़ाहट, अफरा, स्फिक्-वेदना (चूतड़ों का दर्द) आदि दोष उत्पन्न होते हैं और बालक को बहुत कष्ट होता है।"

बालक की सर्दी

जिन कारणों से बालकों को अजीर्ण, उदराध्मान आदि रोग हो जाते हैं, उन्हीं कारणों से निस्सारक ग्रन्थि व यन्त्र-समूहों के कार्यों में विकार उत्पन्न हो जाता है और उसके शरीर का मल (स्वेद, मूत्र, पुरीषादि) बाहर नहीं निकल सकता। उस सम्पूर्ण मल-पदार्थ के शरीर में सञ्चित होने से रक्त-सञ्चालन के कार्य में बाधा उत्पन्न होती है। रक्त-सञ्चालन में बाधा उत्पन्न होने से रक्त में विकार का

उत्पन्न होना स्वाभाविक है। रक्त में विकार होने से बालकों को सर्दी, ज्वर आदि पीड़ाएँ घेर लेती हैं। रक्त-विकार के फल से उत्पन्न होने वाले ज्वर, सर्दी, दर्द आदि लक्षणों को देख कर लोग कहते हैं कि बच्चे को सर्दी लग गई। परन्तु वास्तव में वह ज्वर के सिवाय और कुछ नहीं होता। यहाँ पर यह कह देना उचित होगा कि जल-वायु के आकस्मिक परिवर्तन व शीत के लगने से जो सर्दी होती है, वह पूर्वोक्त सर्दी से भिन्न है। क्योंकि पूर्वोक्त सर्दी अति-भोजन और उसके फल से पाकाशय में ख़राबी होने से पैदा होती है। इसलिए बालकों के खान-पान में कभी अधि-कता नही करनी चाहिए।

कान और शिर में तेल डालना

बालकों के कान और बालों में चौथे या पाँचवें दिन अवश्य कड़ुवा तेल डालना चाहिए। जिन दिनों बालकों के दाँत निकलते हों उन दिनों तो ख़ासकर तेल डालना आवश्यक है। इससे आँखें तथा कनपटियाँ नही दुखतीं और दाँत निकलने के समय आँखों तथा कनपटियों में जो एक प्रकार की भड़कन होती है वह भी नहीं होती।

अधिकतर बालकों के शिर में मैल जम जाता है। उसको धोकर और साफ़ करके शिर में तेल लगाना चाहिए। मस्तक में हर समय तरावट रहने से बालों की वृद्धि होती है और किसी प्रकार के फोड़े-फुन्सी नहीं होने पाते। इससे

शिर में भुसी (रिप्टी) भी पैदा नहीं होती। शिर में शुष्कता रहने से प्रायः बालक का मस्तिष्क कमज़ोर हो जाता है और वह मूर्ख बन जाता है।

बालक का नासिका आदि खुरचना

बहुत से बालकों को नाक, कान या ज़मीन कुरेदने की आदत पड़ जाती है। उनकी इस आदत को छुड़ा देना चाहिए। क्योंकि नाक-कान कुरेदने से एक तो उनकी श्रवण-शक्ति में कमी आ जाती है, दूसरे धर्म-शास्त्र में नाक, कान, ज़मीन, तृण आदि को कुरेदना बड़ा कुलक्षण लिखा है। नासिका और पृथ्वी के कुरेदने के बारे में आयुर्वेद में भी निषेध लिखा है। कहा गया है कि "नासिकान्नविकुष्णीयात् तथा नाकस्माद्विलिखेत्भुवम्"—नासिका के कुरेदने से श्रवण-शक्ति में कमी और दृष्टि में बहुत कमज़ोरी आती है। यह देखा गया है कि जब कभी नासिका में चोट लग जाती है या उसके बाल उखाड़ दिए जाते हैं, तो तुरन्त ही आँखों से आँसू निकल पड़ते हैं।

कान खुजाने की आदत से भी कभी-कभी ऐसा रोग हो जाता है, जो कितनी ही चिकित्सा करने पर भी शान्त नहीं होता। हर समय कान खुजाने से उसमें एक प्रकार का घाव हो जाता है। उसके खुजाते रहने से वह बढ़ कर विकृत रूप धारण कर लेता है, जिससे बालक का कान सदा पका रहता है और उसमें से पीब निकलती रहती है। दूसरी

बात यह है कि कान खुजाकर बालक उसी अँगुली को मुँह में डाल देते हैं, जिससे कर्ण-मल का मुँह में जाना सम्भव होता है। कर्ण-मल एक प्रकार का साधारण विष है और उससे कभी-कभी रोग भी उत्पन्न हो जाता है। दाँतों के कुरेदने से दाँत छिरंरे होकर निर्बल हो जाते हैं। अतएव बालकों की कान, नाक और दाँतों को कुरेदने की आदत को छुड़ा देना चाहिए।

बालकों के पाँवों के नाखून बहुत छोटी अवस्था में कभी नहीं कटवाने चाहिए। क्योंकि लोगों का ऐसा खयाल है कि इनके काटने से बच्चों की दृष्टि में कुछ अन्तर आ जाता है। यदि कभी बालक का क्षौर (हजामत) कराया जाय, तो उनको अच्छी तरह स्नान कराके देह में से सब बाल छुड़ा देने चाहिएँ। क्योंकि ये बाल यदि किसी प्रकार से मुख, नासिका, कान या आँखों में घुस जाते हैं, तो बहुत दुःख देते हैं और उनका निकलना बड़ा कठिन हो जाता है। कभी-कभी तो कोशिश करने पर भी नहीं निकल सकते। इससे कभी-कभी बालक को बड़ा कष्ट होता है।

दाँतों का निकलना

अधिकांश लोगों का यह विश्वास है कि दाँत निकलने का समय बालकों की पीड़ा और मृत्यु का एक प्रधान कारण है। पर विचार करने पर इसमें कुछ भी सचाई नहीं जान पड़ती, और आश्चर्य होता है कि लोगो में यह भ्रम कैसे फैल गया;

क्योंकि दाँतों का निकलना एक स्वाभाविक कार्य है। जैसे हाथ-पैर आदि की उत्पत्ति व स्फूर्ति स्वाभाविक रीति से होती है, उसी तरह दाँत भी अपने आप निकलते हैं। हाथ-पैर के बनने के समय किसी बालक को पीड़ा नहीं होती तो दाँतों के निकलने से क्यों हो सकती है? डॉक्टर पेज साहब का कथन है—"दाँतों की उत्पत्ति से पीड़ा का कुछ सम्बन्ध नहीं है, अर्थात् उसमें पीड़ा आनुसङ्गिक है।" इसी तरह न्यूयार्क के प्रसिद्ध डॉक्टर डासन महोदय का कथन है—"हमारी सम्मति में मनुष्यों की झूठी धारणाओं में सबसे निरर्थक तथा निर्मूल धारणा दाँतों की उत्पत्ति के समय दुःख होने के विषय में है। दाँत निकलते समय पीड़ा का होना किसी दृष्टि से स्वाभाविक या अनिवार्य नहीं समझा जा सकता।" पाश्चात्य देशों के प्रधान-प्रधान वैज्ञानिकों ने इस विषय को भली-भाँति अनुशीलन करके यह निर्धारित किया है कि दाँत निकलते समय बालकों को जो पीड़ा होती है, वह बच्चों की अकाल-मृत्यु का कारण नहीं है। उनके कथन से यह भी ज्ञात होता है कि यदि हम प्रकृति के नियमानुसार चलें तो बालकों की उन सभी रोगों से सहज ही रक्षा हो सकती है, जो दाँत निकलते समय उनको प्रायः हुआ करते हैं।

वास्तव में दाँतों के निकलने से बालकों की मृत्यु का कोई सम्बन्ध नहीं है। आजकल संसार के सभी देशों में

बालकों की जन्म-मृत्यु का हिसाब रक्खा जाता है और उससे उनकी मृत्यु का कारण स्पष्ट मालूम हो सकता है। उससे पता चलता है कि एक वर्ष की आयु के भीतर जितने बालक मरते हैं, उनमें से फ़ी सदी १५ का कारण पेट की बीमारी होता है। वास्तव में क्या बालकों की और क्या बड़ी उम्र वालों की अधिकांश बीमारियों का कारण पेट की खराबी और भोजन का ठीक तौर से न पचना ही है। इसलिए दाँत निकलने से रोग होने के भ्रम को छोड़ कर बच्चों के पेट को सदा साफ रखना ही उनको स्वस्थ रखने का एकमात्र उपाय है।

जिन दिनों बालक के दाँत निकलते हैं, उन दिनों उसके मुँह से लार बहुत गिरती है। इसलिए उसके गले में एक रूमाल या अँगोछा बाँध देना चाहिए। जब वह भीग जाय तब तुरन्त दूसरा सूखा हुआ बदल दे और भीगे हुए को धोकर सुखा दे। सारांश यह कि उन दिनों हर समय बालक के गले में एक सूखा कपड़ा बाँधे रक्खे, अन्यथा लार के कारण छाती में शीत पहुँचने से छाती सम्बन्धी खाँसी, पसुली में पीड़ा, श्वास आदि अनेक रोग उत्पन्न होकर महा दुःख देते हैं। इन दिनों में फेफड़े, मस्तक तथा पाकाशय का कार्य ठीक-ठीक नहीं रहता और इसी से बालक को खाँसी, श्वास, अजीर्ण, अफरा, दस्त, उलटी, फोड़े, फुन्सी, खाज आदि अनेक रोग हो जाते हैं।

दाँत निकलने के समय बालक को शुद्ध-वायु का सेवन कराना परमावश्यक है। इसीलिए कर्म-काण्ड तथा धर्म-ग्रन्थों में प्रायः इन्हीं दिनों में बहिर्निष्क्रमण-संस्कार का विधान लिखा है। उसका अर्थ यही है कि बालक को उन दिनों शुद्ध-वायु का सेवन कराया जाय। यदि बालक को दाँतों के निकलने से पीड़ा अधिक होती जान पड़े तो मसूड़ों को किसी चतुर डॉक्टर से चिरवा दे। अथवा घुट्टी या हल्का विरेचन (जुलाब) दे दिया करे। इन दिनों बच्चे को खीजने या झुँझलाने न देवे। इन दिनों उनके सामने कोई ऐसा कार्य न किया जाय जिससे उन्हें रोने या मचलने की आदत पड़ जाय।

दाँत निकलने के समय लार, खाँसी, दस्त आदि को अफ़ीम आदि देकर कभी नहीं रोकना चाहिए। क्योंकि इससे बाद को बड़ी हानि होती है। पर एरण्ड का तेल (कॉस्ट्राइल) देकर विरेचन करा देने से कोई हानि नहीं होती। इन दिनों बालक को प्रायः हरे-पीले और फटे से दस्त होने लगते हैं, इसलिए वातादि भेद-ज्ञान के साथ मल-परीक्षा कर के दूध पिलाने वाली माता या धाय का खान-पान बदल देना चाहिए।

साधारणतः मल-परीक्षा इस तरह करनी चाहिए कि स्वस्थ अवस्था में बालक का मल प्रायः पकी नारङ्गी के वर्ण का और भात के गाढ़े माँड़ के समान जमा होता है।

अर्थात् न बहुत पतला न बहुत गाढ़ा है। पेट में विकार होने पर वर्ण में परिवर्तन हो जाता है, और फटे दूध के से छीछड़े और आँव मिला दस्त होने लगता है। दस्त कभी बहुत पतला और कभी बहुत गाढ़ा, चिकना और बड़ा दुर्गन्धयुक्त होता है। दाँत निकलने के समय के रोगों का वर्णन और चिकित्सा आगे चिकित्सा-प्रकरण में विस्तार-पूर्वक लिखेंगे।

मिट्टी आदि खाना

दाँत निकलने के दिनों में बहुत से बालकों को मिट्टी या ज़मीन में पड़े हुए पत्थर, तृण आदि पदार्थों को उठा कर मुँह में रख लेने की आदत पड़ जाती है। ये पदार्थ आँतों में रुक कर रोग के कारण बन जाते हैं। इसलिए इन दिनों बालक की देख-रेख बहुत सावधानी से करनी चाहिए। इन दिनों बालक की रक्षा करने के लिए मनुष्य हर समय उसकी देख-रेख करता रहे और मिट्टी आदि के मुख में देते ही निकाल कर फेंक दे। अथवा उसके हाथों में ढीली सी थैली बाँध दे जिससे वह किसी चीज़ को न उठा सके। इसके सिवाय बच्चे के बैठने-उठने या खेलने के स्थान बहुत साफ़, झाड़े-बुहारे हुए होने चाहिएँ। यदि हो सके तो उनमे दरी आदि कोई कोमल बिछौना बिछा रहना चाहिए। इस प्रकार मिट्टी आदि खाने से बालकों की रक्षा हो सकती है। यदि बालक को मिट्टी खाने की आदत पड़ गई हो तो उसकी

रक्षा करते हुए दूसरे या तीसरे दिन उसे थोड़ा सा गुड़ या मीठा खिला देना चाहिए।

बालकों को डराना

बालक को डराना किसी दशा में अच्छा नहीं है। यदि वह दङ्गा-फ़साद करता हो, या रोता हो, या भोजन न करता हो, अथवा किसी प्रकार कहना न मानता हो, या विशेष हठ करता हो, तो उसको अनेक प्रकार के भूत, पिशाच, राक्षस, भूतनी, चुड़ैल, हौवा आदि का नाम लेकर डराना नहीं चाहिए। क्योंकि इन चीजों के नाम लेने या अन्य प्रकार के डर दिखाने से कभी-कभी बालक ऐसा डर जाते हैं कि वे सदा के लिए डरपोक बन जाते हैं। बचपन का भय उनके हृदय से जन्म भर नहीं निकलता। यहाँ तक कि कभी उन्हीं बातों का स्वप्न देख कर युवावस्था में भी डर उठते हैं। उनका हृदय निर्बल हो जाने से बहुधा स्वप्न में भी वे ही बातें देख कर सोते-सोते वे रो उठते हैं। यहाँ तक कि डर के कारण कभी-कभी बिछौने में मल-मूत्र त्याग देते हैं।

यदि बालक किसी प्रकार डर गया हो तो उस दशा में उससे कभी कठोर शब्द न बोले, न किसी प्रकार की घुड़की आदि दे। किन्तु मीठे और प्यार के शब्दों से उसे समझा दे। जो बालक सोते-सोते चौंक पड़ता हो तो उसे रात्रि में अकेला कभी नहीं छोड़ना चाहिए और न अँधेरे में रखना चाहिए। उसके सोने के स्थान में रात भर दिया या लालटेन

जलाए रक्खे, जिससे बालक की आँख खुलने पर अँधेरा नज़र न पड़े। ऐसा करने से कुछ दिनों में बालक का भय जाता रहता है।

बालक का खेलना

खेल-कूद करना बालकों के स्वास्थ्य के लिए परमावश्यक है। खेलने-कूदने से भोजन अच्छी तरह पचता है, मन प्रसन्न रहता है, और रात्रि को नींद अच्छी तरह आती है, जिससे बालक का शरीर दिन पर दिन बढ़ता जाता है और शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग पुष्ट होते रहते हैं। परन्तु बालकों को विषैली वस्तु, औषधि, छुरी, क़ैंची, चाक़ू, तलवार, बन्दूक़ आदि चीज़ों से दूर रखना चाहिए। ऐसी वस्तुओं को ऐसे स्थान पर रखना उचित है, जहाँ पर उन्हें बालक न देख सके और न उन तक पहुँच सके। उसके खेलने के लिए गेंद, लट्टू, फिरकी, बिगुल, बाजा आदि खिलौने लाकर देने चाहिएँ।

बालकों के खिलौने सदैव शब्द वाले, रङ्ग-बिरङ्गे, सुन्दर, मन को भाने वाले और हल्के होने चाहिएँ। उनका नुकीला या धारदार होना हानिकारक है। वे इतने छोटे आकार के न हों कि बालक के मुख में चले जावें। खिलौने देखने में डरावने न होने चाहिएँ, क्योंकि ऐसे खिलौनों से बालक सदा शङ्कित बना रहता है।

खिलौनों के विषय में एक बात और भी है। जो खिलौने बालक के मुँह मे लगें या बालक उनको मुख में दे, वे बिना

किसी पॉलिश के होने चाहिएँ। क्योंकि आजकल विदेशों से जो सुन्दर चमकीले खिलौने आते हैं, उनकी पॉलिश में प्रायः विष (सङ्खिया) का अंश होता है, जो बालक के मुख में लार द्वारा घुल कर पेट के भीतर चला जाता है और बालक की जान को खतरे में डाल देता है। इसलिए बिना पॉलिश के खिलौने ही बच्चों को देने चाहिएँ। चरक ने लिखा है कि—"क्रीडनकानि खल्वस्य विचित्राणि घोषवन्त्यभिरामाणिचागुरूणिचा तीक्ष्णाग्राणिचा नास्यप्रवेशीनि चाप्राणहराणि चावित्रासनानिस्यु।" इसमें 'अप्राणहराणि' का अर्थ यही है कि खिलौने किसी प्राण-नाशक विष आदि के संयोग से न बने हों।

टीका लगवाना

पहले वर्ष के भीतर ही (चौथे-पाँचवें महीने में या हो सके तो दूसरे महीने में ही) बालक को टीका लगवा देना उचित है। टीका लगवाते समय पूरी सावधानी रखनी चाहिए, जिससे बालक उसे खुजा न डाले। उस समय जो ज्वर, खाँसी आदि उत्पन्न हों, उनको रोकने के लिए कोई औषधि न दी जाय, जैसा कि बहुधा मूर्ख स्त्रियाँ कर बैठती हैं। क्योंकि इन दिनों बालक को अवश्य ही ज्वर हो जाता है, और टीके के स्थान पर सूजन भी हो जाती है। इनके सिवाय कभी-कभी अन्य प्रकार की पीड़ा होने लगती है। ऐसी दशा में शीघ्र ही कोई उपाय नहीं करना चाहिए।

यदि बालक पाँच या छः महीने का हो तो उसके कुर्ते या अङ्गरखे की दोनों बाँहें उधेड़ देनी चाहिएँ, जिससे टीका का स्थान रगड़ने न पावे। क्योंकि उसके छिल जाने से वहाँ पर घाव के साथ शोथ होकर पक जाता है, जिसके कारण बालक को बड़ा कष्ट भोगना पड़ता है। जहाँ-जहाँ इसका चेप लगता है वहाँ भी फफोले पड़ जाते हैं। कभी-कभी यहाँ तक देखा गया है कि थोड़ी सी असावधानी के फल से सम्पूर्ण देह, मुँह, कान, नासिका आदि में फफोले पड़ जाते हैं। इसलिए बालक के दोनों हाथों में कपड़े की पट्टी या थैली बाँध देनी चाहिए जिससे वह टीका को खुजा न सके।

बहुत सी मूर्ख स्त्रियाँ टीका लगवाना बड़े डर या हानि की बात समझती हैं और टीका लगने पर घर आते ही या मौक़ा मिलने पर उसे तुरन्त पानी से धो डालती हैं। ऐसा करना बड़ी भूल है। क्योंकि एक बार के टीका लगाने से शीतला निकलने की शङ्का जाती रहती है। यदि सात वर्ष की आयु में एक बार फिर टीका लग जावे तो फिर कभी शीतला निकलने का डर नहीं रहता। कोई-कोई तो अपने बालकों को युवावस्था में तीसरी बार टीका लगवा देते हैं। टीका लगाने की उपयोगिता तथा अनुपयोगिता के विषय में हम आगे चल कर चिकित्सा-प्रकरण में कुछ और लिखेंगे।

टीका लगने पर जब फफोले उठ आवें तो उनको फूटने से बचावे, जिससे वे अपने आप बैठ जावें या वैक्सीनेटर उनका पीब निकाल कर ले जावे। फफोलों के बैठने के दो-चार दिन में ही उस स्थान पर खुरण्ट बँध जावेगा। खुरण्ट को हाथ से नोच कर नहीं छुटाना चाहिए।

बालक को घृत-पान

दूध पीने वाले बालक को दूध और मधु के साथ मात्रानुसार यदि थोड़ा-थोड़ा घृत-पान कराया जाय तो अत्यन्त गुणदायक होता है। क्योंकि प्रतिदिन घृत-पान कराने से बालकों को क़ब्ज़ नहीं होता और अग्नि बलवान् रहती है। इसके साथ ही उनके ऊपर सहसा किसी रोग का आक्रमण नहीं हो सकता। यह घृत-पान बालकों की अवस्थानुसार भिन्न-भिन्न औषधियों के साथ मिला कर निम्न-लिखित रीति से कराना चाहिए :—

१—अनन्तमूल, अपामार्ग, कूट, जटामाँसी, क्षीर-काकोली, पीपल, पीली सरसों, दुधबच, ब्राह्मी, शतावर, सेंधा-नमक और हल्दी दो-दो तोले और गाय का घी एक सेर। पूर्वोक्त बारह औषधियाँ कूट कर पानी के साथ सिल पर पीस कर लुगदी बना ले। फिर घी, लुगदी तथा चार सेर जल एक कड़ाही या क़लई किए हुए पात्र में डाल, मन्द-मन्द अग्नि से पकावे। जब केवल घी मात्र शेष रहे तो उतार कर कपड़े में छान ले। केवल दूध पीने वाले बालक को इस घी में से

तीन-चार बूँद से एक माशे पर्यन्त दूध और मधु के साथ मिला कर दिन में एक समय पिलाने से बालक आरोग्य रहता है और उसके बल-बुद्धि तथा आयु की वृद्धि होती है। उसको किसी प्रकार का उदर-विकार भी उत्पन्न नहीं होने पाता।

२—असगन्ध एक पाव, गाय का घी एक सेर, और गाय का दूध दो सेर, इन तीन चीज़ों का पूर्वोक्त विधि के अनुसार घी तैयार करके सेवन कराने से बालक आरोग्य, बलवान् और पुष्ट होता है।

३—हरड़, सोंठ, मिर्च, पीपल, सहजने की छाल, सेंधा नमक, दुधवच, पाढ़—इन सब औषधियों को बराबर-बराबर ले। सब औषधियों का वज़न मिला कर पाव भर होना चाहिए। फिर घी एक सेर और बकरी का दूध दो सेर ले। पहले पूर्वोक्त औषधियों को पानी के साथ पीस कर लुगदी बना ले। बाद को लुगदी, घी और दूध को एक पात्र में डाल मन्द-मन्द अग्नि में पकावे। सिद्ध हो जाने पर उतार-छान कर दूध या मिश्री के साथ खिलाने से बालक की वाणी, बुद्धि, स्मरण-शक्ति और धारणा-शक्ति की वृद्धि होती है और बालक सदैव आरोग्य रहता है। इस घृत का नाम सारस्वत-घृत है।

४—दूध और अन्न खाने वाले बालकों को निम्न प्रकार से घृत तैयार करके सेवन कराना चाहिए :—

आँवला, चित्रक, पीपल, बहेड़ा, दुधबच, मुलेठी और हरड़ तीन-तीन तोले, गाय का घी एक सेर और जल या दूध चार सेर लेकर पूर्वोक्त प्रकार से घृत सिद्ध कर ले। इसको सेवन कराने से बालक आरोग्य, हृष्ट-पुष्ट और बलवान् बनता है।

५—अरणी की छाल, काली मिर्च, खम्भारी की छाल, तगर, क्षीर काकोली, देवदारु, पाढ़, पृष्टिपर्णी (पिठवन) बड़ा गोखुरू, बड़ी कटेली, बायविडङ्ग, बेल की छाल, ब्राह्मी, छोटी कटेली, मुनक्का, मुमेठी शालपर्णी, और अरण्ड की छाल एक-एक तोला, गाय का घी एक सेर, गो-दुग्ध चार सेर—इन औषधियों का पूर्वोक्त विधि के अनुसार घृत तैयार कर सेवन कराना चाहिए। इससे बालकों की भूख बढ़ती है और वे हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान् होते हैं। यह घृत केवल अन्न खाने वाले बालकों के लिए है।

६—बच, ब्राह्मी, सफेद सरसों, अनन्तमूल, सेंधानमक और पीपल—इन सबको पाव भर लेकर पानी के साथ पीस कर लुगदी बना ले। फिर इस लुगदी, एक सेर गो-घृत तथा चार सेर गो-दुग्ध को एक पात्र में डाल कर घृत की विधि के अनुसार पका ले। इसमें से बालक की अवस्था के अनुसार दूध, मिश्री अथवा शहद के साथ खिलावे। इससे बालक की स्मरण-शक्ति दृढ़ और बुद्धि तीव्र होती है। इसका नाम अष्टमङ्गल-घृत है।

बालक के लिए अवलेह

वाग्भट्ट में लिखा है कि निम्न-लिखित योगों में से किसी एक योग को वर्ष दिन तक चटाने से बालक की बुद्धि, वर्ण, बल और शरीर की वृद्धि होती है :—

१—सुवर्ण-भस्म, कूट, शहद, घी और दुधबच—सबको योग्य प्रमाण में मिला कर चटाना चाहिए।

२—सुवर्ण-भस्म, मछेछी, शङ्ख-भस्म को शहद और घी में मिला कर चटाना चाहिए।

३—अर्क-पुष्पी (अन्धाहुली) और सुवर्ण-भस्म को घी और शहद में मिला कर चटाना चाहिए।

४—कायफल, दुधबच और सुवर्ण-भस्म को घी तथा शहद में मिला कर चटाना चाहिए। इन योगों के सेवन से बालक सर्वथा आरोग्य और बुद्धिमान् रहता है।

उबटन और स्नान

कूट, जौ का आटा और सफेद चन्दन को पानी में बारीक पीस कर, थोड़ा कड़आ तेल मिला कर, गरम करके बालकों के शरीर में उबटन करे। अथवा भुनी सरसों और चिरौंजी का उबटन करके खस और गोरखमुण्डी के काढ़े से स्नान करावे।

बालकों के लिए काकड़ासिङ्गी तथा बकायन के क्काथ से स्नान कराना बहुत गुणदायक है। स्नान और उबटन के

बारे में पहले भी कुछ लिख आए हैं। परन्तु आजकल उबटन का प्रयोग बिल्कुल उठ सा गया है। उसके स्थान पर आजकल मामूली लोग भी साबुन का प्रयोग करने लगे हैं। परन्तु साबुन और उबटन में एक से गुण नहीं होते। यह बात सभी को ज्ञात है। उबटन करने से त्वचा कोमल होती है और बालों की वृद्धि होती है; परन्तु साबुन लगाने से त्वचा शुष्क हो जाती है और उसमें से बालों का पौष्टिक खाद्य-पदार्थ भी नष्ट हो जाता है। इसलिए जहाँ तक हो सके बालकों के शरीर में उबटन ही करना चाहिए।

बालक का व्यायाम

जैसे किसी मशीन के लिए उसमें तेल देना परमावश्यक है, उसी तरह बच्चों के लिए खेल-कूद के रूप में कुछ कसरत कर लेना, हाथ-पैरों को हिलाना-चलाना भी निहायत ज़रूरी है। खेल-कूद करना बच्चों के शरीर-रूपी मशीन में तेल का पड़ना है। स्वच्छ वायु तथा सूर्य के प्रकाश में खेलना, कूदना, उछलना, दौड़ना, गिरना, ज़ोर की किलकारी भरना आदि शरीरस्थ स्नायु-केन्द्र, हृदय, फेफड़ा, पाकाशय और अन्यान्य अवयवों के लिए अत्यन्त पुष्टिकारक हैं। त्वचा को निरन्तर कुछ काम करते रहना अत्यन्त आवश्यक है।

बालक अपनी छोटी उम्र से ही कसरत करना शुरू कर देते हैं जो स्तन चूसने, रोने, लात मारने, हाथ-पैर हिलाने इत्यादि के रूप में होती है। कुछ बड़े होने पर वे उठने-बैठने

और गिरने के रूप में कसरत करते हैं। बच्चों को दिन में दो बार १५ या २० मिनट तक स्वतन्त्रता से अपने अवयवों को अवश्य हरकत देनी चाहिए। गर्मी के दिनों में यदि बालक खुले बराण्डे या दालान में बिछौने या कम्बल पर खेलता रहे तो कुछ हानि नहीं है। पर गर्म हवा या लू से बचने के लिए पर्दा टँगा रहना चाहिए, या बालक के शरीर पर कोई मोटा वस्त्र पहिना दिया जाय। ऐसे स्थान पर बालक को हाथ-पैरों के चलाने और मस्त रहने को स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए। दुर्बल बच्चों को उन दिनों को छोड़ कर, जब कि गर्मी अत्यन्त अधिक हो, काफ़ी वस्त्र पहिनाए रखना आवश्यक है। थोड़ी सी असावधानी से उन्हें प्रायः सर्दी हो जाती है। पर पूर्ण स्वस्थ बालक सर्दी के दिनों में भी यदि खुली हुई वायु में खेलता रहे तो उसे सर्दी आदि का ज़रा भी भय नहीं रहता ? हाँ, इतना आवश्यक है कि उसे गरम वस्त्र पहिना दिए जायँ, और दरवाज़े तथा खिड़कियों पर बहुत ठण्ढी वायु के रोकने के लिए पर्दे लगा दिए जायँ। बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते हैं, वे खेल के अधिक प्रेमी होते जाते हैं। वे पहले बैठने की चेष्टा करते हैं, फिर घुटनों के बल खिसकने की, और फिर उठ कर खड़े होने और चलने की। किसी हालत में बच्चे को गीला या पानी में भीगा हुआ नहीं रहने देना चाहिए। मूत्र आदि से भीगे हुए वस्त्रों को पहिने हुए फिरते रहना बच्चों के लिए अत्यन्त

हानिकारक है। बरसात के दिनों में बच्चों को बाहर नहीं ले जाना चाहिए। खेलने के समय नीचे दरी या कम्बल अथवा जाजिम बिछा देना चाहिए, जिससे वे मैले न हों और उन्हें गन्दे रहने की आदत न पड़ जाय।

बालक को गर्म रखना

बच्चों के पालन-पोषण में यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि बच्चों की सुकुमार त्वचा बड़े मनुष्यों की अपेक्षा कई गुना अधिक सर्दी को ग्रहण करती है। इसलिए जब कभी उसे खुली हवा में ले जाय तो उसके शरीर को गर्म बनाए रखने के लिए उसे अच्छी तरह गर्म वस्त्र पहिना दिए जायँ। बहुत सी स्त्रियाँ अपने बच्चों को बिना आवश्यकता के गर्मी के दिनों में भी बहुत अधिक वस्त्र पहिना देती हैं। यह बात उचित नहीं है। क्योंकि इससे बच्चों की त्वचा अधिक कोमल और बहुत शीघ्र ही सर्दी को ग्रहण करने वाली हो जाती है। प्रायः नङ्गे रहने वाले बच्चों की अपेक्षा कपड़े से लदे रहने वालों को ही अधिकतर सर्दी आदि की बीमारियाँ हुआ करती हैं।

बहुत बार बच्चों के वस्त्रों को एकाएक बदलने में भी भूल हो जाती है, जिस पर माताओं का ध्यान नहीं जाता। बालक अभी फ़लालैन का गर्म कुरता पहिन रहा है, फ़ौरन ही उसे उतार कर पतला सूती कुर्ता पहिना दिया। ऐसा करने से बच्चे को हानि पहुँचने का डर रहता है।

बालक के शिर का टोपा

बच्चों के लिए ऊन के भारी टोपे और रुईदार टोपे अत्यन्त गर्म होने के कारण बड़े हानिकारक होते हैं। क्योंकि ऐसे टोपों के पहिनने से पसीना आता रहता है और बच्चों के शिर में सर्दी समा जाती है। अत्यन्त सर्दी में भी बच्चे का शिर खुला रहने से कोई हानि नहीं हो सकती, यदि उसका शरीर अच्छी तरह गर्म वस्त्रों से ढका हुआ हो। यदि टोपा उढ़ाना हो तो वह हल्का, ठण्डा और गर्म हो। शिर और आँखों को ठण्ड की अपेक्षा धूप की चमक और तेज़ गर्मी से बचाना अधिक आवश्यक है।

सोने के समय के वस्त्र और बिछौने

सोने के समय बच्चे को कभी नङ्गा न सुलावें। उसके वस्त्र ऐसे हों जो उसे सोने में आराम दें। विशेषकर जाड़े में सोने के वस्त्र ऐसे होने चाहिएँ, जो अधिक गर्म हों और साथ ही अत्यन्त हल्के भी हों, जिससे बच्चे को श्वास लेने में जरा भी कष्ट न हो और न करवट बदलने में कोई अड़-चन हो। इस काम के लिए ऊन के वस्त्र सबसे अच्छे होते हैं। खूब घना बुना हुआ शाल, दो-तीन तह करके डाल देना सबसे उत्तम है। यह न हो सके तो भारी कम्बलों की अपेक्षा नई रुई से भरी हुई रजाइयाँ उत्तम हैं। यदि बालक शीतल वायु में सोता हो तो इस बात का ध्यान रखना आवश्यक

है कि कहीं से ठण्ढी वायु उसके शरीर में तो नहीं लग रही है।

बालक की खटोली पर पहले एक नया कम्बल बिछाए, उस पर नई भरी हल्की तोशक और ऊपर चादर बिछा दे। कम्बल और तोशक ऐसे हों जो सम्पूर्ण खटोली को ढक सकें। ऊपर की चादर बिछौने से क़रीब ६ इञ्च बड़ी होनी चाहिए और वह मोड़ कर सेफ़्टीपिन से या और किसी तरह तोशक पर इस तरह जमा देनी चाहिए जिससे सिकुड़ न जाय। ऊपर अधिक कपड़े नहीं डालने चाहिएँ। अत्यन्त भारी कपड़ों का उढ़ाना भूल है। क्योंकि इससे बच्चे की निद्रा बार-बार भङ्ग होती है और उसे श्वास लेने तथा करवट लेने में अड़चन होती है। कमज़ोर बच्चों को इससे विशेष कष्ट होता है।

यदि बिछौना काफ़ी गर्म हो तो बच्चों को ठण्ढी हवा से हानि पहुँचने का कुछ भी डर नहीं रहता। वरन् उससे बालक को ख़ूब नींद आवेगी और भूख लगेगी। उसकी वृद्धि होगी तथा मांस और रक्त बढ़ेगा। गालों पर गुलाबी रङ्गत आवेगी। बन्द और गर्म कमरे में जहाँ हवा बिल्कुल न आती हो, बच्चे को सुलाने से वह रोगी, कमज़ोर, पीला और चिड़चिड़ा तथा रोने वाला हो जाता है।

नींद और विश्राम

बच्चों को निर्विघ्न नींद की आवश्यकता है। नवजात बालक प्रतिदिन प्रायः १०-१५ घण्टे सोता है। छः महीने की

अवस्था में अगर बच्चे को १५-१६ घण्टे नींद नही आती है तो वह निस्सन्देह अस्वस्थ है। बहुत करके उसे अजीर्ण होगा, जो प्रायः अनियम से या अत्यधिक दूध पिलाने से उत्पन्न हो जाता है। अथवा बच्चा भूखा होगा। या उसे सर्दी लगती होगी, या वह भीगा होगा, या ओढ़ने के वस्त्रों के बोझ से दब रहा होगा, या कमरे में स्वच्छ वायु न होगी, या कहीं पर उसके खुजली चल रही होगी। इसी प्रकार के किसी न किसी कारण से बच्चा सोते-सोते एकाएक जग जाता है। ऐसे अवसर पर पता लगा कर उस कारण को दूर करना चाहिए। बालकों को सदा काफी समय तक सुलाए रखना बहुत जरूरी है। जब तक बालक ५ या ६ साल का न हो जाय, तब तक उसे प्रातःकाल के समय सोने देना और विश्राम मे किसी प्रकार की बाधा न डालना अत्यन्त आवश्यक है। विशेषकर ग्रीष्म-ऋतु में बच्चे प्रायः प्रातःकाल के समय जग जाते हैं। इस समय विश्राम या नींद लेने का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है और बच्चा फिर दिन भर नहीं रोता।

बालक को नियमित आदत का अभ्यास

बालकों के लिए ठीक समय पर नियमित रीति से खाने, सोने, खेलने और टट्टी जाने की आदत होना अत्यन्त आवश्यक है। जिन बच्चों को ठीक समय पर खाने, सोने और टट्टी जाने की आदत नहीं होती, वे सदा रोगी बने

रहते हैं, और माताओं को उनसे बड़ी असुविधा रहती है। इसके सिवाय जहाँ बच्चों की आदतों को नियमित रखने का ध्यान नहीं रक्खा जाता, वहाँ पर बड़ी गन्दगी और गड़बड़ी रहती है।

प्रायः स्त्रियों की आदत होती है कि ज्योंही बच्चा ज़रा रोया, झट उसके मुँह में स्तन दे दिया। चाहे वह अजीर्ण के कारण पेट में पीड़ा होने से ही क्यो न रोता हो। यह भी देखा जाता है कि बच्चों को दिन भर ठूँस-ठूँस कर खिलाया जाता है। खासकर घर की बड़ी-बूढ़ियों को यह आदत होती है कि वे कुछ मिठाई या और कुछ सटर-पटर बच्चों को निरन्तर खिलाती रहती हैं। वे नहीं खाना चाहते तब भी उन्हें डरा-धमका कर या फुसला कर, खाने के लिए लाचार किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चों की पाचनशक्ति प्रायः बिगड़ जाती है। बच्चों के पीले रङ्ग, दुबले हाथ-पैर, मटका सा बढ़ा हुआ पेट, रोनी सूरत, जो घर-घर में देखने को मिलती है, उसका कारण यह मूर्खता-युक्त लाड़-प्यार ही है।

बैठक में, रसोई में, बिछौने पर, यहाँ तक कि पाखाना फिरते हुए भी बच्चे कुछ न कुछ हाथ में लिए खाया करते हैं, और माताएँ देखा करती हैं। वे इस बात से बड़ी प्रसन्न होती हैं कि बालक रो-पीट कर उन्हें तङ्ग नहीं करता और रोटी आदि का टुकड़ा पपोलने में लगा हुआ है। परन्तु

ऐसे बच्चे गन्दे, रोगी, हठी और बेतमीज़ हो जाते हैं और जन्म भर वैसे ही रहते हैं। ऐसे बच्चे प्राय: खाते-खाते रसोई या बिस्तरे पर पाख़ाना फिर देते हैं या उल्टी कर देते हैं। परन्तु मूर्खा माताएँ फिर भी उनको उसी तरह खिलाती रहती हैं। ऐसा करने से उनका स्वास्थ्य बिल्कुल बिगड़ जाता है और वे सदा रोगी रहते हैं। जिन बच्चों को सोने और खेलने की नियमित आदत नहीं होती, वे सदा अपनी माता को दु:ख देते हैं। वे दिन भर बार-बार सोते हैं और रात को जाग कर रो-रोकर माता को कष्ट देते हैं। ऐसे बच्चे प्राय: चिड़चिड़े हो जाया करते हैं। यह बात पीछे भी कही जा चुकी है कि बच्चों को सदैव नियमित समय पर ख़ूब पाबन्दी के साथ आहार दिया जाना चाहिए और नियमित समय से पूर्व उन्हें कुछ भी नहीं देना चाहिए। इस बात पर बारम्बार ध्यान देना और बहुमूल्य उपदेश समझ कर इसका पालन करना चाहिए।

ठीक समय पर बच्चे का सुख की नींद सोना उसकी तन्दुरुस्ती का सबसे उत्तम प्रमाण है। यदि बालक की नींद में कुछ गड़बड़ी जान पड़े, तो समझना चाहिए बच्चा सर्वथा स्वस्थ नहीं है, उसे कुछ न कुछ तकलीफ़ अवश्य है। परन्तु जिन बच्चों के सोने का कोई नियत समय नही होता उनके स्वास्थ्य का पता लगाना बहुत कठिन होता है।

सबसे अच्छी बात यह है कि बच्चा प्रात:काल उठते ही

टट्टी जावे। यदि यह सम्भव न हो तो कम से कम १० बजे तक उसे अवश्य टट्टी जाना चाहिए। यदि दस्त न हो तो इस बात की जाँच करे कि बच्चा रोगी है या आरोग्य। बहुत सी माताओं की यह शिकायत रहती है कि उनके बालकों के टट्टी जाने का कोई नियमित समय नहीं है। इसका कारण यह है कि बालक आदत के जीव हैं, उन्हें जैसी आदत डाल दी जावेगी वैसी ही जन्म भर रहेगी। ठीक समय पर दस्त जाने की आदत अनिवार्य होनी चाहिए। यदि किसी बालक को क़ब्ज़ रहता है तो जब तक वह दूर न हो जाय बराबर उसकी चिकित्सा करनी चाहिए, क्योंकि यह शिकायत पुरानी होने पर बड़ी कठिनता से दूर होती है। इसलिए उचित है कि आरम्भ से ही उसे दूर कर दिया जाय।

जिन बच्चों को दस्त साफ़ नहीं होता उन्हें हमेशा बद-हज़मी की शिकायत बनी रहती है। इस प्रकार के क़ब्ज़ का एक बड़ा कारण यह है कि बहुत सी माताओं के दूध में चिकनाई का भाग अधिक होता है और जन्म के प्रथम ३-४ सप्ताह तक बच्चा उसे अच्छी तरह पचा नहीं सकता। इसी तरह गाय आदि के दूध पर जो बालक जीते हैं, उन्हें भी थोड़ा-बहुत क़ब्ज़ अवश्य रहता है।

क़ायमी क़ब्ज़

बराबर बना रहने वाला बच्चों का क़ब्ज़ अधिक चिन्तनीय है और उस पर पूर्ण ध्यान देने की आवश्यकता

है। हर हालत में दिन भर में एक दस्त तो आना ही चाहिए। जो बालक साफ़, हवादार मकान के बजाय गन्दी और तङ्ग कोठरियों में रक्खे जाते हैं वे बहुधा क़ब्ज़ के शिकार होते हैं। यह बात निश्चय जान लेनी चाहिए कि प्रत्येक बालक के लिए खुली वायु और धूप में रहने और खेल-कूद का पूरा अवसर अवश्य मिलना चाहिए। शरीर को हरकत देने का प्रभाव आँतों पर बहुत पड़ता है।

बालक का क़ब्ज़ दूर करने का एक सरल उपाय यह है कि उसकी छाती पर दाहिनी तरफ़ की पसलियों के ऊपर हाथ फेरे और फिर नाभि तक ले जाय। फिर दूसरी तरफ़ की पसलियों पर इसी तरह हाथ फेर कर नाभि तक लाए। हाथ गर्म करके धीरे-धीरे फेरना चाहिए और ज़रा सा मीठा तेल गर्म करके हाथ में चुपड़ लेना चाहिए। यह क्रिया ठीक उस समय करनी चाहिए जब बालकों के दस्त जाने का समय हो। इसमें अनुमानतः ५ मिनट का समय लगता है।

गाय के जिस दूध में पानी मिला होता है, उसमें घी कम और मलाई कुछ अधिक होती है। वह दूध बहुधा बच्चों को क़ब्ज़ कर देता है। यही परिणाम अधिक घी वाले दूध का भी होता है। ज्यादा औटाने से दूध गाढ़ा हो जाता है, इसलिए वह भी बच्चों को क़ब्ज़ करता है। डब्बे का दूध पीने से बच्चों को प्रायः बदहज़मी हो जाती है। बदहज़मी से क़ब्ज़ और बाद मे अतीसार हो जाता है।

यदि क़ब्ज़ की अत्यन्त शिकायत हो तो डब्बे के दूध में चूने का पानी और 'साल्ट' का पानी मिला कर देना चाहिए। यह साल्ट बाज़ार में सब जगह पन्सारियों के यहाँ मिल जाता है। इसे गर्म पानी में घोल कर निथार लेने से उसका पानी बन जाता है। इस तरह प्रतिदिन दूध में एक तोला चूने का पानी और एक तोला साल्ट का पानी मिला कर दिया जाय तो बहुत लाभ होगा। परन्तु बिना चिकित्सक की आज्ञा लिए एक सप्ताह से अधिक दिन तक इसे जारी नहीं रखना चाहिए। स्मरण रहे कि सब प्रकार की विरेचक औषधियाँ हानिकारक होती हैं। क़ायमी क़ब्ज़ एक बुरा रोग है और इसकी सावधानी से चिकित्सा करनी चाहिए।

यदि क़ब्ज़ के कारण बालक को बहुत तकलीफ़ हो तो उसे एनिमा (पिचकारी) देना चाहिए। पिचकारी में एक छोटा चम्मच भर पिसा हुआ खाने का नमक और एक पाव गरम जल होना चाहिए। साबुन और पानी का मामूली एनिमा बालकों को नहीं देना चाहिए। यह बहुत हानिकारक होता है।

बालक को पिचकारी देने की विधि यह है कि चौकी या कुर्सी पर बैठ कर बच्चे को घुटनों पर चित लिटा दे। बाएँ हाथ से उसके दोनों पैर ऊपर को उठा कर दाहिने हाथ से बहुत हल्के से एनिमा दे, जिससे पानी आसानी से पेट में चला जाय। ग्लैसरीन की पिचकारी भी इसी तरह देनी

चाहिए। बालकों को हरे-पीले दस्त आना और क़ब्ज़ रहना आदि का इलाज चिकित्सा-प्रकरण में भली-भाँति लिखा जायगा। यहाँ पर विशेषतः उनके कारणों को बताया गया है।

बच्चों की ख़राब आदतें

बहुत से बच्चों को ऐसी आदत होती है कि वे अपनी अँगुली, कपड़े, खिलौने, मिट्टी, कङ्कड़ आदि जो कुछ मिल जाता है उसी को मुख में रख लेते हैं। इससे उनकी पाचन-शक्ति और मुख के अवयवों को बहुत हानि पहुँचती है। कपड़ों में प्रायः मैले और ज़हरीले परमाणु रहते हैं। इसी प्रकार बहुत से विलायती खिलौनों में ज़हरीले रङ्ग लगे होते हैं। इसलिए बच्चों को यह आदत कदापि न पड़ने देनी चाहिए। अँगुलियों के नाखून एक ज़हरीली वस्तु हैं। मिट्टी में प्रायः रोग के कीटाणु मिले रहते हैं। मिट्टी वैसे भी कुछ खाने की वस्तु नहीं है। मिट्टी खाने वाले बालक बहुधा मर जाते हैं, अथवा पेट के असाध्य रोगों, या पाण्डु-रोग, या ज़हरवाद की बीमारी में फँस जाते हैं।

बिस्तर पर दस्त-पेशाब करना

बहुत छोटी अवस्था से ही बच्चों को यह आदत डाली जा सकती है कि वे दस्त-पेशाब की हाजत होने पर सङ्केत कर दें, और बिछौना ख़राब न करें। यह बात कुछ तो माता की सावधानी पर निर्भर है और कुछ बच्चे के

स्वास्थ्य और स्नायु-शक्ति पर। साधारण स्वास्थ्य वाला बच्चा यदि दूसरे वर्ष भी बिछौने पर में पेशाब करता हो, तो उस पर ध्यान देना उचित है। यदि तीसरे वर्ष में भी उसकी आदत न छूटे तो किसी डॉक्टर या वैद्य से अवश्य सलाह लेनी चाहिए। कभी-कभी बड़ी उमर में भी किसी दिन ठण्ढ लग जाने, या अजीर्ण हो जाने से बच्चे को बिछौने पर पेशाब हो जाता है, पर यह कोई रोग नहीं कहा जा सकता। यह आदत दुर्बल बच्चों ही को होती है। ऐसी आदत वाले बच्चों को शाम के चार बजे के बाद कोई तरल पदार्थ खाने को नहीं देना चाहिए। उस समय ठोस आहार और रोटी आदि देना चाहिए, तथा प्रातःकाल दूध और लस्सी आदि पतली चीज़ें देनी चाहिएँ। ऐसा कुछ दिन करने से यह आदत छूट जावेगी।

मूत्रेन्द्रिय को मसलना

बहुत से बच्चे प्रायः हाथ से मूत्रेन्द्रिय को मसलते रहते हैं या बिस्तर पर लेट कर बिछौने से रगड़ते रहते हैं, अथवा किसी अन्य वस्तु द्वारा रगड़ते हैं। यह अत्यन्त हानिकारक आदत है। यदि बच्चे को यह आदत पड़ जाय तो तत्काल छुड़ा देनी चाहिए। यदि वह इन्द्रिय में मैल जमने, खुजली चलने आदि के कारण ऐसा करता हो, तो ये कारण दूर करने चाहिएँ। अन्यथा इससे आगे चल कर ख़राबी की सम्भावना रहती है।

झूले में हिलाना या गोद में लेना

माताएँ प्राय: बच्चों को झूले में डाल कर हिलाया करती हैं या गोद में रखती हैं। इससे फिर वे चुपचाप बिछौने पर नहीं सोते। झूला हिलाना बन्द होते ही रोने लगते हैं। गोद में हर समय लेने से बच्चे की वृद्धि रुक जाती है।

हकला कर बोलना

हकला कर बोलना वास्तव में कोई बीमारी नहीं है, किन्तु एक बुरी आदत है। हमने बहुत से मनुष्यों को देखा है जो किसी हकलाने वाले व्यक्ति की नक़ल करते हैं, जिससे उनकी भी कुछ दिनों के बाद वैसी ही आदत पड़ जाती है। बहुत से बच्चे लाड़ में आकर हकला कर बोलना शुरू करते हैं और फिर धीरे-धीरे हकले बन जाते हैं।

नशीली चीज़ों का सेवन

बहुत से बच्चों को अपने घर के बड़े बच्चों तथा कुटुम्बियों को देख कर तम्बाकू, सिगरेट, सुर्ती खाने की आदत पड़ जाती है। इस आदत से उनके फेफड़ों पर बुरा प्रभाव पड़ता है और कुछ काल में उन्हें श्वास, कास के रोग घेर लेते हैं। सुर्ती के विशेष उपयोग से आँखों की शक्ति क्षीण हो जाती है, मुख से दुर्गन्ध आने लगती है और दाँतों की जड़ छिल जाती है तथा वे काले पड़ जाते

हैं। इसके सिवाय पाचन शक्ति पर भी इसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है।

आजकल प्रायः सभी मनुष्य चाय-कॉफ़ी का कुछ न कुछ सेवन करते ही हैं। चाय का रिवाज इतना बढ़ गया है कि मामूली घरों में भी चाय बनती है, चाहे उसके बनाने की विधि उनको ज्ञात हो या न हो। उनको उसके गुणों का भी पूरा पता नहीं रहता। वे केवल इतना जानते हैं कि इसको सब पीते हैं, इसलिए यह पीने की चीज़ है। वे लोग अपने छोटे-छोटे बच्चों को भी लाड़ करके थोड़ी सी चाय दे देते हैं, इससे वे बच्चे उसके आदी हो जाते हैं और जब तक उन्हें चाय न दी जाय वे सुस्त रहते हैं। बच्चों को ऐसी आदत डालना अत्यन्त बुरा है। इससे वे बड़े होकर क्षीण, दुर्बल और धातु तथा बदहज़मी के रोगों से पीड़ित रहते हैं।

छुटपन में बालकों को पान खाने की आदत भी नहीं डालनी चाहिए। इससे उनके दाँत ख़राब और मैले बने रहते हैं। यदि कभी आवश्यकता हो तो वे पान का रस चूस सकते हैं। परन्तु कत्था-चूना लगा हुआ पान खाने से दाँतों की जड़ ख़राब हो जाती है।

बालकों से बर्ताव

पहले हमने इस बात को संक्षेप रूप से बताया था कि बच्चों के अन्दर शीशे की तरह दूसरे के व्यवहारों को ग्रहण करने की शक्ति होती है। अर्थात् बच्चे दूसरे का अनु-

करण करने में शीशे का काम करते हैं। प्रायः ऐसा देखने में आता है कि बालक अपने माता-पिता, गुरु तथा पड़ोसी आदि को जैसा करते देखते हैं, वैसा ही वे करने या सीखने की चेष्टा करते हैं। इसमें उनका कुछ भी दोष नहीं है, यह प्राकृतिक बात है। आजकल यह एक साधारण बात है कि ५-६ वर्ष की अवस्था के अनेक बालक सिगरेट-तम्बाकू पीते देखने में आते हैं। जब उनसे पूछा जाता है तो वे जवाब देते हैं कि हमारे बड़े तथा पड़ोसी आदि भी तो ऐसा ही करते हैं। अब यह दोष किसका है? बच्चों का या माता-पिता, गुरु तथा पड़ोसियों का? यदि बालकों से आरम्भ से ही इस प्रकार की हानिकारक आदतों के छुड़ाने का प्रयत्न न किया जावेगा; धमका कर, पुचकार कर, समझा-बुझा कर उनसे बुरी आदतें न छुड़ाई जायँगी तो वह अवश्य ही बड़ी उम्र में भयङ्कर रोग-ग्रस्त और निकृष्ट आचरण वाले हो जायँगे, और उनको माता-पिता आदि से सीखी हुई बुराइयों का विषमय परिणाम जन्म भर भोगना पड़ेगा।

इसलिए बालकों के माता-पिता आदि को प्रत्येक बात बालकों के सामने खूब समझ कर करनी चाहिए। जो माता-पिता अपने बालकों में शील, सौजन्य, सदाचार आदि उत्तम गुण देखना चाहते हों तो उनको पहले खुद वैसा होने की चेष्टा करनी चाहिए। जब माता-पिता अच्छे आचरण वाले होंगे तो बच्चे का वैसा होना स्वाभाविक होगा।

बच्चों के सामने नीचे लिखी कुछ बातों का विशेष ध्यान रखना प्रत्येक माता-पिता का कर्त्तव्य है। क्योंकि बाल्यावस्था सदाचरण सिखाने की पहली सीढ़ी है और उसी के आधार पर बालक का सम्पूर्ण जीवन निर्भर रहता है :—

१—बच्चों के सामने क्रोध नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे बच्चा भी दूसरों पर क्रोध करना सीख जाता है।

२—बच्चों के सामने कभी किसी को गाली नहीं देनी चाहिए, क्योंकि बालक उसका अर्थ न समझ कर सबके लिए वैसे ही शब्द बोलने लगता है।

३—बालक के सामने माता-पिता को परस्पर किसी प्रकार का कलह (झगड़ा) नहीं करना चाहिए।

४—बालक के हठ करने पर उसे मार-पीट या डरा-धमका कर जबर्दस्ती राजी करना उचित नहीं। वरन् प्यार के साथ उसे समझाना चाहिए। यदि ऐसा करने पर भी न माने तो उससे कुछ देर के लिए उदासीन हो जाना चाहिए।

५—बालकों के सामने तू, रे, अबे, उल्लू, पागल आदि शब्दों का व्यवहार नहीं करना चाहिए।

६—बालकों के सामने सदैव वीर-पुरुषों की कहानियों तथा जीवन-चरित्रों का वर्णन करना चाहिए।

७—बच्चों के सामने सदैव सफ़ाई-सुथराई का विशेष ध्यान रखना चाहिए। और इन बातों के गुण-दोषों का परिचय उसे करा देना चाहिए।

८—बच्चों को यदि कोई काम सिखाना या कराना हो तो स्वयम् पहले उस काम को आरम्भ करना चाहिए। बच्चे स्वतः उस काम को करेंगे और उनको वह भारी न जान पड़ेगा।

९—बालक के भविष्य का निश्चय करके उसे उसी कार्य की तरफ़ ले जाना चाहिए। भविष्य में उसे जो कुछ बनाने की इच्छा हो, उसी के अनुकूल दृश्य तथा स्थानों को उसे दिखाना चाहिए तथा उसी विषय की बातें उसके सामने करनी चाहिएँ।
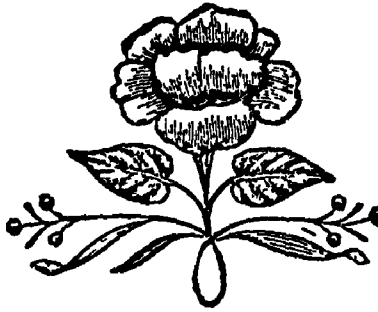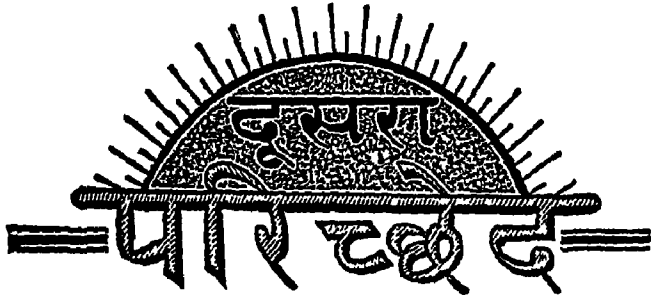
बाल-रोग-परिज्ञान

प्राचीनकाल के आयुर्वेदज्ञ चिकित्सक अल्प संख्या में होते हुए भी आजकल के बहुसंख्यक चिकित्सकों की तरह केवल उपशय के आधार पर चिकित्सा करने वाले नहीं थे। उनका आयुर्वेद-ज्ञान बहुत प्रौढ़ था और वे रोग-परीक्षा में इतने निपुण थे कि रोगी की सूरत से उसके रोग को बता दिया करते थे। स्पर्श करने पर रोग का यावन्मात्र इतिहास स्वतः वर्णन कर देते थे। उनका नाड़ी-विज्ञान इतना बढ़ा हुआ था कि रोगी से पूछने की कोई आवश्यकता नहीं रहती थी। यह सम्भव है कि स्वयम् रोगी व्याकुलतावश या याद न रहने

से कुछ का कुछ बतला दे, पर इन चिकित्सकों का ज्ञान और अनुभव इतना बढ़ा हुआ था कि वे कभी रोग और उसके मूल कारण के पहिचानने में भूल नहीं करते थे। यही कारण था कि उनकी चिकित्सा अधिकांश में सफलीभूत होती थी। परन्तु उपशय तथा प्रश्न द्वारा जाँच करके चिकित्सा करने से उतनी सफलता नहीं मिल सकती। क्योंकि रोग के निश्चित न होने पर भिन्न-भिन्न प्रकार की औषधियों के देने से कभी-कभी उपकार के बदले बड़ा अपकार हो जाता है। इसीलिए लिखा है—

रोगमादौपरीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ।
ततः कर्मभिषक्पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥

उपशय से चिकित्सा करना बालकों के लिए अत्यन्त हानिकारक है। क्योंकि बालक अनेकानेक प्रकार की औषधियों को सहन नहीं कर सकते, न उनके गुण-दोषों के प्रभाव को जता ही सकते हैं। ऐसी दशा में बालकों के रोगों का जानना कठिन होता है। बेचारे शिशु अपने कष्ट और दुःख को सिवाय रोने के और किसी प्रकार प्रकट नहीं कर सकते। किन्तु चिकित्सक को रोग का ज्ञान प्राप्त किए बिना भली-भाँति चिकित्सा करना कठिन है। इसलिए रोने और चिल्लाने के ढङ्ग तथा अन्यान्य लक्षणों तथा उपायों से भली-भाँति रोग को जानना चाहिए।

चरक ने संक्षेप में रोग-परीक्षा के तीन उपाय बताए हैं—"त्रिविधंहि रोग परिज्ञानं शास्त्रोपदेशः प्रत्यक्ष मनुमानञ्च।" अर्थात्—शास्त्रोपदेश, प्रत्यक्ष तथा अनुमान, इन तीन उपायों से रोग का ज्ञान होता है। प्रथम रोगी की अवस्था जान कर उसे शास्त्र में कथन किए हुए लक्षणों से मिलाना, पुनः अनुमान से रोग का आरम्भ या दोष और उसका बलाबल निश्चय करना, तीसरे इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष करना। इन तीन प्रकार की परीक्षाओं से निश्चित करके रोग की चिकित्सा करने पर अवश्य सफलता प्राप्त होती है। इसलिए बालकों के रोग-निर्णय में शीघ्रता न कर शास्त्र में वर्णित उपायों द्वारा पूरा निश्चय करना चाहिए। केवल एक ही उपाय को लेकर रोग का पूरा निश्चय करना बड़ा कठिन है। क्योंकि एक ही रोग अवस्थान्तर से भिन्न-भिन्न लक्षणों को प्रकट करता है। ऐसी दशा में विभिन्न उपायों द्वारा परीक्षा करने से ही पूरा निश्चय हो सकता है। चरक ने भी लिखा है कि—"नहि ज्ञानावमवेनकृत्स्नेज्ञेये ज्ञानमुत्पद्यते।" इसलिए बालकों के रोग-निर्णय में पूरे अनुभव और तर्क से काम लिए बिना सफलता प्राप्त कर सकना बड़ा कठिन है। बालकों के रोगों के निर्णय में प्रश्न के स्थान में, वैद्य को तर्क-बुद्धि से काम लेना चाहिए। नीचे हम इस सम्बन्ध में शास्त्रों में लिखे हुए तर्क व उपायों को लिखते हैं।

बालक के जिस अङ्ग या प्रत्यङ्ग में पीड़ा होती है, वह

उस स्थान को रोता हुआ बार-बार स्पर्श करता है। दूसरे मनुष्य के स्पर्श करने पर चिल्लाने लगता है।

बालक यदि आँख बन्द कर ले और शिर को धुनता रहे, तो उसके शिर में पीड़ा या शिरोरोग समझना चाहिए। वस्ति-स्थान में कष्ट या रोग होने से मूत्र बन्द हो जाता है, अथवा थोड़ा-थोड़ा होता है या अधिक होता है, प्यास अधिक लगती है और मूर्च्छा आ जाती है। गुदा-स्थान में कष्ट होने से मल कम या अधिक अथवा थोड़ा-थोड़ा करके आता है, और बालक चारों तरफ दुःखभरी दृष्टि से देखता है। यदि उदर में पीड़ा हो तो बालक अपनी टाँगों को सीधा नहीं करता, बल्कि पेट के साथ लगाए रखता है और रोता रहता है। पेट को दबा कर देखने से अफरा तथा अन्य कोष्ठ-विकारों का ज्ञान हो सकता है।

हृदय में पीड़ा या रोग होने से बालक अपनी जीभ, दाँतों तथा होठों को चबाता है और उसकी श्वास की गति विकृत हो जाती है और मुट्ठियाँ बँध जाती हैं।

मल-मूत्रादि के वर्ण से तथा पाचन शक्ति की कमी से यकृत-विकार की परीक्षा की जाती है। यदि मल का वर्ण श्वेत तथा काला हो तो यकृत-रोग समझ लेना चाहिए।

यदि बालक सुस्त होकर स्तनपान नहीं करता हो, किन्तु हर समय कुछ-कुछ कुनकुनाता हो, पेट में कुछ अफरा या कड़ापन हो तो क़ब्ज़ समझना चाहिए।

ज्वर-ज्ञान के लिए नाड़ी-परीक्षा, तापमान-यन्त्र (थर्मा-मेटर) लगाना, श्वास-गणना तथा नाड़ी-स्पन्दन आदि से भली प्रकार शरीर की शीतोष्णता का पता लग जाता है और उससे मन्द, साधारण, तीव्र तथा साङ्घातिक ज्वर का ज्ञान भी हो जाता है। स्वस्थ बालक के शरीर में ९८·४ से ९९ डिग्री तक गर्मी होती है। १०१ तक साधारण, १०४ तक तीव्र और १०५ से अधिक होने पर साङ्घातिक ज्वर समझना चाहिए। ताप की वृद्धि के साथ ही नाड़ी-स्पन्दन तथा श्वास-संख्या भी बढ़ जाती है। स्वस्थ मनुष्य का शारीरिक ताप ९८ हो तो नाड़ी-स्पन्दन ७५ से ८० तक और श्वास-संख्या प्रति मिनट १६ से २० तक होती है। जब ताप १०० डिग्री पर पहुँचता है, तो नाड़ी की गति ९० से ९५ और श्वास-संख्या २३ से २५ तक हो जाती है। अन्यान्य लक्षण ज्वर के प्रकरण में लिखे जायँगे।

लगातार तीव्र ज्वर, श्वास में कष्ट, कास, चीख़ मारना आदि लक्षणों से निमोनिया समझना चाहिए। जिह्वा की मलिनता, मल की दुर्गन्ध, आँतों में शब्द और पीड़ा से आँतों का रोग समझना चाहिए।

बालकों का पथ्यापथ्य

केवल दूध पीने वाले बालकों को रोग होने पर उनकी दूध पिलाने वाली माता या धाय को उस रोग का (जो रोग बालक को हुआ हो) पथ्यापथ्य का पालन करना

चाहिए। किसी रोग के उत्पन्न होने पर बालक को उपवास कराना उचित नहीं है। उपवास (लङ्घन) करने की अपेक्षा बालक के लिए लघुपथ्य देने की व्यवस्था करना योग्य है। रोग में बालकों से अन्यान्य चीज़ों का परहेज़ कराया जा सकता है, परन्तु किसी भी दशा में माता से दूध का परहेज़ नहीं कराना चाहिए। लिखा है—"सर्वं निवार्यतेबाले स्तन्यंन्नैव निवार्यते।" यदि बालक स्वयं स्तनपान नहीं करता हो, तो अजीर्ण आदि रोगों में उसे ज़बरदस्ती स्तन-पान नहीं कराना चाहिए। यदि लङ्घन की आवश्यकता ही हो, तो उसकी माता को लङ्घन कराना चाहिए। अतीसार आदि रोगों में गाय के दूध को छुड़ा कर बकरी का दूध यथेष्ट परिमाण में देना चाहिए। यदि वह भी अच्छी तरह न पचे तो अरारोट और बार्ली को जल में पका कर देना चाहिए।

बालकों के रोग और चिकित्सा

बालकों को जो अनेक प्रकार के साधारण रोग होते हैं, उनकी चिकित्सा सामान्य विधि से ही की जाती है। भेद केवल इतना है कि तेज़ गुण वाली औषधि बालकों को नहीं दी जाती। रोग और उनके लक्षण बड़े मनुष्यों तथा बालकों में प्रायः समान ही होते हैं। इसलिए चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थों में बाल-रोगों का विस्तारपूर्वक वर्णन न करके उनके कुछ विशेष रोगों का वर्णन कर दिया है।

बालकों के ज्वरादि व्याधियों की चिकित्सा करते समय कतिपय बातों के विषय में ध्यान रखना आवश्यक है। बड़े मनुष्यों की ज्वरादि व्याधियों को आराम करने के लिए लङ्घन, वमन, विरेचन, शिरा-वेध (फ़स्द) और अग्नि तथा क्षार-दाह आदि कठिन कर्म किए जाते हैं। ये बालकों के लिए प्रायः अनुपयुक्त और हानिकारक होते हैं। इसलिए बालकों की इस प्रकार की व्याधियों की चिकित्सा करते समय इनका उपयोग बहुत समझ-बूझ कर करे। यदि बालक को कोई भयानक व्याधि ऐसी हो गई है कि जिसमें बिना कठिन कर्म किए प्राण बचना या अच्छा होना असम्भव हो तो सावधानी और चतुराई के साथ इनका प्रयोग कर सकते हैं। इसी वास्ते लिखा है :—

विरेक वस्ति वमनान्यृते कुर्याचनात्ययात् ।

अर्थात्—"बालकों को वमन, विरेचन, वस्ति आदि कठिन कर्म बिना किसी विशेष दशा के नहीं कराने चाहिएँ।" दूसरी बात यह है कि बड़े मनुष्य उष्ण, तीक्ष्ण वीर्य आदि सब प्रकार के गुणों वाली औषधियों को सहन कर सकते हैं, किन्तु बालक का शरीर सुकुमार तथा धातु असम्पूर्ण होने से वे उनको सहन नहीं कर सकते। चरक में लिखा है :—

मधुराणि कषायाणि क्षीरवन्ति मृदूनिच ।
प्रयोजयेत् भिषग् बाले मतिमान प्रमादतः ॥

अर्थात्—बालक को रोग-शान्ति के निमित्त मीठे, कषाय, दूध मिले हुए चूर्ण, अवलेह आदि मृदुवीर्य औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। बालकों को अत्यन्त चिकने, भारी, खुश्क, गरम, खट्टे और कटु-विपाक वाले खान-पान या औषधियों का देना निषेध है।

इन सब बातों के साथ औषधि की मात्रा का भी पूरा विचार करना चाहिए। क्योंकि मात्रा की कोई निश्चित तोल नहीं है। उसका प्रयोग देश, काल, अग्नि, बल, रोग, रोगी और औषधि की ताक़त को देख कर किया जाता है। इसलिए जहाँ तक हो, बालकों को रुचिकर, मृदु और अल्पमात्रा में औषधि दी जाय। यद्यपि औषधि की मात्रा वैद्य को देश, कालादि का पूर्ण विचार कर स्वतः निश्चित करनी चाहिए, तथापि साधारण लोगों के सुभीते के लिए मात्रा के विषय में कुछ जानने योग्य बातें नीचे लिखते हैं।

बालकों के लिए औषधि-मात्रा

औषधि-मात्रा के विषय में भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न प्रकार के मत हैं। एक ग्रन्थ में बालकों की मात्रा इस प्रकार निश्चित की गई है:—

विडंग फलमात्रन्तु जात मात्रस्य भेषजम्।

अनेनैव प्रकारेण मासि-मासि प्रवर्धयेत्।

अर्थात्—"तत्काल के पैदा हुए बालक के लिए चूर्ण,

कल्क, अवलेहों की मात्रा एक वायविडङ्ग के फल के समान माननी चाहिए। इसी तरह प्रति मास एक-एक विडङ्ग फल भर बढ़ाता रहे।" यह मत विश्वामित्र ऋषि का है। परन्तु अन्यान्य ग्रन्थों में भिन्न प्रकार लिखा है और वही आजकल साधारणतः व्यवहार में आता है :—

प्रथमे मासि बालस्यदेया भेषज रक्तिका।
अवलेह्यातु कर्तव्या मधुक्षीर सिताघृतै॥
एकैकां वर्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत्।
तदूर्ध्वं माष वृद्धिःस्याद्यावत्शोडष वत्सराः॥
ततः स्थिरा भवेत्ताद्यावद्वर्षाणि सप्ततिः।
ततो बालकवन्माला ह्रासनीया शनैः शनैः॥

अर्थात्—"एक मास के बालक को औषधि-मात्रा एक रत्ती प्रमाण में देनी चाहिए। बच्चा उसे अच्छी तरह खा ले, इसलिए उसे शहद, मिश्री, घी या दूध में मिला कर देना चाहिए। इस तरह एक वर्ष की अवस्था तक हर महीने एक रत्ती बढ़ाता रहे। वर्ष भर के बाद सोलह वर्ष तक प्रत्येक वर्ष पीछे एक माशा बढ़ा कर मात्रा देनी चाहिए। सोलह से लेकर सत्तर वर्ष तक एक समान मात्रा रक्खे। सत्तर वर्ष के बाद धीरे-धीरे बालक की तरह मात्रा का प्रमाण घटा देना चाहिए।" मात्रा का यह प्रमाण चूर्ण,

कल्क तथा अवलेहों का समझना चाहिए। यदि बालक को क्वाथ पिलाना हो तो उसकी चूर्णादिक की अपेक्षा चौगुनी मात्रा समझनी चाहिए। काष्ठ-औषधियों के अतिरिक्त भस्म, रस, कस्तूरी आदि उष्णवीर्य की रासायनिक औषधि बहुत ही कम प्रमाण में देनी चाहिए। इसी बात को लेकर आजकल बहुत से लोग बालकों के लिए रसादि धातुओं का प्रयोग करना निषेध बताते हैं। क्योंकि एक तो उष्णवीर्य औषधियों को बालक सहन नहीं कर सकता, दूसरे उनकी मात्रा में कुछ भी त्रुटि हो जाने से लाभ के बदले हानि होने की सम्भावना रहती है।

सारांश यह कि बालकों की औषधि-मात्रा बड़े मनुष्य की मात्रा के हिसाब से निश्चित कर लेनी चाहिए। एक बड़े मनुष्य की निश्चित औषधि-मात्रा जितनी हो उसकी अपेक्षा वर्षानुसार बालकों की मात्रा कम होनी चाहिए। जैसे एक सोलह वर्ष के मनुष्य के लिए किसी औषधि की मात्रा यदि एक तोला हो तो एक वर्ष के बालक के लिए उसकी मात्रा १/१६ तोला होगी। इसी तरह तीन वर्ष के बालक की मात्रा ३/१६ तोला होगी। किन्तु वैद्य इसमें भी देश, कालादि की अवस्थानुसार कमी-बेशी कर सकता है।

खाली पेट में औषधि का निषेध

बालकों को औषधि देने का एक विशेष नियम है कि किसी रोग में उनको खाली पेट औषधि न दी जाय। आयु-

वेद में लिखा है कि—"बालक, वृद्ध, स्त्री तथा सुकुमार रोगियों को खाली पेट औषधि देने से उनका शारीरिक बल घट जाता है और शरीर में एक प्रकार का ढीलापन आ जाता है।" भरे पेट में, या कुछ खिला कर औषधि सेवन करानें से औषधि शीघ्र पच जाती है और कमजोरी नहीं आती। न उलटी होकर उसके बाहर निकलने की आशङ्का रहती है। इसलिए स्त्री, बालक, वृद्ध और सुकुमार रोगियों को प्रायः अन्न के साथ औषधि का सेवन कराना उचित है।

यह पहले बताया जा चुका है कि बालकों के और विशेष-कर ऐसे बालकों के, जो अच्छी तरह बोल नहीं सकते, रोगों का निर्णय करना सहज नहीं है। उनके विषय में यह नहीं ज्ञात हो सकता कि कहाँ पर किस प्रकार की वेदना हो रही है। बालक केवल पीड़ा के कारण रोता रहता है। तीन-चार मास की अवस्था तक रोते समय बालकों की आँखों से आँसू नहीं निकलते। इसके उपरान्त रोते समय आँसू निकलने लगते हैं। यदि तीन-चार महीने से अधिक अवस्था होने पर रोने से उसकी आँखों से आँसू न बहे तो कोई कठिन पीड़ा समझनी चाहिए। इसी प्रकार अन्य बाह्य लक्षणों को देख कर उनके रोगों का निर्णय किया जा सकता है। इसलिए सदा अत्यन्त विचार के साथ उनके लक्षणों का निरीक्षण करना चाहिए।

बाल रोग-चिकित्सा

क्षीर-दोष-जन्य रोग

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में तीन प्रकार के बालक माने है। एक केवल दूध पीने वाले; दूसरे केवल अन्न खाने वाले; तीसरे अन्न और दूध दोनों का सेवन करने वाले। तीनों प्रकार के बालकों का स्वास्थ्य उनके आहार के ऊपर निर्भर है। केवल दूध पीने वाले बालकों को दूध में विकृति होने से रोग उत्पन्न होते हैं, और केवल अन्न खाने वालों को मिथ्या आहार-विहार के कारण क़ब्ज़, अतीसार आदि रोग होते हैं। इसी तरह दोनों का सेवन करने वाले बालकों को क्षीर तथा अन्न-दोष सम्बन्धी रोग सताते हैं।

पूर्वोक्त तीन प्रकार के बालकों का वर्णन करने का आशय यह है कि बालक को क्षीर या अन्न से जो रोग उत्पन्न हो, उसकी चिकित्सा उसके कारणों को लक्ष्य में रख कर करनी चाहिए। आजकल बालकों की चिकित्सा का यद्यपि बहुत-कुछ प्रबन्ध किया जाता है, तथापि एक वर्ष की आयु के लाखों बालक प्रति वर्ष मरते रहते हैं। इसका कारण केवल माता की क्षीर-दुष्टि तथा बालकों के पालन-पोषण सम्बन्धी अज्ञान है। आजकल चिकित्सा करते हुए बहुत कम वैद्यों को माता की चिकित्सा द्वारा बालक की चिकित्सा करते देखा जाता है। माता देखने में हृष्ट-पुष्ट, नीरोग होनी चाहिए, चाहे उसका दूध बालक को विष का काम ही क्यों न करता हो। यह कोई नहीं विचार करता कि माता के हृष्ट-पुष्ट होते हुए भी कफ की अधिकता के कारण उसके दूध में गाढ़ापन अधिक है और उससे बालक को हमेशा क़ब्ज़ रहता है, उसकी पाचन शक्ति कमज़ोर हो रही है और हृदय के रोग उत्पन्न हो रहे हैं। चरक ने इसी कारण बालकों के पारिगर्भिक, कुकूणक, मातृका दोष आदि रोगों को अलग-अलग न दिखा कर सबको क्षीर-दोष के रोगों के अन्दर ही गिन लिया है।

क्षीर-दुष्टि के कारण—अजीर्ण; प्रकृति-विरुद्ध (नामाफ़िक़) चीज़ों के उपयोग से; अधिक विषम या विरुद्ध भोजन करने से (जैसे दूध मछली को मिला कर खाना आदि);

अत्यन्त खट्टी, खारी, नमकीन, चटपटी, सड़ी-गली और बासी चीजों के खाने से; मानसिक तथा शारीरिक दुःख हर समय बने रहने से; रात्रि में जागरण करने से; दस्त, मूत्र आदि के वेगों (हाजत) को जबरदस्ती रोकने से; लड्डू, पूरी, कचौरी, हलवा, पाक, दही, खिचड़ी, मछली, जलीय या ग्राम के जीवों का मांस अधिक खाने से; भोजन करते ही दिन में सोने की आदत से; शराब के अधिक सेवन करने से; किसी प्रकार का शारीरिक परिश्रम न करने से; क्रोध करने या शरीर में कहीं पर चोट लगने से; कोई रोग होने से वातादि दोष कुपित होकर क्षीरवाही स्रोतों के अन्दर पहुँच कर अपने गुणों के अनुसार प्रायः स्त्रियों के दूध में विकृति या दुष्टि पैदा कर देते हैं।

वात-दुष्ट दुग्ध के लक्षण—वायु से दुष्ट क्षीर प्रायः बेस्वाद, झागदार, रूक्ष और कषैला होता है तथा पानी में डालने से हलका होने के कारण ऊपर ही तैरता रहता है।

पित्त-दुष्ट दुग्ध के लक्षण—पित्त के बढ़ जाने पर क्षीर में विकृति होने से दूध दुर्गन्धयुक्त, गरम, खट्टा, चरपरा, पीली-पीली लकीरों वाला और वर्णहीन हो जाता है।

कफ-दुष्ट दुग्ध के लक्षण—कफ के कारण दुष्ट होने पर दूध चिकना, गाढ़ा, लुआबदार, नमकीन होता है और पानी में डालने पर भारी होने से डूब जाता है।

वात-सम्बन्धी क्षीर-दोष के रोग—जब रूक्ष, शीत, भय,

चिन्ता, शोक, व्यवाय, व्यायाम, लङ्घन आदि वायु-प्रकोपक कारणों से वायु कुपित होकर माता के क्षीराशय (क्षीर-वाही शिरा) में पहुँच कर दूध उत्पन्न करने वाले रस को दूषित कर देता है, तब वह दूषित होकर पूर्वोक्त वात-दुष्ट-क्षीर के लक्षणों से युक्त हो जाता है। इस प्रकार से उत्पन्न दूध पीने वाला बालक प्रायः दिन पर दिन कृश होता जाता है और दूषित तथा स्वादहीन दूध को अच्छी तरह न पी सकने के कारण उसके शरीर की वृद्धि भी रुक जाती है।

पूर्वोक्त कारणों से वायु कुपित होकर अन्दर दूध को मथ देता है और तब उसमें झाग बहुत आते हैं और उसकी प्रवृत्ति भी बहुत मन्द हो जाती है। ऐसे दूध को पीने वाले बच्चे का स्वर मन्द हो जाता है और उसके दस्त, पेशाब तथा अपान वायु में बड़ी गड़बड़ी पड़ जाती है। इसके सिवाय उसको वायु सम्बन्धी शिरोरोग, पीनस, जुकाम आदि सदा घेरे रहते हैं। यदि वायु का विकार दूध के स्नेह-अंश (चिकनाई) को सुखा कर अधिक रूक्षता पैदा कर दे, तो उसको पीने से बालक दिन पर दिन कमज़ोर होता जाता है।

पित्त-सम्बन्धी क्षीर-दोष के रोग—उष्ण, तीक्ष्ण, क्रोध, अम्ल, लवण, कटुरस, सन्ताप (गर्मी) आदि के कारण पित्त कुपित होकर क्षीराशय को ख़राब करता हुआ दूध को विवर्ण, नीला, पीला, सफेद, दुर्गन्धयुक्त कर देता है। ऐसे दूध को पीने से बच्चे का शरीर हमेशा गरम पसीने से तर

रहता है, और फीका तथा पीले रङ्ग का हो जाता है। इसके सिवाय बालक को बहुत प्यास लगती है, दस्त पतला आता है तथा वह दूध पीना छोड़ देता है।

जब पित्त के कुपित होने से दूध में अत्यन्त दुर्गन्ध आने लगती है, तो इसको पीने से बालक प्रायः पाण्डु तथा कामला रोग से पीड़ित रहता है।

कफ-सम्बन्धी क्षीर-दोष के रोग—मधुर, अम्ल, लवण रसो के अधिक उपयोग से; गुरु भोजन, शीत, स्निग्ध चीज़ों के अतिशय सेवन करने से; दिन में सोने तथा व्यायाम आदि के न करने से, शरीर में कफ कुपित होकर, क्षीराशय मे पहुँच कर दूध के अन्दर चिकनेपन को बढ़ा देता है। इस दूध के पीने से बालक को उलटी होने लगती है, श्वास लेने में कष्ट होता है और मुख से लार बहुत गिरने लगती है। इससे बालक के शरीर के ज्ञानवाही स्रोत बन्द हो जाते हैं और वह हर समय नींद तथा आलस्य की दशा में रहता है। इसके सिवाय श्वास, कास, मुँह से पानी आना, आँखों के सामने अँधेरा आदि रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं।

कफ के कारण दूध में जब पिच्छिलता (चिकनाहट) का हिस्सा बढ़ जाता है, तो उस दूध को पीने वाले बालक के मुँह से लार बहती है, मुख तथा आँखों में सूजन हो जाती है और बेहोशी रहने लगती है। ऐसे दूध से बालक को हृद्रोग (दिल की बीमारियाँ) पैदा हो जाता है।

विशेष उपद्रव—पूर्वोक्त बातों से यह सिद्ध होता है कि दूषित स्तनों का दूध बालकों को अच्छी तरह नहीं पचता। उसके पीने से पहले गाँठदार, दुर्गन्धयुक्त, पतला अथवा गाढ़ा दस्त होता है। मूत्र का रङ्ग लाल, पीला अथवा श्वेत हो जाता है और वह गाढ़ा भी हो जाता है। इसके सिवाय ज्वर, प्यास, वमन, अजीर्ण, कम्प, भ्रम और मुख-पाक आदि अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होकर बच्चे का जीवन कष्टमय हो जाता है।

वात-क्षीर-दोष की चिकित्सा—दूध की शुद्धि के लिए पहले माता की अवस्था तथा देश कालादि का विचार कर स्नेहपान, स्वेद, वमन, विरेचन कर्म शास्त्रानुसार कराने चाहिएँ। बाद को उसकी पथ्यादि क्रिया को ठीक रखते हुए स्तन्य-शोधक घृत, क्वाथ, लेप आदि का प्रयोग करना चाहिए। इस रोग की चिकित्सा-विधि नीचे दी जाती है :—

१—वातिक क्षीर-दोष में तीन दिन तक दशमूल का काढ़ा पिलाना चाहिए। अथवा चित्रक, बच, पाढ़, कुटकी, कूट, अजवायन, भारङ्गी, देवदारु, चीड़ की लकड़ी, काकड़ा-सिङ्गी, पीपल, मिर्च—इनका क्वाथ बना कर माता को तीन दिन तक पिलाना चाहिए।

२—पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ और कुलत्थ—इन चीजों को पानी के साथ पीस कर स्तनों में लेप कर दे। लेप के सूख जाने पर उसे दूर करके स्तनों के

दूध को निकाल देवे। इससे स्तनों का दूध शुद्ध हो जाता है। इसके सिवाय माता के लिए वातनाशक उपचार (अभ्यङ्ग आदि) भी करने चाहिएँ।

३—जिस स्त्री के दूध में झाग अधिक रहते हों, उसको पाढ़, सोंठ, काकड़ासिङ्गी और मरोरफली का चूर्ण गरम जल के साथ खिलाना चाहिए। अथवा काला सुरमा, तगर, देवदारु, बेल की जड़, फूल प्रियङ्गु—इनको पानी में पीस कर स्तनों पर लेप करना चाहिए।

४—चिरायता, सोंठ, गिलोय—इन तीन चीजों का क्वाथ बनाकर पिलावे और स्तनों में जौ, गेहूँ और सरसों को पानी में पीस कर लेप करे।

५—स्त्री के दूध में रूक्षता की अधिकता होने पर उसको दूध या घी का सेवन कराना चाहिए। जीवनीय गण से पकाया हुआ घी सेवन करा कर पञ्चकोल (पीपल, पीपरा-मूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) का स्तनों पर लेप करना चाहिए।

पित्त-क्षीर-दोष चिकित्सा—पित्त-सम्बन्धी क्षीर-दोष की चिकित्सा के लिए नीचे लिखे प्रयोग लाभदायक हैं :—

१—माता और बालक को गिलोय, शतावर, पटोलपत्र, नीम, लाल चन्दन और अनन्तमूल—इन औषधियों का क्वाथ बना कर पिलाना चाहिए। अथवा त्रिफला, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी—इनका क्वाथ पिलावे।

२—पूर्वोक्त औषधियों से पकाए हुए घी का प्रयोग

करना चाहिए, और माता के स्तनों तथा शरीर में शीतल लेप, सेंक तथा मालिश भी करनी चाहिए।

३—यदि दूध में दुर्गन्ध बहुत आती हो तो माता को मेढ़ा, काकड़ासिङ्गी, त्रिफला, हल्दी, बच—इन औषधियों को दूध या जल के साथ पीस कर पिलावे। साथ ही अनन्तमूल, खस, मजीठ, लिसोड़ा, लाल चन्दन—इनका स्तनों के ऊपर लेप करे।

कफ-क्षीर-दोष चिकित्सा—कफ से दूध में विकृति आने पर स्त्री को तीक्ष्ण वमनकारक बच, मैनफल, सेंधानमक आदि औषधियों को गरम जल के साथ खिला कर वमन करावे। वमन होने के बाद पथ्य देने पर फिर उस स्त्री को मुस्तादिगण का क्वाथ अथवा तगर, काला जीरा, देवदारु, इन्द्रजौ—इनका क्वाथ; या अतीस, नागरमोथा, बच और पञ्चकोल—इन औषधियों का क्वाथ बना कर पिलाना चाहिए।

१—इसी तरह बालक को भी मुलैठी और सेंधानमक मिला कर तीन दिन घी के साथ सेवन करावे। बाद में रीठे की छाल या फूलों को पीस कर उसमें शहद मिला कर माता के स्तनों में और बालक के होठों में लगा दे। तब बालक को स्तन पान करावे, जिससे उसको उलटी होगी और क्षीर-विकार नष्ट हो जायगा।

२—दूध में स्निग्धता के बढ़ जाने पर स्त्री को देवदारु,

नागरमोथा, पाढ़ और सेंधानमक—इनका चूर्ण गरम जल के साथ सेवन करावे।

३—भारङ्गी, हरड़, बच, नागरमोथा, सोंठ, पाढ़—इनको गरम जल से सेवन कराना चाहिए। साथ ही विदारीकन्द, बेल की जड़, मुलैठी—इनका स्तनों के ऊपर लेप करे।

४—दूध में गुरुता (भारीपन) के अधिक बढ़ जाने पर स्त्री को त्रायमाणा (इसके अभाव में बनफशा भी ले सकते हैं), गिलोय, नीम, पटोलपत्र, त्रिफला—इसका क्वाथ बना कर देना चाहिए। साथ ही खरेंटी, सोंठ, भारङ्गी, मरोरफली—इन औषधियों को पीस कर स्तनों के ऊपर लेप करना चाहिए।

अब हम सब प्रकार के क्षीर-दोष सम्बन्धी रोगों के निवारण के लिए कुछ प्रयोग लिखते हैं:—

१—अनन्तमूल, इन्द्रजौ, कुटकी, गिलोय, चिरायता, देवदारु, नागरमोथा, पाढ़, मरोरफली और सोंठ—दो-दो तोले लेकर कूट करके बीस पुड़िया बना ले। फिर एक पुड़िया पाव भर जल में पकावे और चौथाई जल रहने पर छान कर शहद मिला कर सेवन करे। इससे स्तनों के दूध का विकार निस्सन्देह नष्ट हो जाता है। यह स्तन-रोग की उत्तम औषधि है।

२—अतीस, कूट, कुटकी, नागरमोथा और पाढ़—इन चीजों का पूर्वोक्त विधि से क्वाथ बना शहद के साथ दोनों

समय एक महीने तक सेवन करने से दूध शुद्ध होता है तथा अशुद्ध दूध से बालक के उत्पन्न हुए रोग भी शीघ्र शान्त हो जाते हैं।

३—आँवला, काली मिर्च, जामुन की छाल, देवदारु, पाढ़, पीपल, बहेड़ा, बेर की छाल, मरोरफली, सरसों, सोंठ और हरड़—एक-एक तोला लेकर कूट कर और कपड़छान कर चूर्ण बना ले। तीन माशे से छः माशे पर्यन्त दोनों समय शहद के साथ माता या धाय को एक मास तक सेवन कराने से दूषित दुग्ध शुद्ध हो जाता है।

क्षीर-दोष की चिकित्सा करने में यह आवश्यक है कि बालक को वमन करा दिया जाय और माता को भी वमन, विरेचन, वस्ति—इन तीनों में से उचित उपाय द्वारा शुद्ध करके चिकित्सा की जाय।

क्षीरालसक रोग

माता के शरीर में मिथ्या आहार-विहार के कारण तीनों दोषों की विकृति होने से जब उसका दूध बिगड़ जाता है, तो उसके पीने से बालक को अनेक रोग घेर लेते हैं। यहाँ तक कि कभी-कभी इस रोग के कारण बालक का जीवन बिल्कुल नष्ट हो जाता है। इस रोग में बालक को दुर्गन्धयुक्त, पतले, गाँठदार, जल के सदृश, छींछड़ेदार और झागदार दस्त होते हैं। इसके साथ ऐंठन, पेट में पीड़ा और पेचिश भी हो जाती है। मूत्र गाढ़ा, पीला और सफ़ेद हो जाता

है तथा दर्द के साथ उतरता है। शरीर में अत्यन्त कमजोरी हो जाती है, बालक हाथ-पैरों को इधर-उधर पटकने लगता है, आँतों में शब्द और शरीर में कँपकपी होती है, और शिर में चक्कर आने लगते हैं। इसके सिवाय बालक की आँखें दुखने लगती हैं, मुँह में छाले तथा नासिका में छोटी-छोटी फुन्सियाँ आदि अनेक प्रकार के और भी रोग हो जाते हैं। इस प्रकार के रोग को चिकित्सकों ने एक भयानक व्याधि माना है। क्योंकि ऐसी हालत में बालक का बचना कठिन हो जाता है।

इस रोग में यदि पहले ही दस्त हो जाय, तो तुरन्त माता तथा बालक को वमन करा देना चाहिए। वमन कराने के बाद पथ्य खिला कर दूध को शुद्ध करने के लिए सम्भालू, पाढ़, कुटकी, नागरमोथा, कूट—इनका काथ बना कर माता को सेवन कराना चाहिए। अथवा पाढ़, सोंठ, गिलोय; चिरायता, कुटकी, देवदारु, अनन्तमूल, नागरमोथा, मरोर-फली, इन्द्रजौ—इनका काथ बना कर माता तथा बहुत थोड़ी मात्रा में बालक को भी पिलावे। इस प्रयोग से माता का दूध शुद्ध हो जाता है और बालक को भी बहुत लाभ पहुँचता है।

यदि पूर्वोक्त प्रकार से चिकित्सा करने पर बालक को कुछ आराम न हो, तो उसके रोग के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए। अर्थात् उसके दस्तों और शारीरिक पीड़ा के लिए अन्य औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

हरे-पीले दस्त और दूध का उलटना

बच्चों को हरे-पीले दस्तों का आना या दूध उलटना आजकल आमतौर पर सभी जगह देखने में आता है और इसलिए लोग इसे कोई ख़ास बीमारी नहीं समझते हैं। परन्तु हिसाब करने से मालूम पड़ता है कि फ़ी सदी ८० बच्चों की मृत्यु इसी दोष के कारण होती है। जहाँ पर बच्चों की सफ़ाई-सुथराई, जलवायु, आहार, वस्त्र, स्नान आदि का ठीक-ठीक प्रबन्ध रहता है, वहाँ यह रोग बिल्कुल नहीं पाया जाता।

माताओं को प्रायः बच्चों को ख़ूब ठूँस-ठूँस कर खिलाने और निरन्तर खिलाते रहने का शौक़ रहता है। ज़रा-ज़रा सी देर में बच्चों के मुख में स्तन देना प्रायः माताओं का स्वभाव हो जाता है। स्तन या चूची (शीशी) के अलग करते ही यदि बच्चा उलटी कर दे तो समझ लेना चाहिए कि उसे बहुत अधिक खिला दिया गया है। अगर यह जानना असम्भव हो कि बच्चे को ठीक-ठीक जितना दूध पिलाना चाहिए उतना उसने पी लिया है या नहीं, तो उसे पिलाने से पहले और पीछे तोल लेना अच्छा है। यदि बच्चे को हरे-पीले दुर्गन्धयुक्त और लसदार दस्त आवें तो इसका सबसे उत्तम इलाज यह है कि उसे छै माशे उत्तम विलायती एरण्ड का तेल पिला दिया जाय जिससे तमाम आँव निकल जाय। अथवा पिचकारी द्वारा गर्म पानी गुदा में चढ़ा कर दस्त साफ़ करा दिया जाय।

माता या गाय के दूध के अलावा बाहरी दूध पिलाने से बच्चों को प्रायः दस्तों की शिकायत हो जाती है। ऐसे बच्चों को दूध पिलाने से कुछ मिनट पहले यदि एक चम्मच गरम पानी दे दिया जाय तो बहुत गुणकारी होता है। विशेषकर गर्मी की ऋतु में डब्बे का दूध लापरवाही से बच्चों को देने से दस्त आने लगते हैं।

पिलाने की शीशी की रबड़ की नली को ठीक साफ न करने से कभी-कभी दस्तों का लगना सम्भव रहता है। इसके सिवाय डब्बे का दूध यथासम्भव ठण्ढी जगह में न रखने से उसमें मिनटों में लाखों कीड़े (जर्म्स) पैदा हो जाते हैं और उस दूध को पीने से बच्चों को हरे-पीले दस्त आने लगते हैं।

बच्चों को पीले दस्तों की अपेक्षा हरे दस्तों का आना अधिक भयङ्कर है। उनके शुरू होते ही इलाज करना ठीक रहता है। ऐसी दशा में किसी योग्य चिकित्सक की सम्मति से चिकित्सा करनी चाहिए। कभी-कभी आँतों में कुछ खराबी हो जाने के कारण बालकों को हरे दस्त आने लगते हैं। ऐसी दशा में बालक को दूध पिलाने से पूर्व थोड़ा सा गरम पानी पिला देना बहुत अच्छा है। इससे बच्चे को बहुत लाभ होता है। यदि दस्तों में आँव निकलती हुई मालूम हो, तो अरण्डी का तेल दिया जा सकता है, परन्तु बार-बार इसका प्रयोग करना अच्छा नहीं है।

बहुधा सर्दी से भी बच्चों को दस्त लग जाते हैं। इसलिए

उनको सर्दी से बचाना बहुत आवश्यक है। नीचे लिखे हुए प्रयोग बच्चों के हरे-पीले दस्त और उलटी के लिए बहुत लाभदायक हैं :—

१—सोंठ, बड़ी हरड़ और काला नमक थोड़ा-थोड़ा पत्थर पर घिस कर बच्चों को पिलाने से उनके हरे-पीले दस्त और उलटी दोनों में बहुत लाभ पहुँचता है। यदि इसमें थोड़ा सा भुना सुहागा और मिला दिया जाय तो विशेष गुणकारी होता है।

२—छुहारे को गुठली निकाल कर उसमें अफीम भर कर और उसे एक आटे की बाटी या लोई मे रख कर भूभल (आधी आग और आधी राख) में डाल दे। बाटी पकने पर उसमें से छुहारा निकाल ले, फिर उस छुहारे को खरल कर ज्वार बराबर गोली बना ले। एक या दो गोली माता के दूध मे देने से सब प्रकार के दस्तो को लाभ पहुँचता है।

३—आधी छटाँक बुझा हुआ चूना एक तोला शहद के साथ आध पाव जल मे घोल कर रख दे। जब सब चूना नीचे बैठ जाय तब ऊपर के साफ़ जल को नितार कर एक शीशी में रख ले। इस जल की ५ से लेकर १० बूँद तक दूध के साथ मिला कर पिलाने से बच्चो के खट्टे गन्ध वाले दस्त तथा उलटी बन्द हो जाती है।

४—नागरमोथा, अतीस, सोंठ, नेत्रबाला, इन्द्रजौ—सब मिला कर दो तोला लेकर आध सेर जल में आध पाव

जल बाक़ी रहने तक पकावे और उतार कर छान ले। इस क्वाथ में से एक चम्मच बालक को पिला कर शेष दूध पिलाने वाली माता को पिला दे। इस प्रकार प्रतिदिन प्रातः-काल इस क्वाथ के पिलाने से बालकों की उलटी और दस्त दोनों बन्द हो जाते हैं।

पारिगर्भिक रोग

माता के गर्भिणी होने पर जब बालक उसका दूध बरा-बर पीता रहता है, तब उस भारी दूध के पीने से बालक को पारिगर्भिक रोग हो जाता है। इसके फल से उसमें मन्दाग्नि, वमन, तन्द्रा, ढीलापन, कास, दुर्बलता, अरुचि, भ्रम और सोते हुए कभी-कभी चौंक पड़ना आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इसके सिवाय इस रोग में बालक का पेट बहुत बढ़ जाता है और उसमें कभी-कभी हरी नसें सी भी दिखलाई देती हैं। दस्त अधिक और कभी क़ब्ज़ के साथ होता है। इस रोग का नाम पारिगर्भिक इसलिए कहा जाता है, क्योंकि यह दूसरे गर्भ की स्थिति होने पर दूध पीने वाले बालक को होता है। हिन्दी में इसको "दुधकटा" रोग कहते हैं। इस रोग में तुरन्त माता का दूध पीना बन्द करा के बालक को अग्निदीपन करने वाली औषधियों का सेवन कराना हित-कारी है। इस रोग की चिकित्सा निम्न-लिखित है :—

अजवायन, अमलतास का गूदा, पुराना गुड़, गुलाब के फूल, चौकिया सुहागा, छोटी हरड़, पसर बन्दा, दुधबच

मुनक्का, वायविडङ्ग, सफ़ेद ज़ीरा, सनाय की पत्ती, सौंफ की जड़ और हरड़ के फलों का छिलका—इन सब औषधियों को दो-दो तोले लेकर जौकुट कर खरल कर ले। इसमें से छः मास के बालक को डेढ़ माशे, एक वर्ष के बालक को तीन माशे और तीन वर्ष तक की अवस्था वाले को छः माशे की मात्रा देनी चाहिए। इसमें से एक मात्रा को उबलते हुए जल में पकावे, जब आधा रह जाय उतार-छान कर उसमें दो रत्ती सोचर नमक का चूर्ण मिला कर पिला दे। इसको दोनों समय पूर्वोक्त विधि से पिलाने से पारिगर्भिक रोग नष्ट हो जाता है। इसके सिवाय इसके सेवन से अजीर्ण, उदर-पीड़ा, अफरा, तिल्ली आदि पेट की सब बीमारियाँ और ज्वर, कास आदि रोग निर्मूल हो जाते हैं। इस प्रयोग से बालक स्वस्थ और पुष्ट रहता है। इसका सेवन प्रत्येक गृहस्थ को अपने बालकों के लिए कराना उचित है।

फुलाया हुआ सुहागा और कपर्द-भस्म समान भाग लेकर मात्रा से मधु के साथ चटाने से पारिगर्भिक रोग की शान्ति होती है। इसके सिवाय इस रोग में अजीर्ण की चिकित्सा करनी चाहिए। यदि माता का दूध दूषित होने से इस रोग की उत्पत्ति हो तो माता को पथ्य से रक्खे, दुग्ध-शोधक औषधि का सेवन कराके पूर्वोक्त औषधि सेवन करावे। इस क्रिया से बालक को बहुत लाभ पहुँचता है।

कुकूणक रोग

यह रोग अधिकतर माता का दूषित दूध पीने वाले बच्चो को होता है। जब बालक दूषित दूध पीता है तब उसके वर्त्मभाग (पलको) में दोषों के द्वारा विकृति उत्पन्न होती है। इस रोग में पलकों में खुजली होती है और थोड़ा-थोड़ा चिकना पानी बहता रहता है। बालक आँखें बन्द किए हुए अपने हाथ से नेत्र, नासिका, ललाट को बार-बार मलता है। वह सूरज या तेज़ रोशनी की तरफ देख नहीं सकता और न उसकी आँखें खुलती हैं। इस रोग की चिकित्सा निम्न-रीति से करनी चाहिए।

१—त्रिफला, लोध, पुनर्नवा, सोंठ या अदरक, छोटी-बड़ी दोनों कटेली—इन औषधियों को बराबर-बराबर लेकर, जल में पीस, गरम करके गुनगुना लेप करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

२—सोंठ, मिर्च, पीपल, मैनसिल, हरताल, करञ्ज बीज, और भाँगरे का रस—इन सब औषधियों को समान भाग लेकर भाँगरे के रस में घोट कर अञ्जन बना ले। इसके प्रयोग से पलकों की खुजली, ललाई, पीड़ा, पानी का बहना, आँखों का न खुलना आदि सब विकार नष्ट हो जाते है। यदि इस योग मे थोड़ा-सा रसौत और मिला दिया जाय तो बहुत लाभ पहुँचता है।

३—कुटकी, गेरू, दारुहल्दी, नागरमोथा, नीम के

पत्त, वायविडङ्ग, मजीठ, रसौत, लोध, सेंधानमक और हल्दी—प्रत्येक तीन-तीन माशे जौकुट करके एक कपड़े में पोटली बना, बार-बार गरम पानी में डुबा कर पलकों पर फेरने से कुकूणक रोग अवश्य शान्त हो जाता है।

दाँत निकलना

पहली बार दाँत निकलने के समय बालकों को अनेक रोग होते हैं। वाग्भट्ट में लिखा है :—

पृष्ठभंगेविडालानांवर्हिणाश्च शिखोद्गमे।
दन्तोद्गमे च बालानां नहि कश्चिन्न इयते॥

अर्थात्—"बिल्ली को पृष्ठभङ्ग में, मोर को शिखा के निकलने में और बालकों को दाँतों के निकलने में बड़ा भारी दुःख भोगना पड़ता है।" दाँत निकलते समय बालकों को अनेक रोग घेर लेते हैं। वास्तव में दाँतों के निकलते समय बालक रोगों का घर हो जाता है। दाँत निकलते समय यों तो सभी रोग हो सकते हैं या दाँतों का निकलना सब रोगों का कारण है, परन्तु ज्वर, खाँसी, शिर-दर्द, उलटी, दस्तों का पतला और बहुत आना—इन रोगों का होना तो बहुत ही सम्भव है। इसलिए इस समय अत्यन्त सावधानी से बालकों का पालन करना चाहिए। बालकों का उचित रीति से पालन होने से कोई दुःख न होकर धीरे-धीरे सब दाँत अपने आप निकलते आते हैं। किन्तु ठीक आहार-विहार

न होने पर नाना प्रकार की पीड़ाएँ उत्पन्न होती हैं। हम यहाँ पर स्वाभाविक दन्तोद्गम (दाँत निकलने) विषय में कुछ लिखने के बाद उससे सम्बन्ध रखने वाले सम्पूर्ण रोगों की विशद रूप से चर्चा करेंगे।

गर्भ-स्थिति के छः सप्ताह बाद गर्भस्थ वालक के ऊपरी दन्तवेष्ट (मसूड़े) में एक अर्द्ध गोलाकार गढ़ा या नली के सदृश स्थान दिखाई देता है। इस स्थान में बाद को दूध के दाँत निकलते हैं। नीचे के दन्तवेष्ट में यह गढ़ा पहले की अपेक्षा कुछ दिन बाद पैदा होता है। फिर यही गढ़ा एक-एक दाँतों के गढ़े के रूप में परिणत हो जाता है। दाँत निकलने में पहले ऊपर के दश और नीचे के दश दूध के दाँत निकलते हैं। इनका आरम्भ निम्न-लिखित प्रकार से होता है:—

१—चार महीने की अवस्था से सात महीने की अवस्था के वीच में नीचे के मसूड़ों में सामने के दो दाँत वाहर निकलते हैं। इसके वाद तीन से नौ सप्ताह तक दाँतों का निकलना वन्द रहता है।

२—आठ से लेकर दश महीने की अवस्था के वीच में ऊपर के मसूड़ों में आगे के चार दाँत वाहर निकलते हैं। इसके वाद छः से वारह सप्ताह तक दाँतों का निकलना वन्द रहता है।

३—वारह महीने से लेकर पन्द्रह महीने तक छः दाँत

निकलते हैं, उनमें चार पसवाड़ों के और दो 'लेटरल इन-साइसार' होते हैं। इसके बाद आठ महीने तक दाँतों का निकलना बन्द रहता है।

४—अठारह से चौबीस महीने के बीच में कुकुरदाढ़ निकलते हैं। इसके बाद तीस महीने तक दाँतों का निकलना बन्द रहता ।

५—तीस से लेकर छत्तीस महीने के बीच में दूसरे दन्तवेष्ट के निकलने से या बदलने से दूध के दाँत धीरे-धीरे सब गिर जाते हैं। दाँतों के निकलने का यह साधारण नियम लिखा गया है। किन्तु इसका व्यतिक्रम भी बहुत सी जगह देखा जाता है। क्योंकि किसी-किसी बालक के दाँत बहुत जल्दी और किसी-किसी के बहुत देर से निकलते हैं। इसके सिवाय बालक के शरीर में किसी प्रकार का रोग होने या शरीर की कमज़ोरी आदि कारणों से दाँत बहुत देर में बाहर निकलते हैं।

दाँतों के निकलने के समय मसूड़े अत्यन्त लाल, गरम और पीड़ायुक्त रहते हैं। कभी-कभी इनके साथ बालक को साधारण ज्वर भी रहता है। मुख से लार, आँखों से पानी और पतले दस्त आने लगते हैं। मसूड़ों में एक प्रकार की खाज सी मालूम होती है। जिसके कारण बालक अपनी अङ्गुली या माता के स्तन को ज़ोर से चबाता है और किसी कड़ी चीज़ को मुख में देकर मसूड़ों से पपोलता रहता है।

इस कारण मुख में छाले और जीभ में ललाई हो जाती है। इसके सिवाय बालक को बेचैनी, निद्रानाश, रोदन, पेशियों में थोड़ा-थोड़ा कम्प, आक्षेप आदि अनेक स्नायविक लक्षण प्रकट होते देखे जाते हैं।

दाँतों के निकलते समय पेट की पीड़ा का होना एक प्रधान लक्षण गिना जाता है। परन्तु सामान्य उदरामय अर्थात् दिन में ५-६ बार दस्तों का होना कुछ अनिष्टकारक नहीं होता। वरन् इन दस्तों के होने से दाँतों के निकलने में मदद मिलती है। क्योंकि ऐसे दस्तों के होने से आक्षेप आदि स्नायविक लक्षण जोर न पकड़ कर शान्त हो जाते हैं। यदि उदरामय भयानक आकार धारण कर ले, तो अवश्य शङ्का की बात है। कभी-कभी तो दस्त यहाँ तक बढ़ते हैं कि अत्यन्त दुर्बलतावश बालक की मृत्यु तक हो जाती है।

दाँत निकलने के समय प्रायः खाँसी हो जाती है। जब यह बहुत दिन तक रह जाती है, तो बड़ा कष्ट होने लगता है। इसके बिगड़ने पर प्रतिश्याय (ब्रङ्काइटिस) निमोनिया आदि कठिन रोग पैदा हो जाते हैं और बालक की जान के लिए बड़ा खतरा पैदा हो जाता है। किन्तु निमोनिया आदि की अवस्था न होने पर केवल स्नायविक दोष के रूप में खाँसी हो तो वह सहज में मिट सकती है। आँखों में सूजन का होना इस समय साधारणतः रहता है। किन्तु इससे किसी प्रकार की हानि होने की शङ्का न करनी चाहिए।

दश वर्ष से लेकर तेरह वर्ष की अवस्था के बीच में बालक-बालिकाओं को ज्ञान-दाढ़ निकलते हैं। इस समय इनको बड़ी बेचैनी और दन्त-वेदना भोगनी पड़ती है। शारीरिक तथा मानसिक तेज की हीनता भी हो जाती है। किसी-किसी के अन्य भयानक लक्षण भी प्रकट हो जाते हैं। इसलिए इस समय भी बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। इन दिनों हितकर और उत्तम आहार, शुद्ध वायु में टहलना और अन्यान्य स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का पालन करना नितान्त आवश्यक है। दाँत निकलने के समय होने वाले उपद्रवों की उपचार-विधि नीचे लिखी जाती है।:—

दाँत निकलते समय बालकों के अन्यान्य अङ्गों में अस्थि-समुदाय गठित और कठिन आकार धारण करता है। यदि किसी कारण से यह क्रिया उत्तम रूप से न हो सके तो सदा सर्दी, खाँसी आदि बनी रहती है, शरीर में खाज, मूत्रकृच्छ्र और उदरामय आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं, और कभी-कभी मस्तक-जल-सञ्चय (हाइड्रो केफेलास) का भयङ्कर रोग उत्पन्न हो जाता है। ये सभी रोग बालक के आहार-विहार में व्याघात (बिगाड़) होने के कारण ही पैदा होते हैं। इसलिए उत्तम दूध या दूसरे किसी पौष्टिक लघु आहार का सेवन कराना चाहिए, जिससे शरीर पुष्ट हो। यदि माता के दूध की विकृति के कारण पेट में पीड़ा हो, हरे दस्त आते हों, तो खूब सावधानी के साथ क्षीर-दोष

की चिकित्सा और शुद्ध वायु का सेवन कराना अत्यन्त आवश्यक है।

दाँतों के सुखपूर्वक निकलने के लिए सहज उपाय यह है कि किसी चतुर डॉक्टर से मसूड़ों को चिरवा दे अथवा शहद में पिसा हुआ सुहागा या नमक या शोरा मिला कर दिन में चार-पाँच बार मसूड़ों में रगड़ दिया करे। इसके सिवाय बालक को रबड़ के बने खिलौने देवे जिनको वह दाँतों से दबाता रहे।

बालक को दाँत निकलते समय कोई भी खटाई की चीज़ न दे, क्योंकि खटाई खाने से दाँत देर में निकलते हैं। गर्मी के दिनों में बालक के शिर को गरम पानी से धो दिया करे, परन्तु गरम टोपी नहीं पहिनानी चाहिए। उसके हाथ में कोई मुँह में चली जाने लायक़ छोटी वस्तु भी न दे। क्योंकि उसके निगल जाने पर बड़ी हानि की आशङ्का रहती है। दाँत निकलने के दिनों में जहाँ तक हो सके बालक को माता का शुद्ध दूध ही पिलाना चाहिए। वह न मिल सके तो बाहरी शुद्ध ताज़े दूध का व्यवहार करे। यदि दाँत निकलते समय क़ब्ज़ हो तो कॉस्ट्राइल (अण्डी का तेल) का प्रयोग करे। साधारण अवस्था में स्वयं दस्त होते हों तो उन्हें न रोके। अब कुछ ऐसे प्रयोग लिखते हैं जिनके द्वारा बालक के दाँत सहज में और सुखपूर्वक निकल आते हैं :—

१—पीपल और धाय के फूलों का चूर्ण शहद में मिला कर मसूड़ों में धीरे-धीरे दिन में तीन-चार बार लगाने से दाँत सुगमता से निकल आते हैं।

२—धाय के फूल और सूखे आँवले के चूर्ण को शहद में मिला कर मसूड़ों में रगड़ने से दाँत सुगमता से निकल आते हैं।

३—लवा, तीतर और बटेर का सूखा मांस समान भाग लेकर शहद के साथ मिला कर मसूड़ों में रगड़ने से दाँत अच्छी तरह निकलते हैं।

४—केले के फूल की केशर का रस पाँच माशे निकाल कर उसमें शहद और मिश्री मिला कर दिन में तीन-चार बार पिलावे और यही स्वरस मसूड़ों में भी मले। इस क्रिया से दाँत बड़ी सुगमता से बाहर निकल आते हैं।

५—सिरस के बीजों की माला बना कर बालक के गले में पहिनाने से दाँत निकलने में बड़ी सुगमता होती है।

६—सफ़ेद या पीले फूल की सम्भालू की जड़ को, जो पूर्व दिशा की ओर ज़मीन में फैली हुई हो, लाकर वस्त्र में या डोरी में बाँध कर बच्चे के गले में लटका दे। इससे दाँत निकलते समय के रोग नहीं सताने पाते।

७—हल्दी, देवदारु, चीड़, पीपरामूल, दोनों कटेली, पिठवन, सौंफ—इन सबका चूर्ण बना कर डेढ़ या दो माशे शहद और घी के साथ चटाने से दाँत निकलते समय के

सब रोगों में कमी हो जाती है। इसके उपयोग से ग्रहणी की शक्ति बढ़ती है, अपान वायु का अनुलोमन होता है, और ज्वर, अतीसार, श्वास, कास, पाण्डु रोग शान्त होते हैं।

८—मजीठ, धाय के फूल, लोध, केवड़ीमोथा, खरेंटी, बनमूँग और बनउड़द का पञ्चाङ्ग, कपास के बीज, छोटे कच्चे बेल की गिरी—इन सबको बराबर-बराबर, सब मिला कर पाव भर लेकर पानी के साथ पीस कर कल्क बनावे। फिर गाय का ताजा घी एक सेर, दही का पानी चार सेर, दूध चार सेर लेकर सबको एक पात्र में डाल कर मन्द-मन्द अग्नि से पकावे। जब घी सिद्ध हो जाय तो उसे छान कर डेढ़ या दो माशे, शहद और घी में मिला कर प्रतिदिन बालक को चटाने से सब प्रकार के ज्वर, कास, अतीसार, वमन, तृषा आदि व्याधियाँ दूर होती हैं और दाँत बहुत आसानी से निकल आते हैं।

९—पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक की छाल, सोंठ, बन-अजवायन, हल्दी, मुलैठी, देवदारु, दारुहल्दी, वायविडङ्ग, बड़ी इलायची, नागकेशर, नागरमोथा, कचूर, काकड़ासिङ्गी, काला नमक, अभ्रक-भस्म, शङ्ख-भस्म, लोह तथा स्वर्ण-माक्षिक-भस्म—प्रत्येक सम भाग में लेकर कूट-पीस कर जल के साथ दो रत्ती प्रमाण की गोली बना ले। इस गोली को जल में घिस कर मसूड़ों में लगाने से दाँत जल्दी निकलते हैं और योग्य अनुपान के साथ सेवन कराने से दाँतों की सब

बीमारियाँ ज्वर, अतीसार, आक्षेप आदि दूर हो जाती हैं। इसको "दन्तोद्भेदगदान्तक रस" कहते हैं।

१०—अङ्गरेजी सौदागरों के यहाँ एक पट्टी के आकार का 'बिजली का तावीज़' बिकता है। उसको बालक के गले में बाँधने से दाँत सुगमता से बाहर निकल आते हैं और पीड़ा बहुत कम होती है। अथवा जस्ता और ताँबे का तार एक साथ लपेट कर मख़मल के कपड़े में तावीज़ के समान बना, गले में बाँधने से दाँत निकलते समय कष्ट नहीं होता और दाँत जल्दी बाहर निकल आते हैं।

कभी-कभी बालक दाँतों के साथ ही उत्पन्न होता है और किसी-किसी के पहले ऊपर के दाँत निकल आते हैं। ये दोनों ही अवस्थाएँ धर्म-शास्त्र के अनुसार अमङ्गलकारक मानी जाती हैं। दाँत सहित बालक की उत्पत्ति बहुत कम होती है, परन्तु पहले ऊपर के दाँत बहुतों के निकलते हैं।

दाँत न निकलने का कारण

कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि किसी बालक के दाँत निकलते ही नहीं अथवा बहुत वर्षों के बाद निकलते हैं। इसका कारण आयुर्वेद में इस प्रकार लिखा है—"हनुमूलगतोवायुर्दन्तदेशेऽस्थिगोचरः। यदा शिशोः प्रकुपितो नोत्तिष्ठन्ति तदाद्विजाः।" अर्थात्—जब दाँत निकलते समय कारणवश वायु कुपित हो, जबड़ों के भीतर दाँतों की जड़ों में घुस कर दन्तोपयोगी रासायनिक भाग को सुखा देता है तो दाँत

नहीं निकलते। इसलिए ऐसी दशा में वायु को शान्त कर दाँत निकलने का उपाय करना चाहिए।

स्वप्न में दाँतों को चबाना

बहुत बार ऐसा देखा जाता है कि बालक स्वप्न में दाँतों को चबाता है। इसके दो कारण हैं। पहला बच्चे के पेट में कीड़ों का होना। दूसरा उसके जबड़े में वायु का कोप। इन दो कारणों से बालक स्वप्न में दाँतों को चबाता है। यदि कीड़ों के कारण दाँतों को चबाता हो, तो निदान के द्वारा कीड़ों को देख कर उनकी चिकित्सा करनी चाहिए। यदि बालक रूक्ष भोजन करने वाला हो, अथवा वात-प्रकृति का होने के कारण वायु-कोप से, जबड़े की शिराओं में खिंचाव होने से दाँतों को चबाता हो, तो उसके लिए वायु-शान्तिकारक चिकित्सा करना और पौष्टिक आहार देना चाहिए।

सूखा-रोग

खट्टे-मीठे अनेक प्रकार के विरुद्ध आहारादि और दूषित दूध के पीने से बालक के शरीर में कफ कुपित होकर कोमल तालु (खोपड़ी के नीचे का भाग) में सूखा-रोग (तालु-कण्टक रोग) उत्पन्न कर देता है। इस रोग में बहुधा तालु में गढ़ा पड़ जाता है और वह कुछ बाहर निकल आता है। इस कारण बालक दूध नहीं पीता या बड़ी कठिनता से थोड़ा-बहुत पीता है। आहार के न खाने से रक्त-मांस दिन

पर दिन सूख कर शरीर केवल अस्थिपिञ्जर अवशेष रह जाता है। पाचन शक्ति के बिगड़ जाने से हरा-पीला, छीछड़ेदार पतला दस्त होता है। प्यास बढ़ जाती है, मुख में खुजली, आँखों में पीड़ा और वमन होता है। बालक इतना कमज़ोर हो जाता है कि वह अपनी गर्दन भी नहीं सँभाल सकता।

सूखा-रोग की परीक्षा के लिए बहुधा माताएँ बालकों को मक्खी मार कर खिलाती हैं। क्योंकि इस रोग का प्रभाव है कि इसमें मक्खी खाने से वमन नहीं होता। परन्तु इस परीक्षा में कभी-कभी हानि होने की सम्भावना रहती है। इसलिए इस घृणित और हानिकारक परीक्षा को छोड़ कर निम्न-लिखित ढङ्ग से परीक्षा करनी चाहिए। इस परीक्षा से दोनों कार्य सिद्ध होते हैं। इससे रोग का भली-भाँति पता भी लग जाता है और रोग का इलाज भी होता है:—

मुर्गी के अण्डे का पानी या लार को एक चौड़े, गहरे और कढ़ाईनुमा बर्तन में डाल कर उसमें बालक को बैठा दे। यदि सूखा रोग होगा तो गुदा-मार्ग से वह पानी खिंच कर बालक के पेट में चला जायगा, अन्यथा नहीं। यही सूखा की उत्तम औषधि भी है। जब तक शरीर में रोग का अंश रहेगा तब तक प्रतिदिन पानी इसी तरह सूखता रहेगा, और रोग-मुक्त हो जाने पर सूखना या पेट में जाना बन्द हो जायगा। इसलिए सूखा-रोग का निश्चय हो जाने पर प्रत्येक

दिन प्रातःकाल एक या दो अण्डों का पानी पूर्वोक्त क्रिया से सुखाना हितकारी है। इससे बालक खूब हृष्ट-पुष्ट होकर रोग-मुक्त हो जाता है।

इस रोग की परीक्षा करने की दूसरी विधि यह है कि रोगी बालक के तालु के गढ़े में एक डेढ़-दो माशे गुड़ का टुकड़ा रख कर उसको गेहूँ के आटे की लोई या टिकड़ी से दबा कर किसी वस्त्र से बाँध देवे। तीन-चार घण्टे बाद खोलने से निश्चय हो जायगा कि सूखा-रोग है कि नहीं। यदि वह रोग होगा तो गुड़ वहाँ से उड़ जायगा। रोग न होने पर गुड़ ज्यों का त्यों वहीं मिलेगा। अब हम सूखा-रोग की कुछ औषधियाँ लिखते हैं, जिनके प्रयोग से रोगी बालक को अवश्य लाभ पहुँचता है :—

१—हरड़, बच और कूट—इनको पानी में पीस कर लुगदी बना कर उसमें शहद मिलावे। इसे स्तनों में लेप कर दूध पिलाने से यह रोग दूर हो जाता है। यदि बालक अन्न खाने वाला हो तो पूर्वोक्त औषधियों का बारीक चूर्ण कर शहद में चटाने से अथवा जौकुट कर छः माशे भर का क्वाथ बना कर शहद के साथ एक मास तक निरन्तर सेवन कराने से बालक इस रोग से मुक्त हो जाता है।

२—तालु की बढ़ी हुई दशा में जवाखार को शहद में मिला कर उसको तालु के गढ़े में रगड़ने या मलने से बहुत लाभ होता है।

३—पीपल, सौंफ और सेंधानमक के चूर्ण को गोबर के ताज़े रस में मिला, तालु के गढ़े में मलने से बहुत लाभ होता है ॥

४—अदरक, भाँगरा, हल्दी इनको समान भाग लेकर और पीस कर एक गोला सा बना ले। फिर उसको बड़ के पत्तों में अच्छी तरह लपेट कर तागे से बाँध दे। फिर इसके ऊपर तीन अङ्गुल मोटा गाय या भैंस के गोबर का लेप कर भूभल में पकावे। जब बाहर का गोबर बिल्कुल खुश्क हो जाय, तब उस लुगदी या गोले को निकाल वस्त्र में रख रस निचोड़ लेवे। इस रस का बालक के तालु और मुख में लेप करके दो-दो बूँद आँखों में प्रतिदिन डाल दिया करे। इस तरह एक मास निरन्तर करने से बालक रोग-मुक्त होता है।

५—बजाने के शङ्ख का कीड़ा, जो प्रायः गया आदि देशों में अधिकता से मिल सकता है, लेकर उसका बारीक चूर्ण कर ले। इसको एक रत्ती रोज़ तीन दिन तक शहद या माता के दूध के साथ देने से सूखा-रोग बिल्कुल निर्मूल हो जाता है ॥

६—असगन्ध ४० तोले, हरमल २० तोले, गाय का घी सवा सेर और गाय का दूध १६ सेर ले। पहले असगन्ध और हरमल का चूर्ण करके आठ सेर जल डाल कर किसी मिट्टी के पात्र में पकावे। दो सेर बाक़ी रहने पर उतार-छान कर इसमें पूर्वोक्त घी और दूध मिला किसी क़लई किए हुए पात्र

में पकावे। जब घी-मात्र शेष रहे तो उसे छान कर किसी काँच के पात्र में रख ले। इसमें से तीन माशे मिश्री में मिला कर बालक को चटाना और यदि बालक खाता हो तो उसे अन्न के साथ देना चाहिए। बालक न खा सके और केवल दूध ही पीता हो तो प्रतिदिन दो तोले के हिसाब से उसकी माता को खिलाना चाहिए। इसी घृत को आग में डाल कर धूनी भी देनी चाहिए। सोते समय बालक को गले तक कपड़ा ओढ़ा कर सुलाना उचित है।

७—नौसादर छः माशे, कुत्ते की हड्डी और छोटी इलायची के दाने डेढ़-डेढ़ तोला—तीनों का बारीक चूर्ण कर शहद के साथ उड़द के बराबर गोली बना कर सुखा ले। इसमें से एक-एक गोली दूध-शहद अथवा केवल शहद के साथ दोनों समय खिलाने से तीन सप्ताह में सूखा-रोग निर्मूल हो जाता है।

८—हींग तलाव एक सरसों बराबर, अदरक, तुलसी-पत्र, भैंस के गोबर का रस और शहद चार-चार बूँद प्रतिदिन दोनों समय एक महीने तक चटाने से अवश्य ही सूखा रोग दूर हो जाता है।

९—जहरमोहरा खताई पाँच तोले लेकर घीग्वार के रस में घोट कर छोटी-छोटी टिकिया बना कर सुखा ले। फिर उसको दो सकोरों में बन्द कर कपड़-मिट्टी करे तीन सेर उपलों की अग्नि में भस्म करले। एक से दो रत्ती पर्यन्त मात्रा

दोनों समय घी के साथ खिलावे और छः माशे लाक्षादि तैल में एक रत्ती भस्म डाल कर शरीर में मर्दन करे। इससे सूखा-रोग एक महीने में बिल्कुल निर्मूल हो जाता है।

इस रोग में खाने की औषधि के साथ शरीर में तेल की मालिश करना अत्यन्तावश्यक है। इसलिए इसमें यदि मरिचादि या नारायण तैल की मालिश की जाय तो बहुत लाभ होता है। इसकी प्रथम अवस्था में केवल खाने की दवाई से लाभ हो सकता है, परन्तु बढ़ी हुई दशा में तेल का मर्दन, लेप और खाने की औषधियों का एक साथ ही प्रयोग करना चाहिए। इसकी औषधि कम से कम चालीस दिन अवश्य करनी चाहिए। दो-चार दिन औषधि करने से कोई विशेष लाभ नहीं होता। बालक के लिए साधारण पौष्टिक और हल्का भोजन तथा दूध का सेवन कराना चाहिए।

गुदपाक

अच्छी तरह गुदा को साफ़ न करने से, या गर्मी के दिनों में गुदा में हर समय पसीने की चिपक से, अथवा शरीर में कफ और रक्त की विकृति होने से बालकों की गुदा के भीतर की तरफ लाल रङ्ग का एक घाव हो जाता है। इसमें खुजली के साथ जलन, पानी का बहना, शोथ और पीड़ा आदि अनेक उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे गुदा अन्त में बहुत पक जाती है। यह अधिकतर माता की

लापरवाई से होता है। इसलिए लोग इसको मातृका-दोष कहते हैं। पृष्टारू, गुदकुन्द, अनामिक रोग भी इसके नाम हैं। इस रोग की चिकित्सा नीचे लिखी जाती है :—

इस रोग में यदि बालक केवल दूध पीने वाला हो तो इसकी माता के दूध को पित्त और कफ-नाशक औषधियों के क्वाथ, पान, आलेप और पारे के सेंक के द्वारा शुद्ध करना चाहिए। साथ ही पित्त और कफ-नाशक औषधियों के द्वारा बालक के व्रण की चिकित्सा भी करनी चाहिए। विशेषकर इस रोग में पित्त की अधिकता होती है, इसलिए इसमें पित्त वीसर्प की चिकित्सा भी करनी चाहिए। अथवा निम्न-लिखित प्रकार से चिकित्सा करनी चाहिए :—

१—इस रोग में रसौत का प्रयोग अत्यन्त उपयोगी है। इसलिए पकाए हुए अत्यन्त शीतल जल में रसौत और शहद मिला कर बालक को पिलावे। इससे व्रण सूख जाता है। पीने की अपेक्षा रसौत के पानी से धोना बहुत लाभदायक होता है। इसलिए उपरोक्त जल को गुदा धोने के काम में भी लाना चाहिए। जल से धोने के बाद शहद और रसौत दोनों से व्रण के ऊपर लेप भी कर देना चाहिए। इससे बहुत लाभ होता है।

२—त्रिफला, बेर की छाल और पिलखन के क्वाथ से गुदा को अच्छी तरह धोकर, कसीस, मैनसिल, शुद्ध तूतिया, हरताल, रसौत और गोरोचन—इनका बारीक चूर्ण कर

काँजी में मिला कर व्रण पर लेप कर देवे। इससे व्रण शीघ्र सूख जाता है।

३—प्रतिदिन रसौत के पानी से गुदा को धोकर व्रण पर मुलैठी, शङ्खनाभि, काला सुरमा, सफ़ेद सुरमा—इनका चूर्ण बुरक देवे। अथवा अनन्तमूल और शङ्खनाभि का चूर्ण बुरक देवे, या विजयसार का चूर्ण बुरक देवे।

यदि व्रण में खुजली और ललाई अधिक हो तो जोंक लगवा कर उसका रक्त निकलवा देना चाहिए और पित्त-व्रण के सदृश चिकित्सा करनी चाहिए।

दुग्ध-वमन

जो बालक आमाशय की खराबी के कारण या अधिक दूध पीने के कारण दूध को पीकर उलट देता हो तो उसे निम्न-लिखित छर्दि-नाशक योगों का सेवन कराना चाहिए:—

१—आम की गुठली, धान की खील और सेंधानमक—तीनों को समान भाग लेकर मात्रा से शहद के साथ चटाना चाहिए। इससे दूध का वमन बन्द हो जाता है।

२—दोनों कटेलियों के फल के रस में पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, इनका चूर्ण डाल कर उसमें शहद और घी मिला कर चटाने से दूध का वमन बन्द हो जाता है।

३—सोंठ, मिर्च और पीपल—इन तीनों का चूर्ण शहद और घी के साथ चटाने से दूध का वमन शान्त हो जाता है।

४—पीपल, अतीस, काकड़ासिङ्गी, नागरमोथा—इनका चूर्ण शहद के साथ चटाने से दूध का वमन मिटता है।

५—पीपल, पाँचों नमक, वायविडङ्ग, नीम की छाल—इनके चूर्ण को शहद और घी के साथ चटाने से दूध का वमन शान्त हो जाता है।

६—पीपल की सूखी छाल जला कर उसकी भस्म छः गुने पानी में घोल कर रख दे। जब स्वच्छ हो जाय तब ऊपर के जल को नितार कर बालक को पिलाने से दूध का वमन कितना भी अधिक हो, बन्द हो जाता है। इसी योग को विसूचिका के वमन में भी दे सकते हैं।

८—काली मिर्च, चित्रक, पीपल और सोंठ के काढ़े में जीरा तथा सेंधानमक का चूर्ण मिला कर पिलाने से दूध का वमन शान्त होता है।

९—खैर की छाल, अर्जुन की छाल, तालीस पत्र, कूट, लाल चन्दन—इन औषधियों का चार सेर क्वाथ बना कर उसमें चार सेर दूध और एक सेर घी मिलावे। जब पक कर घी बाक़ी रह जाय तब उतार छान कर थोड़ा-थोड़ा शहद के साथ खिलाने से वमन शान्त होता है।

१०—पेट में वायु के बढ़ जाने के कारण यदि वमन होता हो, तो राई को पानी में पीस कर हल्का लेप कर देना चाहिए। अथवा कड़ुवे तेल की पेट में मालिश करके

थोड़ी देर मामूली गर्म किए हुए फ़लालैन के टुकड़े से पेट को ढाँक रखने से दूध का वमन मिट जाता है।

११—खरगोश, सेई, गोह, रीछ और मोर—इनके सूखे चमड़े और बालों की राख बना कर शहद और घी में मिला कर चटावे, इससे दूध का वमन आराम होता है।

१२—दूध की साधारण उलटी में दूध के साथ चूने का साफ़ जल मिला कर थोड़ा-थोड़ा करके पिलाना चाहिए। यदि इससे बन्द न हो तो दूध के बजाय थोड़ा-थोड़ा पतला मांस-रस (शोरवा) सेवन करावे।

वमन-निवारक औषधियों के निकल जाने पर और अत्यन्त वमन होने पर बालक की भुजा को, जहाँ पर अनन्त-व्रत का तावीज़ बाँधा जाता है, किसी रूमाल आदि चौड़े वस्त्र से बाँध कर औषधि देनी चाहिए। कितनी ही बार दूध के वमन होने का कारण माता के दूध का दोष होता है। इसलिए जिन अवस्थाओं में माता के दूध का निषेध किया गया है (बाल-परिचर्या प्रकरण देखिए), उसके अनुसार बालक को दूध का पिलाना बन्द कर दे। इससे वमन स्वतः शान्त हो जायगा। यदि बालक के पेट का विकार हो तो ऊपर लिखित योगों से तुरन्त लाभ पहुँचेगा।

दूध न पीना

बालक के दूध न पीने की अवस्था में पहले कारण का भली-भाँति निश्चय करे कि बालक किस लिए दूध नहीं पीता

है। यदि उसके शरीर में कोई पीड़ा होगी तो वह बार-बार उस स्थान पर अपना हाथ लगाएगा। माता गर्भिणी होगी तो मन्दाग्नि के कारण बालक दूध नहीं पिएगा। ज्वर आदि व्याधि के कारण भी बालक दूध पीना छोड़ देता है। इस प्रकार कारणों को देख कर पहले उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। यदि किसी विशेष पीड़ा के न होते हुए बालक दूध-पान न करता हो तो उसे नीम, पटोल, गिलोय तथा अडूसे के पत्तों का क्वाथ बना कर गुनगुना ही स्नान करावे। इस क्रिया से बालक दूध पीने लगता है।

धनुष्टङ्कार

इस रोग को अङ्गरेजी में 'टिटेनस' या 'ट्रिसमस न्यूनोटारम' कहते हैं। बालक के लिए यह रोग बहुत ही भयानक है। इस रोग के भयानक आकार धारण कर लेने पर १०० रोगियों में से १०-१२ का बच सकना भी कठिन होता है। अब तक के अनुभव से यही सिद्ध हुआ है कि इस रोग के होने पर बहुत कम बालक बचते हैं।

बच्चा पैदा होने पर उस समय के नियमों के ठीक पालन न करने से प्रायः इस रोग की उत्पत्ति होती है। जन्म होने के १०-१२ दिन के भीतर ही यह रोग अधिकतर होता हुआ देखा गया है। इसका प्रथम कारण सूतिकागृह में निर्मल और शुद्ध वायु का अभाव है। आजकल हमारे देश के सूतिकागृहों की दुर्दशा किसी से छिपी नहीं है। सूतिका-

घर में हवा के आने-जाने के लिए दरवाजे, खिड़की, झरोखे आदि नहीं रक्खे जाते। कहीं-कहीं तो यह भी नहीं जानते कि सूतिकागृह पृथक् होना चाहिए। जिस घर में खाना, पीना, सोना, उठना, बैठना आदि होता है, उसी में प्रसवागार भी बना दिया जाता है। प्रसवागार में दुर्गन्धि तथा गीलेपन (नमी) का कुछ भी ध्यान नहीं रक्खा जाता। बहुत से लोग बदबूदार और अन्धकारयुक्त कोठरी में सूतिकागृह बनाते हैं। उसमें ठण्ढ-गर्मी की कुछ परवा नहीं की जाती। कभी-कभी ऐसे घरों में एकाएक ठण्ढ लगने के कारण यह रोग उठ खड़ा होता । बहुत से लोग सूतिकागृह में लकड़ियों की आग जलाते हैं, जिससे वह धुएँ से भर जाता है और उसमें श्वास लेना कठिन हो जाता है। ऐसी दशा में भी यह रोग प्रायः उत्पन्न हो जाता है। नवजात बालक के लिए धुएँ से भरा और अत्यन्त गर्म मकान कितना हानिकारक होगा, इसके बारे में कुछ भी कहना व्यर्थ है। इन कारणों के सिवाय कभी-कभी बालक को तेल लगा कर बहुत गर्म मकान में सुलाने से या अग्नि से सेंक करने से भी यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

इस रोग में बहुत से लक्षण एकाएक प्रकट हो जाते हैं। अचानक पेशियों में आक्षेप (झटका या खिंचाव) शुरू हो जाता है। इससे हाथ-पैर खिंचने लगते हैं और धीरे-धीरे पीठ का हिस्सा टेढ़ा पड़ जाता है। यह रोग अत्यन्त ठण्ढ

या किसी भी अन्य कारणों से क्यों न पैदा हो, सबसे पहले बच्चा अधिक रोता हुआ दूध पीना बन्द कर देता है। उसके गले की पेशियाँ कड़ी पड़ जाती हैं। फिर धीरे-धीरे मुख-मण्डल का भाव हँसता हुआ या सिकुड़ा-सा प्रतीत होने लगता है। इसके बाद दूध आदि पीना बिलकुल बन्द हो जाता है। साधारण रूप से छूने या गोद में लेने पर बालक का शरीर कड़ा और लकड़ी की तरह ऐंठा हुआ जान पड़ता है। हाथ-पैरों की अँगुलियाँ सिकुड़ जाती हैं और बालक बेहोश हो जाता है।

चिकित्सा—इस रोग में सबसे पहले बेहोशी दूर करने की चिकित्सा करनी चाहिए। चैतन्यता के लिए किसी योग्य चिकित्सक से बालक के कपाल में हल्दी या लोहे की सलाई को आग में गरम करके थोड़ी-थोड़ी गर्मी पहुँचानी चाहिए। उसकी आँखों में ठण्ढे जल के छींटे मारने चाहिएँ। यदि इस उपाय से होश न आवे तो नौसादर और चूना दोनों को समान भाग मिला, शीशी में भर के डाट खोल कर बालक की नाक के पास रख देना चाहिए। इसके सूँघने से मूर्च्छा शीघ्र ही दूर हो जाती है। जब बालक होश में आ जाय तो उसे थोड़ा माता का दूध पिलाना चाहिए। यदि वह स्तन न दबा सकता हो तो दूध निकाल कर रुई के फाहे से थोड़ा-थोड़ा करके पिलाना उचित है। यदि इस समय माता का दूध न मिले, तो गाय का ताजा दूध देना भी बहुत अच्छा

है। हो सके तो कोई विरेचक औषधि खिला देनी चाहिए। यदि औषधि को न पी सके तो एरण्ड-तेल के साथ थोड़ा तारपीन का तेल मिला कर उसके पेट के ऊपर मालिश करनी चाहिए और पेट में शीतल जल का सिञ्चन भी करना चाहिए। इस रोग की दशा में एरण्ड के तेल का ही विरेचन देना अच्छा है, अन्यान्य विरेचक द्रव्यों के तीक्ष्ण होने से हानि की सम्भावना रहती है। नींद लाने के लिए गाँजे के पत्तों को जल के साथ पीस कर नाभि के चारों ओर पुलटिस की तरह लेप करना चाहिए। अथवा चौगुना पानी मिला कर मृत-सञ्जीवनी सुरा पिलाना चाहिए। मृत-सञ्जीवनी के अभाव में ब्राण्डी शराब देकर सुलाना उचित है। सारांश यह कि यह रोग किसी कारण से क्यों न पैदा हुआ हो, इसमें नींद का लाना ज़रूरी है। यदि बालक सुरा को न पी सकता हो, तो पिचकारी से गुदा द्वारा भीतर पहुँचा देना चाहिए। इस रोग में गर्म जल से स्नान और वात-नाशक नारायण या कुब्जप्रसारिणी तैल की मालिश विशेष लाभ-दायक है।

आक्षेप

यह भी एक भयानक रोग है। इसे अङ्गरेज़ी में 'कन-वलशन' कहते हैं। बड़े मनुष्यों की अपेक्षा यह बच्चों को अधिक होता है। सभी बालकों पर, विशेष कर जिनकी धातु-प्रकृति बहुत ही सुकुमार होती है, इस रोग का आक्र-

मण विशेष रूप से होता है। बच्चों पर इसका आक्रमण निम्न कारणों से होता है :—

१—दाँत निकलते समय माता के दूध के सिवाय अन्य किसी अयोग्य खाद्य-पदार्थ के खिलाने से।

२—बालकों की आँतों में कीड़ों के इकट्ठे हो जाने से।

३—पेट में अफरा या क़ब्ज़ होने से।

४—बहुत पुराने अतीसार के कारण आँतों में उत्तेजना पैदा होने से।

५—ज्वर की बढ़ी हुई दशा में।

६—शीतला, खसरा, मसूरिका, आन्त्रिक ज्वर आदि रोगों के आरम्भिक लक्षणों के रूप में। इसमें कुचला विष खाने के समान शरीर में बार-बार झटके लगते हैं।

चिकित्सा—बच्चों के इस प्रकार के सम्पूर्ण वातिक रोगों में स्वेद (बफारा), भेद (जुल्लाब), निरूहण (गुदा की पिचकारी) आदि उपायों से बहुत लाभ होता है। रोग का प्रधान कारण निश्चय करके उसको दूर करने की चेष्टा करना अत्यावश्यक है। बालकों को आक्षेप आरम्भ होने पर ग्रीवा, कण्ठ, वक्षःस्थल और मस्तक के बन्धनों को ढीला कर देना चाहिए। इसके साथ-साथ मुख को हवा करना, ठण्ढे जल से धोना और पीठ को धीरे-धीरे मर्दन करना चाहिए।

इस रोग में वस्ति-क्रिया (पिचकारी) द्वारा विशेष

लाभ होता है। कितने ही अवसरों पर तो विरेचन और वस्ति-क्रिया ही इसकी प्रधान चिकित्सा होती है। किन्तु सभी मामलों में इनका ही प्रयोग नहीं करना चाहिए। बालक की दुर्बलता तथा क्षीणता की अवस्था में अथवा बहुत दिन तक अतीसार रहने के बाद आक्षेप होने पर विरेचन और वस्ति-क्रिया से लाभ के बदले हानि हो जाती है। इसलिए ऐसी दशा में उसके लिए कोई दूसरी औषधि सेवन करानी चाहिए। इस रोग में लाभदायक प्रयोग नीचे लिखे जाते हैं:—

१—दशमूल के क्वाथ में थोड़ा सा पीपल का चूर्ण मिलाकर पिलाने से आक्षेप रोग में लाभ पहुँचता है।

२—वात गजाङ्कुश, महावात गजाङ्कुश, चिन्तामणि, अनिलारि रस आदि रसों को आधी रत्ती प्रमाण में शहद, अदरक आदि के साथ सेवन कराने से आक्षेप रोग शान्त हो जाता है।

३—इथारिस फ़र्ट ४ औंस लेकर जब तक आक्षेप होना दूर न हो, तब तक सुँघाते रहना आवश्यक है।

दाँत निकलने के दिनों में आक्षेप होने पर यदि दाँत के मसूड़े चीर दिए जायँ तो यह बन्द हो जाता है। इसके सिवाय आक्षेप रोग में बालक को थोड़े गरम जल में कण्ठ-पर्यन्त बैठा कर उसके मस्तक पर ठण्डा जल छोड़ने से बहुत लाभ होता है। किन्तु दुर्बल बालकों के लिए यह

उपाय लाभदायक नहीं। उनके लिए एक कम्बल को गरम जल में भिगो, अच्छी तरह निचोड़ कर शरीर में लपेट देना चाहिए और उसके ऊपर दो सूखे कम्बल लपेट देने चाहिएँ। इस प्रकार बालक को दस या पन्द्रह मिनट तक लपेटे रख-कर फिर सब कम्बलों को निकाल कर सूखे वस्त्र से उसके शरीर को अच्छी तरह पोंछ देना चाहिए। इस क्रिया से दुर्बल बालकों का आक्षेप दूर हो जाता है।

मूर्च्छा

इस नाम का बालकों को एक रोग होता है। इसे हिन्दी तथा बङ्गाली में ताड़का और संस्कृत में मूर्च्छा कहते हैं। इसका साधारण लक्षण मूर्च्छा होकर हाथ-पैरों का खिचाव के साथ तन जाना है। यह रोग निम्न कारणों से उत्पन्न होता है:—

१—ज्वर अथवा अन्य किसी कारण से शारीरिक ताप के अत्यन्त बढ़ जाने से।

२—एकाएक अत्यन्त डर जाने से।

३—शरीर के किसी विशेष स्थान पर कठिन आघात (चोट) लगने या वेदना होने से।

४—शरीर में कहीं पर भयानक फोड़ा या पेट में कृमि होने से।

५—बहुत दिन तक रोगी रहने से; बालक का शरीर अत्यन्त दुर्बल होने से।

इस रोग के आरम्भ होने पर बालक बेहोश हो जाता है, मुख का रङ्ग फीका पड़ जाता है, हाथ की अँगुलियों की मुट्ठी बँध जाती है, पैर की सम्पूर्ण अँगुलियाँ आपस में मिल जाती हैं और हाथ-पैर जोर से खिंचने लगते हैं। एक मिनट से लेकर पाँच मिनट तक बालक की यह दशा रहती है। फिर धीरे-धीरे सब लक्षण शान्त हो जाते हैं। किन्तु कभी-कभी यह रोग बारम्बार होता देखा गया है। किसी समय इस रोग के आरम्भ होने के पूर्व कुछ और भी लक्षण देखने में आते हैं। उस दशा में बालक नींद के समय अचानक चौंक पड़ता है, उसकी आँखें टेढ़ी पड़ जाती हैं तथा हाथ-पैरों के अँगूठे सिकुड़ने लगते हैं। इन बातों को देख कर मूर्ख लोग किसी देवता आदि का कोप समझ कर बालक को झाड़-फूँक और डरा-धमका कर बहुत दुःखी करते हैं। ऐसा न कर बड़ी होशियारी से किसी वैद्य के द्वारा इसकी चिकित्सा करानी चाहिए।

मूर्च्छा-रोग की बेहोशी होने पर सबसे पहले बालक को होश में लाने की कोशिश करनी चाहिए। इसके लिए एक हल्दी के टुकड़े या लोहे की सलाई को तेज अग्नि में डाल, गर्म करके उसके द्वारा ललाट (कपाल) में थोड़ा सा दग्ध करना या ताप देना चाहिए, इससे बालक होश में आ जायगा। उसकी आँखों में ठण्ढे जल के छींटे भी देने चाहिएँ। यदि इस क्रिया से होश में न आवे तो पिसे हुए

नौसादर और चूने को खुली शीशी में भर कर उसकी नाक में लगा कर सुँघाना चाहिए। इसके सूँघने से तुरन्त होश आ जाता है। होश आने के बाद जिस रोग की विकृति से यह दशा उपस्थित हुई हो, खूब सोच-विचार कर उस विकृति या यन्त्रणा को दूर करने की कोशिश करे। यदि अत्यन्त ज्वर की गर्मी के कारण यह रोग हो तो आँख, मुख और शिर में शीतल जल के छींटे देने चाहिएँ। इसी तरह पीठ के शिरा-दण्डो में तथा मस्तक के पश्चात् भाग में भी छींटे देवे और तेल और जल को मिला कर बालक के सर्वाङ्ग में मालिश करे। बच्चे को प्यास लगने पर खूब ठण्ढा जल पिलाना चाहिए। इन सम्पूर्ण क्रियाओं से शरीर की गर्मी कम पड़ने पर मूर्च्छा का वेग दूर हो जाता है। यदि दुर्बलता के कारण मूर्च्छा हुई हो तो एक बर्तन में राई और सरसों की लुगदी को गरम जल के साथ घोल कर उसमें बालक को घुटने पर्यन्त पैर डुबा कर बैठाना चाहिए। बालक को अधिक हिलावे-डुलावे नहीं। इसके बाद मैदा और राई को समान भाग में लेकर और लुगदी बना कर उसे जल के साथ मिला कर बालक की पिण्डलियों में लेप कर पट्टी बाँध देनी चाहिए। हाथ-पैर और बग़लों में आग का सेंक करे और हाथ-पैर तथा छाती में सोंठ के चूर्ण की मालिश भी करे। कृमि या अन्यान्य कारणों से मूर्च्छा हो तो एक टब (नाँद) में सहने योग्य गरम जल भर के

इसमें ५-७ मिनट बालक को कण्ठ तक डुबा कर स्नान कराना चाहिए। फिर शरीर को पोंछ कर सुखा दे। इससे मूर्च्छा-रोग में तुरन्त आराम होता है।

सब प्रकार के मूर्च्छा-रोगों में स्वस्थ होने के बाद थोड़ी मात्रा में दूध के साथ शुद्ध एरण्ड तेल (कॉस्ट्राइल) पिला कर दस्त कराना अत्यन्त आवश्यक है। मूर्च्छा का दुबारा आक्रमण दूर करने के लिए चौगुने जल के साथ अल्प मात्रा में मृत-सञ्जीवनी सुरा (इसके अभाव में ब्राण्डी शराब) पिला कर सुला देना चाहिए। इसके बाद जिन कारणों से रोग उत्पन्न हुआ हो उनकी चिकित्सा कर बालक को स्वस्थ रखने की चेष्टा करे। यह कोई दैवी विपत्ति नहीं है, इसमें झाड़-फूँक करने वाले स्यानों की चिकित्सा से प्रायः व्यर्थ में बालक के प्राण जाते रहते हैं।

ज्वर

यों तो ज्वरों के अनेक भेद हैं, परन्तु उनमें से सविराम, स्वल्पविराम, एक-ज्वर, टाइफस, टाइफाइड और कम्पज्वर (एग्युफीवर) प्रधान हैं। नीचे हम क्रम से इनके लक्षण तथा चिकित्सा लिखते हैं :—

सविराम ज्वर

इसको अङ्गरेजी में एग्युफीवर और संस्कृत में कम्प-ज्वर कहते हैं। मलेरिया के विष के आक्रमण से प्रायः यह

ज्वर उत्पन्न होता है। इसलिए इसको मलेरिया ज्वर भी कहा जाता है। मलेरिया-विष के शरीर में प्रवेश होने पर, साधारण ठण्ढ लगने पर ही यह ज्वर प्रकट हो जाता है। इस ज्वर का आक्रमण एकाएक होता है। ज्वर आने के पूर्व बालक के शरीर में जो परिवर्त्तन होता है, अनेक समय माताएँ उसको समझ नहीं सकतीं। इसमें एकाएक बालक वमन करने लगता है या बार-बार दस्त जाता है। इसके सिवाय कभी-कभी साधारण कँपकँपी भी चढ़ती है और बालक के हाथ-पैर ठण्ढे हो जाते हैं। इसके थोड़ी देर बाद बालक का सम्पूर्ण शरीर गरम हो जाता है और शारीरिक ताप (गर्मी) १०४ डिग्री से १०५ डिग्री तक हो जाती है। इसी समय किसी-किसी बालक को आक्षेप (झटके) होने लगता है। इस प्रकार के लक्षण प्रायः दो से लेकर चार घण्टे तक बराबर रहते हैं। इसके बाद शरीर में पसीना आकर ज्वर कम पड़ने लगता है और अन्त में खूब पसीने में तर होकर ज्वर उतर जाता है। इसकी चिकित्सा-विधि नीचे लिखी जाती है :—

इस ज्वर में जब बालक को ठण्ढ लगने लगे तो उसको अच्छी तरह गरम कपड़े ओढ़ा देने चाहिएँ। उसी समय एक बोतल में गरम जल भर, डाट देकर उसके ऊपर एक साफ़ फलालैन का कपड़ा लपेट कर बालक के पैरों के तलुओं में सेक करना चाहिए। उसको थोड़ी-थोड़ी गरम चाय भी

देनी चाहिए। क़ब्ज़ मालूम पड़ने पर एक मात्रा एरण्ड का तेल अथवा ग्रिगरीज़ पाउडर देना उचित है। ऐसा करने से बालक की ठण्ढ दूर होकर गर्मी आ जाती है। तब उसके कपड़ों को खोल देना चाहिए। उसके कोमल स्नायु-मण्डल के विषय में विशेष दृष्टि रखनी चाहिए। शारीरिक ताप के बहुत बढ़ जाने पर उसको शीतल जल में स्नान करा के मस्तक पर बरफ़ रख कर शैत्य प्रयोग करना और पीने के लिए शीतल जल देना अत्यन्त आवश्यक है। ज्वर की दशा में आक्षेप होने पर आक्षेप-निवारक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। प्रसिद्ध विद्वान् डॉक्टर गुडिभ का कथन है—"बालक को आकण्ठ शीतल जल में १०-१५ मिनट तक बैठा कर बाद को निकाल कर उसके सर्वाङ्ग को सूखे वस्त्र से अच्छी तरह पोंछ देना चाहिए। शारीरिक ताप १०० अथवा १०२ डिग्री रहने पर उसके सम्पूर्ण शरीर में तेल की मालिश करने से विशेष लाभ होता है। किन्तु मालिश के पहले तेल को थोड़ा गरम कर लेना चाहिए।" इस क्रिया से प्रायः बहुत ही अधिक लाभ होता देखा गया है; क्योंकि इससे बालक के स्नायुओं की उत्तेजना कम हो जाने से शीघ्र ही उसके शरीर में पसीना आने लगता है।

ज्वर के समय घर के किवाड़, खिड़की और झरोखे खोल देने चाहिएँ और शुद्ध वायु के आवागमन के लिए यत्न करना चाहिए। ज्वर की उष्णावस्था आरम्भ होने पर

बालक को औषधि देनी चाहिए, जिससे ज्वर का वेग कम हो और शरीर में पसीना निकले। इसके लिए नीचे लिखे हुए प्रयोगों का उपयोग करना चाहिए:—

१—एसिटेट ऑफ़ एमोनिया (द्रव) ½ औंस, नाइट्रेट ऑफ़ पुटाश २० ग्रेन, स्वीट स्प्रिट ऑफ़ नाइटर १ ड्राम, सिरप ३ ड्राम, जल तीन औंस।

२—नाइट्रेट ऑफ़ पुटाश १० ग्रेन, वाइनम एपिकाक २ ड्राम, सिरप २ ड्राम, बार्ली वाटर २ औंस।

इन दोनों प्रयोगों की मात्रा एक-सी है। छः महीने से कम उमर वाले बच्चों के लिए २-३ घण्टे के बाद एक चाय के छोटे चम्मच के बराबर मात्रा देनी चाहिए। छः महीने से लेकर एक वर्ष तक की अवस्था वाले बालकों को दो चम्मच प्रमाण मात्रा देवे। इसके बाद दो वर्ष तक की आयु वाले को चार चम्मच प्रमाण मात्रा देनी चाहिए। बालक के शरीर में जब तक पसीना न आवे तब तक पूर्वोक्त दूसरा योग एक-एक घण्टे पीछे देते रहना चाहिए। पसीना आने के बाद कुनैन का प्रयोग लाभकारी होता है। इसलिए पसीने के बाद निम्न-लिखित विधि से कुनैन देना चाहिए:—

कुनैन ४० ग्रेन, काग़ज़ी नींबू का रस दो चम्मच—दोनों को मिला कर एकत्र कर लेवे। अथवा डाइल्यूट सलफ्यूरिक एसिड ४० बूँद, सिरप २ ड्राम, जल १ औंस और कुनैन ४० ग्रेन।

एक वर्ष के बालक के लिए पूर्वोक्त मिक्श्चर का आठवाँ भाग और दो वर्ष के बालक के लिए चौथाई भाग ८ या १० घण्टे के अन्तर से देवे। खाली पेट में कुनैन का अधिक मात्रा में प्रयोग करना अच्छा नहीं है। एक मात्रा देने के बाद फिर एक मात्रा देनी चाहिए। इसके साथ दुबारा ज्वर न आने के लिए बालक को गर्म कपड़े पहनाए या ओढ़ाए रखना चाहिए।

आयुर्वेद के मतानुसार ठण्ढ को दूर करने के लिए गरम जल से स्नान और हाथ-पैरों में गरम पानी की बोतल से सेक करना चाहिए। ज्वर की गर्मी पैदा होने पर शीतल जल (पका कर ठण्ढा किया हुआ) पिलाना और शिर में ताज़े मक्खन में इलायची का तेल और थोड़ा कपूर मिला कर मालिश करनी चाहिए। इसके बाद ज्वर कम करने और शरीर में पसीना लाने के लिए "सञ्जीवनी वटी" एक गोली पीस कर छः माशे जल में मिला कर गुनगुना करके पिलावे। इससे ज्वर कम हो जायगा और शरीर में पसीना भी आवेगा। जब ज्वर छूट जाय और यह मालूम हो कि बालक को क़ब्ज़ है तो शुद्ध एरण्ड का तेल दूध में मिला कर देवे। इससे दस्त होकर कोष्ठ शुद्ध हो जावेगा। दुबारा ज्वर को रोकने के लिए "तिक्त वटी" का सेवन करावे। एक गोली गरम जल में घिस कर पिलावे। इस तरह एक दिन में तीन-तीन घण्टे के बाद तीन गोली खिलावे।

इससे दुबारा ज्वर नहीं आने पाता। इसके सिवाय बड़ी अवस्था के मनुष्यों के सेवन करने योग्य अन्य योगों को भी बहुत अल्प मात्रा में दे सकते हैं।

तिक्त वटी इस ज्वर की एक उत्तम औषधि है। इसके बनाने की विधि यह है कि सुन्दर, साफ और नई कुटकी (कड़वी) एक छटाँक और चिरायता एक छटाँक लेकर दोनों का बारीक चूर्ण कर करेले के पत्तों के आध पाव रस में खूब घोट कर उड़द के बराबर गोली बना ले। इन गोलियों के उपयोग करने से मलेरिया आदि सब विषम ज्वर शान्त होते हैं, और साथ ही कोष्ठ की शुद्धि भी अच्छी तरह हो जाती है। इसमें मिगनेशिया साल्ट मिले हुए ज्वर-मिक्श्चर के गुण हैं। अथवा ज्वर शान्त करने के लिए दिन में दो बार तीन-तीन घण्टे के बाद "अमृतारिष्ट" का प्रयोग करे। यह सब प्रकार के ज्वरों को दूर करने वाली अत्यन्त गुण-दायी औषधि है। इसके बनाने की विधि "भैषज्यरत्नावली" नामक वैद्यक ग्रन्थ में देखना चाहिए।

साधारण लक्षणों का सविराम ज्वर, पूर्वोक्त ज्वर-चिकित्सा-विधि से आसानी से दूर हो सकता है। परन्तु कभी-कभी इस ज्वर का प्रकोप अत्यन्त बढ़ जाता है। ऐसी दशा मे शारीरिक ताप बहुत अधिक हो जाता है? जिह्वा खुश्क और काले रङ्ग की हो जाती है, दोनों हाथ काँपने लगते हैं, और बालक बेहोश होकर ढीला सा पड़ जाता है।

ऐसी दशा बालकों के लिए अत्यन्त हानिकारक या साङ्घातिक है। इसलिए बड़ी सावधानी के साथ इसकी चिकित्सा करने की आवश्यकता है। इस विषय में डॉक्टर गुडिभ साहब का कथन है कि इस प्रकार की सङ्कटापन्न अवस्था में इस ज्वर की चिकित्सा करना अत्यन्त सहज है। इसमें कुनैन, लोह, दूध देने, उत्ताप प्रयोग करने तथा शारीरिक ताप की रक्षा करने से अनेक समय बहुत लाभ होता है। यदि हो सके तो जल-वायु का परिवर्त्तन करा देना चाहिए। ऐसे समय में बालक को अधिक प्रमाण मे दूध पिलाने की सम्मति भी उन्होंने दी है।

एक-ज्वर

यह ज्वर २, ५, ७, १०, अथवा १२ दिन पर्यन्त अवि-च्छेद (लगातार) रूप से बना रहता है। इसमें प्रथम थोड़ा शीत और कम्प होता है। खाने-पीने में बिल्कुल अनिच्छा, उबकाई, शिर में दर्द, हाथ-पैरों में पीड़ा और त्वचा शीतल रहती है। फिर शरीर ख़ुश्क और गरम, नाड़ी अत्यन्त तेज़, प्यास अधिक, शिर में अधिक पीड़ा और मुख में मलिनता आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस ज्वर में जिह्वा ख़ुश्क और लेसयुक्त रहती है तथा क़ब्ज़ भी रहता है। इससे पेट में पीड़ा और कभी-कभी पित्त का वमन भी होता है।

विशेष प्रबल पीड़ा के न होने पर यह ज्वर अनेक समय बिना औषधि के स्वयं ही शान्त हो जाता है। यदि रोगी

के शरीर में दाह और प्यास अधिक लगती हो तो नागर-मोथा, पित्तपापड़ा या स्याहतरा, खस, लालचन्दन, नेत्र-वाला और सोंठ—प्रत्येक औषधि को तीन-तीन माशे लेकर जौकुट करके चार सेर जल में पका लेवे। जब एक सेर बाक़ी रहे, तब उतार-छान कर किसी मिट्टी के पात्र में रख ले। इस जल में से रोगी को एक-एक चम्मच पीने के लिए देवे। इसको आयुर्वेद में "षडङ्ग पानीय" कहते हैं। यदि यह जल न मिल सके तो एक पात्र में शुद्ध साफ़ जल को पका कर अर्थात् एक-दो उबाल देकर, चौड़े बर्तन में रख कर ठंढा कर लेवे। इसमें से थोड़ा-थोड़ा रोगी को पीने के लिए देवे। अथवा बरफ़ का जल रोगी को पीने के लिए दे। इसके बाद सविराम ज्वर में कहे हुए एलोपैथिक प्रयोगों के अनुसार औषधि देने से अत्यन्त लाभ होता है। आयुर्वेद में इसके लिए प्यास और दाह की वृद्धि होने पर षडङ्ग पानीय के साथ-साथ सञ्जीवनी वटी का गरम जल से उपयोग लिखा है। ज्वर कम होने पर किरातादि क्वाथ सेवन कराना लाभदायक है।

विषम-ज्वर

इस ज्वर के आने पर गर्मी-सर्दी तथा चढ़ाव-उतार के विषय में सदा विषमता रहती है। इस कारण इसे विषम-ज्वर के नाम से पुकारा जाता है।

सभी प्रकार के विषम-ज्वर विराम-काल में रोगी के

शरीर को नहीं छोड़ते। पर धातुओं में बहुत सूक्ष्म रूप से लीन होने से ज्ञात नहीं होते। क्योंकि जब ज्वर बिल्कुल हट जाता है, तब रोगी के शरीर में ग्लानि, भारीपन और दुर्बलता नहीं रहती। इसलिए इस ज्वर में ज्वर का वेग कम हो जाने से ही इसके दूर हो जाने का भ्रम हो जाता है।

सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक, चातुर्थिक भेद से विषम-ज्वर पाँच प्रकार का होता है। कितने ही आयुर्वेदाचार्य सन्तत को छोड़ कर बाक़ी चार प्रकार के ज्वरों को ही विषम-ज्वर मानते हैं। इसका कारण यह है कि विषम-ज्वर का साधारण लक्षण मुक्तानुबन्धित्व है। मुक्तानुबन्धी का अर्थ है जो छोड़ कर फिर आक्रमण करे। परन्तु सन्तत-ज्वर का लक्षण यह कहा गया है :—

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ।

सन्तत्यायोऽविसर्गीस्यात् सन्ततः सनिगद्यते ॥

इस लक्षण के अनुसार एक सप्ताह, या दस या बारह दिन तक अविच्छेद रूप से (लगातार) रोगी के शरीर में ज्वर बना रहता है। किसी समय भी पूरी तरह से नहीं छूटता। तृतीय, चातुर्थिक ज्वरों के समान इसके कोई पर्याय नहीं मिलते। इसलिए इसको नित्य-ज्वर कह कर गणना की जाती है। किन्तु चरकादि के मत से यह विषम अर्थात् सविच्छेद (छोड़ कर आक्रमण करने वाला) ज्वर है। क्योंकि यह

बारहवें दिन कुछ विराम को प्राप्त होकर फिर दुबारा रोगी पर आक्रमण करता है। तथापि इसकी चिकित्सा नित्य-ज्वर के सदृश करनी चाहिए। इसके लक्षण भी प्रायः 'टाई-फाइड फीवर' के समान होते हैं। अतः इसकी और अन्य विषम-ज्वरों की चिकित्सा एक-सी नहीं होती।

नित्य-ज्वर में चिकित्सा की खराबी से ज्वरकारक सम्पूर्ण दोषों के निर्मूल न होने पर कुछ अंश अवशेष रह जाने से वह कालान्तर में अयोग्य खान-पान के द्वारा फिर वृद्धि को प्राप्त हो जाता है और रसादि सात धातुओं में से किसी एक धातु को बिगाड़ कर विषम-ज्वर उत्पन्न कर देता है।

इस दोष के रस-धातु गत होने पर सन्तत-ज्वर, रक्त-धातु गत होने पर सततक-ज्वर, मांस गत होने पर अन्येद्युष्क-ज्वर, मेदोगत होने पर तृतीयक, और अस्थि तथा मज्जा-धातु गत होने पर चातुर्थिक ज्वर उत्पन्न होता है। इनमें से चातुर्थिक ज्वर शान्त होकर अनेक प्रकार के रोगों को पैदा कर शरीर को नष्ट कर डालता है। इनकी सम्यक् पहिचान के लिए यहाँ पर प्रत्येक के लक्षण लिखते हैं :—

सन्तत—जो ज्वर सात, दस अथवा बारह दिन तक लगातार शरीर में बना रहता है उसको सन्तत ज्वर कहते हैं।

सततक—जो ज्वर दिन-रात में दो बार आवे, अर्थात् दिन में एक बार और रात्रि में एक बार, अथवा दिन में ही

दो बार आकर रात्रि में न आवे, अथवा रात्रि में ही दो बार आकर दिन में बिल्कुल न आवे, उसको सततक या द्वैकालिक ज्वर कहते हैं।

अन्येद्युष्क—जो ज्वर दिन-रात में केवल एक बार आवे, अर्थात् पहले दिन किसी समय दिन में या रात में होकर छूट जाय, दूसरे दिन फिर उसी समय या कुछ आगे-पीछे होकर शान्त हो जाय। इसको प्रतिदिन आने वाला ज्वर या अन्येद्युष्क ज्वर कहते हैं

तृतीयक—जो ज्वर पहले दिन होकर दूसरे दिन अप्रकट रह कर फिर तीसरे दिन आवे। अर्थात् एक दिन का अन्तर देकर आने वाले ज्वर को तृतीयक ज्वर कहते हैं।

चातुर्थिक—जो किसी दिन आकर उसके बाद दो दिन रुक कर चौथे दिन फिर आ जाय, उसे चातुर्थिक ज्वर कहते हैं।

इसके सिवाय चातुर्थिक विपर्यय नाम का भी ज्वर देखने में आता है। यह चातुर्थिक ज्वर की विराम और आक्रमण की विपरीत दशा में होता है। अर्थात् इसमें चातुर्थिक के विराम-काल में आक्रमण और आक्रमण-काल में विराम होता है। इसमें पहले और चौथे दिन विराम और दूसरे तथा तीसरे दिन आक्रमण-काल रहता है।

ज्वर-विकार

ज्वर जब प्रबल आकार धारण कर लेता है, तो उसको ज्वर-विकार कहते हैं। विकार साधारण रूप से वात-पैत्तिक,

वात-श्लैष्मिक, पित्त-श्लैष्मिक और त्रिदोष-जन्य—चार प्रकार का होता है।

वात-पैत्तिक विकार में तृष्णा, मूर्च्छा, भ्रान्ति, निद्रानाश, मस्तक में वेदना, कण्ठ और मुख में शोष, वमन, रोमाञ्च, अरुचि, आँखों के सामने अँधेरा, जोड़ों में टूटन के समान पीड़ा, जँभाई बहुत आना—ये लक्षण प्रकट होते हैं।

वात-श्लैष्मिक विकार में शरीर का गीले वस्त्र से आच्छादित जान पड़ना, जोड़ों में दर्द, नींद की अधिकता, शरीर में भारीपन, शिर में दर्द, नासिका और मुख से जल-स्राव, खाँसी, पसीने की अधिकता, सन्ताप और मध्यम ज्वर का वेग—ये लक्षण प्रकट होते हैं।

पित्त-श्लैष्मिक ज्वर-विकार में रोगी का मुख कफ से लिप्त और कड़ुवा रहता है। इसके साथ तन्द्रा, मोह, कास, अरुचि, तृष्णा, कभी ठण्ढ और गर्मी का होना आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

सान्निपातिक या त्रिदोषज विकार में थोड़ी देर ठण्ढ और दाह, अस्थि-सन्धियों तथा मस्तक में वेदना, आँखें लाल और बाहर को निकली हुई तथा टेढ़ी और जल से भरी हुई, कानों में दर्द और भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्द सुनाई देना, गले में फाँस-सी चुभना, तन्द्रा, मोह, प्रलाप, कास, श्वास, अरुचि आदि लक्षण प्रकट होते हैं। जीभ जली हुई सी काले रङ्ग की और छूने में गाय की जीभ के सदृश खुरदरी

रहती है, सम्पूर्ण शरीर में शिथिलता जान पड़ती है, मुख से कफ-पित्त के साथ रक्त निकलता है। शिर को इधर-उधर हिलाना, तृष्णा, निद्रानाश, छाती में पीड़ा, गले में घुर-घुर आवाज़, शरीर में स्थान-स्थान पर लाल-काले रङ्ग के चकत्ते, ठीक शब्द न निकलना, पेट में भारीपन, बहुत दिन के बाद थोड़ा सा पसीना या दस्त होना आदि बातें भी देखने में आती हैं। इन सम्पूर्ण लक्षणों को अङ्गरेज़ी में "टाइफ़ाइड सिस्टमस" कहते हैं। यदि इन लक्षणों में से कुछ लक्षण बहुत हलके हों तो रोग साध्य होता है। सम्पूर्ण लक्षणों के तीव्र रूप में उत्पन्न होने पर बालक का जीवन संशय में समझना चाहिए। सान्निपातिक विकार अनेक प्रकार के होते हैं, किन्तु यहाँ पर बहुत विस्तार होने के कारण नहीं लिखे जा सकते।

अरिष्ट-लक्षण—अधिक प्यास, होंठ काले, जीभ काँटे-दार और मैली, क़ब्ज़, बहुत बेचैनी, शिर गरम, आँखें लाल, प्रलाप, पेशाब और पसीने में रुकावट या अधिकता, बोल न सकना, नाड़ी की गति कोमल व क्षीण, कपाल में बूँदों के रूप में पसीना, मूर्च्छा, सोते हुए उठ कर बैठने या भागने की चेष्टा करना, परिचित मनुष्यों को भी नहीं पहिचानना, बीच-बीच में भय के मारे चौंक पड़ना इत्यादि लक्षणों को देख कर जीवन में आशङ्का उत्पन्न हो जाती है।

अशुद्ध, सड़े और दुर्गन्धयुक्त वन, जङ्गल आदि स्थानों में वास करना और ख़राब जल को पीना आदि सान्नि-

पातिक ज्वर के प्रधान कारण हैं। बहुत से आचार्य इसकी सांक्रामिक रोगों में गणना करते हैं। इस प्रकार के ज्वर का भोग-काल ४१ दिन का होता है और कभी-कभी इसकी अपेक्षा अधिक दिन तक भी हो जाता है।

विकृत-ज्वर की चिकित्सा करना अत्यन्त कठिन है। इस वास्ते ज्वर की विकृति के ज्ञात होते ही किसी सुयोग्य अनुभवी चिकित्सक को बुला कर चिकित्सा करानी चाहिए। विकृत-ज्वर की दशा में कभी-कभी मामूली भूल से बड़ी भारी हानि हो जाती है। हम यहाँ पर इसकी संक्षिप्त चिकित्सा-विधि देते हैं। विकारयुक्त रोगी को कभी बिना पकाया हुआ जल नहीं देना चाहिए। जल को पका कर ठण्ढा करके उसे थोड़ा-थोड़ा पीने के लिए देते रहना चाहिए। इस ज्वर में प्यास लगने पर बरफ़ देने से किसी प्रकार की हानि होने की सम्भावना नहीं रहती, किन्तु अधिक जलपान कराने से रोग बढ़ जाता है। रोगी को साफ़ और अच्छे मकान में, साफ और धुले हुए बिछौने पर सुलाना चाहिए। पाकाशय अजीर्ण आहार से भरा हुआ होने पर उलटी करने की इच्छा होती हो तो वमनकारक औषधि (आक की जड़ या उसकी छाल के चूर्ण) का जल के साथ प्रयोग करना चाहिए। परन्तु वमन कराने से बालक को अत्यन्त कष्ट होता है, जिससे अनेक प्रकार की हानि होने की सम्भावना रहती है। इसलिए विशेष आवश्यकता न हो तो वमन

नहीं कराना चाहिए। आँतों में मल भरा हुआ हो तो रस-चूर्ण (केलोमल) चौथाई रत्ती और सज्जीखार एक रत्ती मिला कर जल के साथ सेवन करावे। अथवा थोड़ा सा कास्ट्राइल (एरण्ड-तेल) गरम दूध या जल के साथ सेवन करावे।

ज्वर में वमन और विरेचन के विषय में डॉक्टर गुडिभ साहब का मत है कि बालक को जहाँ तक हो सके वमन या विरेचन न देना ही अच्छा है। इससे अनेक समय बालकों को अतीसार हो जाता है। यदि यह अतीसार साधारण प्रकृति का हो तो उसे बन्द नहीं करना चाहिए। क्योंकि उसके एक साथ बन्द होने पर आँतों के अन्दर रुका हुआ सम्पूर्ण विकृत पदार्थ पकना आरम्भ होता है, जिसके कारण भयङ्कर अफरा, पेट-पीड़ा, दाह आदि लक्षण प्रकट होते हैं और फिर बार-बार जल के सदृश दस्त आने लगते है।

ज्वर की सामान्य चिकित्सा

बालकों को ज्वर आने पर उनको लङ्घन कराना अच्छा नहीं है। अन्न खाने वाले बालक को भी थोड़ा-थोड़ा दूध देते रहना चाहिए। ज्वर में माता के दूध पीने वाले बालक की प्यास को शान्त करने के निमित्त स्तन-पान कराना चाहिए। अन्न खाने वाले के लिए पकाया हुआ चतुर्थांश अवशेष जल पीने को देना चाहिए। अब हम नीचे कुछ औषधियाँ देते हैं, जो सब प्रकार के ज्वरों में लाभ पहुँचाती हैं :—

१—नागरमोथा, नीम की छाल, पटोलपत्र, मुलैठी और हरड़—एक-एक तोला लेकर, सबको जौकुट करके १० मात्रा बना ले। एक मात्रा को एक छटाँक जल में पकावे। जब चौथाई जल रहे, उतार-छान कर ठण्डा करके शहद मिला कर दोनों समय पिलाने से बालकों का ज्वर नष्ट हो जाता है।

२—आँवला, नागरमोथा, नीम की छाल, पटोलपत्र और हरड़ के क्वाथ में शहद मिला कर पूर्वोक्त प्रकार से सेवन कराने से बालकों का ज्वर दूर होता है।

३—दरियाई नारियल को एक चिकने पत्थर पर अर्क़-गुलाब के साथ घिस कर दो रत्ती तक दिन में दो-तीन बार शहद के साथ चटाने से बालकों का ज्वर, कम्प और वायु-विकार नष्ट होते हैं।

४—गूगल, वच, कूट, हाथी और भेड़ का सूखा चमड़ा, नीम के सूखे पत्ते—सबको कूट कर शहद मिलाकर धूप देने से बालकों का ज्वर शीघ्र ही छूट जाता है।

५—मरोड़फली, हल्दी, सरसों, चिरायता, कोयल, मजीठ, नागरमोथा, सौंफ—इन औषधियों को बकरी के दूध में पीस कर उबटन करने से बालक का ज्वर दूर होता है।

६—मुलैठी, वंशलोचन, रसौत, धान की खील—एक-एक तोला और मिश्री पाव भर ले। पहले चारों औषधियों का चूर्ण करे, फिर उसको मिश्री की चाशनी में डाल कर अवलेह (चटनी) तैयार कर ले। इसमें से प्रतिदिन १ माशे

से चार माशे तक सेवन कराने से सब प्रकार के बाल-ज्वर नष्ट होते हैं।

७—रससिन्दूर, अनविधे मोती, स्वर्ण, अभ्रक, लोह तथा स्वर्णमाक्षिक-भस्म—सबको बराबर भाग में लेकर ग्वारपाठे के रस में घोट कर मूँग के बराबर गोली बना ले। बालक की अवस्थानुसार एक अथवा आधी गोली दूध व चीनी के साथ सेवन कराने से बालकों का ज्वर, श्वास, वमन पारिगर्भिक रोग, ग्रह-दोष, स्तन-पान न करना, कामला, अतीसार और अग्नि की विकृति आदि रोग नष्ट होते हैं। इसका नाम कुमारकल्याण-रस है।

८—शुद्ध सोनामक्खी, शुद्ध आँवलासार गन्धक और शुद्ध पारा—प्रत्येक चार-चार तोले और काली मिर्च पाँच तोले लेवे। पहले पारा, गन्धक और सोनामक्खी को खरल करके कजली बना ले। फिर पुनर्नवा (गदहपुन्ना) की जड़ का रस, मजीठ का स्वरस, बँगला पान, भाँगरा, हुलहुल, आक (मदार), मकोय सफ़ेद, कोयल और मेउड़ी के पत्तों का रस प्रत्येक चार-चार तोले क्रमशः डाल कर खरल करे। जब घोटते-घोटते गोली बनाने योग्य हो जाय, तब सरसों के बराबर गोली बाँध कर छाया में सुखा ले। दोनों समय दूध और शहद के साथ सेवन कराने से बालकों का साधारण तथा सन्निपात-ज्वर और कास नष्ट होते हैं। इसका नाम रामेश्वररस है।

९—रामेश्वर-रस में सोनामक्खी को दो तोले के स्थान में एक तोला ले और पान के रस में भावना न देकर बाक़ी द्रव्यों के रस में ही भावना देवे, तो इसका नाम बाल-रोगान्तक रस होता है। गुण रामेश्वर-रस के समान ही है।

१०—यदि बालकों को ज्वर के साथ अतीसार भी हो तो नागरमोथा, छोटी पीपल, अतीस और काकड़ासिङ्गी—प्रत्येक समभाग लेकर चूर्ण कर ले। इसमें से दो रत्ती मात्रा शहद के साथ सेवन कराने से ज्वरातिसार, श्वास, कास और वमन शान्त होते हैं। यह चूर्ण चौभुजिया के नाम से प्रसिद्ध है। आयुर्वेद में इसका नाम बाल-चातुर्भद्रिक चूर्ण है।

११—अतीस, छोटी इलायची के दाने, वंशलोचन तीन-तीन माशे, लौंग एक माशा, अपामार्ग की हरी पत्ती दो तोला—सबको जल के साथ पीस, खरल में अच्छी तरह घोट कर उड़द के बराबर गोली बना कर छाया में सुखा ले। दिन में तीन-चार बार एक-एक गोली दूध और मधु के साथ सेवन कराने से बालकों का ज्वर, खाँसी, पसली का रोग, श्वास, कृमि और मृगी-रोग नष्ट होते हैं। इसका नाम ज्वरघ्न वटी है।

१२—कपूर, केशर, छोटी इलायची और जावित्री तीन-तीन माशे; इन्द्रजौ, कुरैया की छाल, खस, जहरमोहरा खताई, जायफल, पीपल, मुलैठी और रूमी मस्तगी छः-छः माशे; अतीस, अनार की कली, काकड़ासिङ्गी, धनिया, नागरमोथा,

बबूल का गोंद, बेलगिरी, वंशलोचन, नेत्रबाला और सोंठ एक-एक तोला—सबका बारीक चूर्ण करके एक घण्टे अर्क़ गुलाब में घोट कर उड़द के बराबर गोली बाँध, छाया में सुखा ले। दोनों समय दूध और मधु के साथ एक-एक गोली सेवन कराने से बालकों का ज्वर, श्वास, कास, वमन और ग्रहणी रोग शान्त होता है। अनुपान-भेद से यह वटी सूखा रोग को भी नष्ट करती है। इसका नाम बालामृत वटी है।

१३—रास्ना, लाल चन्दन, कूट, कुटकी, देवदारु, असगन्ध, मरोड़फली, मुलैठी, रेणुका (सम्भालू), सौंफ, हल्दी—ये सब समान भाग ले। सब मिला कर पाव भर वज़न होना चाहिए। पीपल की लाख एक सेर, काले तिलों का तेल एक सेर और दही का पानी (तोर) चार सेर ले। पहले सम्पूर्ण औषधियों को कूट कर दही के पानी में पीस कर कल्क बनावे। फिर लाख को चौगुने जल में पका कर एक सेर बाक़ी रहने पर उतार-छान ले। फिर पूर्वोक्त कल्क, लाख का क्वाथ, दही का जल और तेल को एक कढ़ाई में डाल कर मन्द-मन्द अग्नि से पकावे। जब तेल-मात्र रह जाय तो उसे उतार-छान कर रख ले। इस तेल के निरन्तर मर्दन करने से बालकों के जीर्णज्वर, खाँसी, श्वास, क्षय, उन्माद, मृगी और वात-रोग आदि बीमारियाँ नष्ट होती हैं। इसके मर्दन करने से शरीर में बल बढ़ता है और शरीर का वर्ण भी मनोहर हो जाता है। इसका नाम लाक्षादि तेल है।

ज्वरातिसार

ज्वर के साथ अतीसार अर्थात् दस्त पतला होना, अथवा अतीसार के साथ ज्वर का होना ज्वरातिसार रोग कहा जाता है। ज्वर में पित्त का अत्यन्त प्रकोप होने पर ज्वरातिसार होने की सम्भावना रहती है। अथवा ज्वर के समय कुपथ्य करने, या पित्तकारक भोजन करने, या दूषित जल पान और दूषित वायु सेवन करने, या बहुत तेज़ विरेचन लेने आदि कारणों से यह रोग उत्पन्न होता है। इसकी चिकित्सा निम्न-लिखित है :—

ज्वरातिसार का लक्षण आयुर्वेद में यह बतलाया है कि ज्वर और अतीसार के जो भिन्न-भिन्न लक्षण वर्णन किए गए हैं, उन दोनों के लक्षणों का एक स्थान में होना ही ज्वरातिसार रोग कहा जाता है। इस लक्षण के अनुसार इस रोग की चिकित्सा भी दोनों के अनुसार करनी चाहिए। ऐसा समझना भूल है। क्योंकि ज्वर और अतीसार की चिकित्सा आपस में एक दूसरे के विपरीत है। ज्वर की सभी औषधियाँ प्रायः विरेचक (दस्तावर) होती हैं और अतीसार की सम्पूर्ण औष-धियाँ धारक (रोकने या क़ब्ज़ करने वाली) होती हैं। इसलिए ज्वरातिसार में ज्वर की औषधि करने से अतीसार बढ़ जाता है और अतीसार शान्त करने के लिए उसकी औषधि देने से ज्वर बढ़ जाता है। इसलिए ज्वरातिसार में ज्वर व अतीसार दोनों रोगों की मिली हुई चिकित्सा करने

से कोई लाभ नहीं होता। इसकी जो विशेष चिकित्सा है उसी के अनुसार क्रिया करना योग्य है। अर्थात् ज्वरातिसार में साधारण, मृदु, ज्वरघ्न और साधारण मृदु अतीसार-नाशक औषधियों का सेवन करना चाहिए।

इसमें दस्तों के आरम्भ होते ही उनको बन्द करना अच्छा नहीं है। क्योंकि कोष्ठ में सञ्चित मल के निकल जाने से फ़ायदा होता है। किन्तु बहुत अधिक दस्तों के होने से अनिष्ट होने की सम्भावना हो तो जहाँ तक हो सके उन्हें शीघ्र बन्द कर देना अच्छा है। बालक के बलवान् होने पर साधारण लङ्घन द्वारा ही ज्वर और अतीसार दोनों शान्त हो जाते हैं। परन्तु दुर्बल बालक के लिए लङ्घन कराना हानिकारक होता है। उसको बहुत हल्का और स्वास्थ्यकारक भोजन देना आवश्यक है। इस रोग की प्रथम अवस्था में पाचक और अग्नि बढ़ाने वाले पाचनादि योगों का प्रयोग करना चाहिए। इससे शान्ति न होने पर पूर्वोक्त ज्वर-प्रकरण में लिखी हुई धारक (रोकने वाली) औषधियों की व्यवस्था करनी चाहिए। इस रोग की विशेष औषधियाँ नीचे लिखी जाती हैं :—

१—काकड़ासिङ्गी, अतीस, सोंठ, धाय के फूल, बेलगिरी, नेत्रबाला, नागरमोथा, आम की गुठली—इन सब औषधियों को समभाग ले चूर्ण कर दो रत्ती शहद के साथ बालकों को चटाने से ज्वर, अतीसार, ग्रहणी रोग, वमन, रक्तस्राव,

कास, श्वास आदि शान्त होते हैं। इसका नाम कर्कटादि चूर्ण है।

२—लोध, इन्द्रजौ, धनिया, आँवला, नागरमोथा, नेत्र-बाला—इनको समभाग ले चूर्ण कर दो रत्ती प्रमाण शहद के साथ चटाने से बालकों का ज्वरातिसार रोग बहुत जल्द दूर होता है।

३—अतीस, इन्द्रजौ, धनिया, धाय के फूल, बेलगिरी, लोध और नेत्रबाला बराबर-बराबर लेकर पाँच-पाँच माशे की मात्रा बना ले। एक मात्रा एक छटाँक जल में पका कर चौथाई रहने पर छान ले। इस क्वाथ में शहद मिला कर दोनों समय पिलाने से बालकों का ज्वरातिसार और संग्रहणी रोग दूर होता है।

४—धाय के फूल, बेलगिरी, धनिया, लोध, इन्द्रजौ, नेत्रबाला—प्रत्येक बराबर-बराबर ले चूर्ण कर दो-दो रत्ती शहद के साथ सेवन कराने से बालकों का ज्वरातिसार और वमन रोग दूर होते हैं। इसका नाम धातक्यादि चूर्ण है।

५—हल्दी, देवदारु, चीड़ की लकड़ी, छोटी कटेली, गज पीपल, पिठवन, सौंफ—इनके चूर्ण को शहद और घी के साथ मिला कर सेवन कराने से बालकों की अग्नि बढ़ती है, तथा ज्वरातिसार, पाण्डु और कामला रोग दूर होते हैं।

इनके सिवाय पूर्वोक्त चातुर्भद्रिक चूर्ण भी बालकों के ज्वरातिसार में बहुत लाभ पहुँचाता है।

अतीसार

गुदा-मार्ग से मलमिश्रित अत्यन्त द्रव पदार्थ के अधिक रूप से निकलने को अतीसार रोग कहते हैं।

घृत व तेल में पकी हुई चीज़ों के अधिक खाने से; अति-रूक्ष (चने आदि) अत्यन्त गरम या शीतल भोजन करने से; भोजन की अजीर्णावस्था में फिर भोजन कर लेने से; दूषित, दुर्गन्धित, वेस्वाद और बालू, कीचड़युक्त जल पीने से; कच्चे, सड़े-गले फल आदि या विषैले पदार्थों के खाने से; अधिक जल-क्रीड़ा या वेगों के रोकने से यह रोग उत्पन्न होता है। पेट में कीड़ों के होने, शोक करने, तेज़ धूप में घूमने, बहुत शीत लगने, ऋतु (मौसम) के बदलने के समय ठण्ढ और गर्मी के कारण भी अतीसार हो जाता है। इसके सिवाय अत्यन्त मैले पात्र में भोजन पका कर भोजन करने से तथा माता के आहार-दोष से भी इस रोग का आक्रमण होता है। अतीसार कभी-कभी विसूचिका या आमाशय-जन्य रोगों के आरम्भिक लक्षणों के रूप में अथवा अन्य किसी रोग के उपद्रव के रूप में भी प्रकट हो सकता है। गाँव या मुहल्ले में हैज़े के प्रकोप के समय यदि अतीसार होवे तो मूर्ख वैद्य द्वारा चिकित्सा कराना हानि-कारक होता है। क्योंकि मूर्ख चिकित्सक गाँव मे हैज़े को देख कर अतीसार होने पर हैज़ा समझ कर उसकी चिकित्सा करेगा, जिससे बहुत हानि होने की सम्भावना रहती है।

लक्षण—इस रोग के उत्पन्न होने से पूर्व हृदय-पार्श्व, नाभि, उदर और कुक्षि-स्थानों में वेदना होती है, शरीर ढीला आलस्ययुक्त रहता है, क़ब्ज़ के साथ अपानवायु नहीं खुलता और पेट में अफरा रहता है। अतीसार के लक्षणों को हम प्रधान रूप से दो भागों में बाँट सकते हैं। पहला आम वा अपक्व अतीसार और दूसरा पक्व अतीसार। इन दो प्रकार के लक्षणों की चिकित्सा भी भिन्न-भिन्न होती है। आम या अपक्व अतीसार में मल अत्यन्त दुर्गन्धित और पिच्छिल (लुआबदार) होने से जल में डालने से डूब जाता है। पक्व अतीसार में मल इसके विपरीत लक्षणों वाला होता है। वह अत्यन्त हलका होने से पानी में नहीं डूबता। आमातिसार को दस्त रोकने वाली औषधियों से बन्द करने पर संग्रहणी, अर्श, शोथ, तिल्ली, गुल्म और प्रमेह आदि रोग उत्पन्न होने का डर रहता है। इसलिए आमातिसार की अवस्था में पाचक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। किन्तु अत्यन्त छोटा या कमज़ोर बालक होने पर अथवा बहुत अधिक प्रमाण में दस्त होने पर रोकने वाली औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि ऐसी दशा में पाचक औषधियों का प्रयोग करने और उससे अधिक दस्त होने से कमज़ोरी के कारण हानि होने की सम्भावना रहती है।

चिकित्सा—आमातिसार में पाचक (दोषों को पकाने वाली) और पक्वातिसार में धारक औषधि देनी चाहिए। किन्तु

एकबारगी बन्द करने वाली औषधि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। थोड़ा-थोड़ा करके मृदु (साधारण) धारक औषधि देकर प्रयोगपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिए। धीरे-धीरे देर में बन्द करने से कोई हानि हो तो एकबारगी भी बन्द कर सकते हैं। इस रोग में लाभदायक प्रयोग नीचे लिखे जाते हैं:—

१—धनिया, बेल की गिरी, नेत्रबाला, नागरमोथा, सोंठ—इनका मात्रापूर्वक क्वाथ बना कर दोनों समय पिलाने से बालक को भूख लगती है, दोषों का पाक होकर पीड़ा नष्ट होती है, तथा धीरे-धीरे दस्त भी बन्द हो जाते हैं। यदि आमातिसार में पित्त की अधिकता हो तो इस क्वाथ में से सोंठ निकाल कर बाक़ी चार औषधियों का क्वाथ बनाना चाहिए।

२—सोंठ का चूर्ण कर थोड़ा घी में भून कर गोला-सा बना ले। इसे एरण्ड के पत्तों में अच्छी तरह लपेट कर बाहर से मिट्टी का डेढ़ अङ्गुल मोटा लेप करके भूभल (राख मिली हुई आग) में पकावे। जब मिट्टी पक कर लाल हो जाय, तो निकाल कर चूर्ण को पृथक् कर ले। इसे प्रातःकाल समान भाग मिश्री मिला कर योग्य मात्रा में सेवन कराने से आमातिसार सम्बन्धी सम्पूर्ण व्याधियाँ और कुक्षिशूल, विबन्ध, अफरा, आमशूल आदि रोग नष्ट होते हैं। इसका नाम शुण्ठीपुट पाक है।

३—बालक की मात्रानुसार नागरमोथा लेकर जौकुट

करके अठगुने दूध में डाले। उसमें दूध से चौगुना पानी मिला कर पकावे। इसे क्षीरावशेष कर बालक को पिलाने से आमदोष नष्ट होता है। इसका नाम मुस्तादि क्षीरपाक है।

४—अजमोद, पीपल और वायविडङ्ग का चूर्ण गुनगुने जल के साथ दिन में तीन-चार बार मात्रापूर्वक सेवन कराने से आमातिसार शान्त होता है।

आमातिसार की चिकित्सा करने पर जब पक्वातिसार के लक्षण मिलने लगें, तब उसे निम्न-लिखित धारक औषधियों से बन्द करना चाहिए :—

१—मजीठ, धाय के फूल, लोध, अनन्तमूल—इन औषधियों का मात्रानुसार क्वाथ बना कर पिलाने से बालकों का अति भयङ्कर अतीसार नष्ट हो जाता है।

२—सोंठ, अतीस, नागरमोथा, नेत्रबाला और इन्द्रजौ का क्वाथ बना कर शहद के साथ दोनों समय पिलाने से अतीसार रोग नष्ट होता है।

३—बेल की गिरी, धाय के फूल, नेत्रबाला, लोध, गजपीपल—इनका क्वाथ अथवा चूर्ण बना कर शहद के साथ सेवन कराने से अतीसार नष्ट हो जाता है।

४—इन्द्रजौ, काकड़ासिङ्गी, हरड़ और हल्दी—प्रत्येक दो-दो तोले लेकर जौकुट करके दस मात्रा बना ले। सायङ्काल एक छटाँक पानी में एक मात्रा भिगो कर प्रातः हाथ से मल कर छान ले। इसको तीन बार चार-चार माशे मिश्री

मिला कर पिलावे। इसी प्रकार सुबह का भिगोया शाम को पिलावे, इससे बालकों का अतीसार-रोग नष्ट होता है।

५—धान की खील, मिश्री और मुलैठी का चूर्ण शहद के साथ चटा कर ऊपर से मिश्री मिला, चावलों का धोवन पिलाने से अतीसार और पेचिश का रोग नष्ट होता है।

६—अनार की छाल, आम की गुठली, कमलगट्टा, और श्याम कमल का चूर्ण शहद और चावलों के जल के साथ पिलाने से अतीसार नष्ट होता है।

७—छोटी इलायची का दाना और लौंग एक-एक माशे, तज चार माशे, सेलखड़ी एक तोला, मिश्री दो तोला—सबका चूर्ण करके दिन में चार बार पानी या माता के दूध में घोल कर पिलाने से अतीसार और प्रवाहिका रोग नष्ट होते हैं।

८—अतीस, आम की गुठली, धाय के फूल, बेलगिरी, मोचरस और लोध का चूर्ण शहद के साथ चटाने से भयङ्कर अतीसार नष्ट होता है।

९—अफीम, कमलगट्टा, केशर, गाँजा और जावित्री तीन-तीन माशे, पुराना गुड़ ढाई तोले—सबको कूट किञ्चित् जल में घोट कर मूँग के बराबर गोली बना ले। माता के दूध या जल के साथ घोल कर दिन में तीन-चार बार पिलाने से अतीसार रोग अवश्य नष्ट होता है। इसका नाम स्तम्भक वटी है।

१०—शुद्ध सिंगरफ, अफ़ीम, नागरमोथा, इन्द्रजौ, जायफल और कपूर—इनको समान भाग में लेकर जल के साथ मर्दन करके एक रत्ती की गोली बना ले। इसको शहद या दूध अथवा जल के साथ घोल कर दिन में दो बार देने से अतीसार और ग्रहणी रोग नष्ट होते हैं। कोई-कोई वैद्य इसमें एक भाग सुहागे की खील भी मिला देते हैं।

११—अफ़ीम और पिण्डखजूर को समान भाग में लेकर जल के साथ मर्दन कर आधी रत्ती की गोली बना ले। इसको दिन में दो बार माता के दूध के साथ घोल कर पिलाने से भयङ्कर अतीसार नष्ट होता है

रक्तातिसार

पित्त-सम्बन्धी अतीसार के होने पर अथवा अतीसार होने की आरम्भिक दशा में अधिक पित्तकारक पदार्थों के खाने से रक्तातिसार रोग उत्पन्न होता है। इसमें दस्तों के साथ अधिक रक्त निकलता है अथवा केवल रक्त के ही दस्त होते हैं। यह रोग अत्यन्त कष्टसाध्य है। नीचे लिखे प्रयोग इसमें बहुत लाभदायक सिद्ध होते हैं :—

१—मिश्री, शहद और नेत्रबाला का चूर्ण चावलों के धोवन में घोल कर पिलाने से बालकों का रक्तातिसार नष्ट होता है।

२—कमल-केशर, धाय के फूल; मजीठ, मोचरस छः छः माशे, मिश्री दो तोले—सबको अधकुट करके पाव भर पानी

में पकावे। आधा जल अवशेष रहने पर मिश्री डाल नीचे उतार कर छान ले। शीतल करके दिन में तीन-चार बार पिलाने से रक्तातिसार नष्ट होता है।

३—बकरी का दूध और जामुन की छाल का रस समान भाग में मिला कर पिलाने से रक्तातिसार बन्द होता है।

४—बेलगिरी, इन्द्रजौ, नेत्रबाला, मोचरस, नागरमोथा—इन सब चीज़ों को समभाग में मिला कर दो तोला ले। एक पाव बकरी का दूध और एक सेर जल लेकर सबको एकत्र कर पकावे। जब दूध-मात्र अवशेष रह जाय, तब उतार ले और छान कर थोड़ा-थोड़ा करके दिन में तीन-चार बार पिलावे। इससे रक्तातिसार रोग शान्त हो जाता है और ग्रहणी रोग में भी लाभ पहुँचता है।

ग्रहणी

अतीसार रोग में पथ्यपूर्वक न चलने, और अतीसार के शान्त हो जाने पर अग्नि की कमज़ोरी में किसी प्रकार का कुपथ्य करने से तथा पाचकाग्नि के अधिक दुर्बल हो जाने से ग्रहणी नामक छठी पित्तधरा कला में विकृति आ जाती है। या बिना अतीसार के भी अधिक दिन कुपथ्य करने और गुरु, स्निग्ध, शीतल पदार्थों से ग्रहणी में कमज़ोरी आ जाती है। ग्रहणी में कमज़ोरी आ जाने से अग्निमान्द्य आदि कारणों से दोष कुपित होकर ग्रहणी को और भी अधिक दूषित कर देते हैं। ऐसी अवस्था में कभी अपक्व भोजन

बार-बार गुदा-मार्ग से निकलता है, कभी मल बँध कर आने लगता है, कभी पतला और कभी गाढ़ा, दुर्गन्धित मल निकलता है। परन्तु सभी अवस्थाओं में पेट में वेदना होती रहती है। ग्रहणी नामक कला अर्थात् पाकाशय में दोष होने से यह रोग उत्पन्न होता है, इसलिए इसे ग्रहणी रोग कहते हैं। इस रोग की चिकित्सा-विधि नीचे लिखी जाती है।

१—जीरा, अजमोद, सोंठ, मिर्च, पीपल, कुड़े की छाल—इनका समभाग में चूर्ण बना कर दो रत्ती प्रमाण में शहद के साथ दिन में तीन बार चटाने से बालकों की ग्रहणी-पीड़ा शान्त होती है।

२—भाँग, सोंठ, पीपल—इनका समभाग में चूर्ण बना कर दो रत्ती शहद के साथ चटाने से ग्रहणी रोग नष्ट होता है और अग्नि दीप्त होती है।

३—अजमोद, सोंठ, पीपल, बेलगिरी, नागरमोथा—सबका समभाग में चूर्ण बना कर तीन रत्ती शहद के साथ चटाने से ग्रहणी रोग नष्ट होता है।

४—पथ्यपूर्वक रहते हुए प्रतिदिन सोंठ और बेलगिरी के चूर्ण को पुराने गुड़ के साथ खाने से ग्रहणी रोग शान्त होता है।

५—अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी और कुड़े की छाल का चूर्ण बना कर शहद के साथ चटाने से ग्रहणी रोग शान्त होता है।

६—मूली के बीजों का चूर्ण शहद के साथ दिन में तीन-चार बार चटाने से बालकों की ग्रहणी, आँव, पेचिश और आँतों की पीड़ा शीघ्र ही शान्त हो जाती है।

७—कुड़े की जड़ की छाल आठ तोला एक सेर जल में पकावे। पाव भर अवशेष रहने पर उतार-छान के फिर दूसरे पात्र में पकावे। जब क्वाथ पकते-पकते गाढ़ा हो जाय तब उसमें अतीस, आक की छाल, सफ़ेद जीरा, बेलगिरी, आम की गुठली, सौंफ, धाय के फूल, नागरमोथा, जायफल—प्रत्येक तीन-तीन माशे बारीक चूर्ण करके डाल दे। सबको मिला कर चटाने से ग्रहणी, आँव की पीड़ा और रक्तातिसार रोग नष्ट होते हैं। इसका नाम बाल-कुटजावलेह है।

८—अफीम छः माशे और जायफल, जावित्री, बड़-वृक्ष की कोमल जटा, मोचरस, लौंग और शुद्ध सिंगरफ़—एक-एक तोला ले। इनको पीस कर और कपड़छन करके चूर्ण बना ले। फिर एक छटाँक पोस्त का छिलका कुचल कर आध सेर पानी में पकावे। ढाई तोला रहने पर उतार कर छान ले। इस काढ़े में पूर्वोक्त चूर्ण को अच्छी तरह खरल करे। जब गोली बनाने के योग्य हो जाय तो मूँग के बराबर गोली बाँध कर छाया में सुखा ले। इसमें से दिन-रात में तीन-चार बार एक मात्रा मिश्री के शरबत अथवा चावल के धोवन के साथ सेवन कराने से बालकों की ग्रहणी, आँव और पेचिश में बहुत लाभ पहुँचता है।

९—कच्ची हींगतलाव और अफ़ीम दोनों छः छः माशे; सुहागे की खील, पपड़िया कत्था, छोटी इलायची का दाना एक-एक तोला, सोंठ दो तोले ले। हींग और अफीम को छोड़ कर सबको पीस कर और कपड़छन कर चूर्ण बना ले। फिर हींग और अफीम मिला कर जल के साथ खरल करके मूँग के बराबर गोली बना, छाया में सुखा ले। छोटे बच्चों को एक-एक गोली सुबह-शाम माता के दूध में घोल कर पिलावे। पाँच वर्ष से अधिक अवस्था वाले बच्चों को दो-दो गोली खिलावे। इन गोलियों से अनेक प्रकार के हरे-पीले दस्त, आँव, ग्रहणी आदि रोग दूर होते हैं। इसका नाम ग्रहणी-गुटिका है।

पूर्वोक्त योगों के सिवाय ग्रहणी में अतीसार की औषधियाँ, कपूर-रस आदि देने से भी बहुत लाभ होता है।

सर्दी की खाँसी

सामान्य खाँसी वास्तव में कोई विशेष रोग नहीं है—यह एक लक्षण-मात्र है। साधारण खाँसी आमतौर से अपने आप ही शान्त हो जाती है। इसमें विशेष चिकित्सा की आवश्यकता नहीं। प्रत्येक घर में स्त्रियाँ इसकी साधारण चिकित्सा जानती हैं। अनेक बार बालक को गरम कपड़े ओढ़ाने या पहिनाए रखने से बिना किसी प्रकार की औषधि के खाँसी अच्छी हो जाती है।

लक्षण—खाँसी सामान्य चिकित्सा से अच्छी न होने पर

धीरे-धीरे बढ़ जाती है। इस विषय में विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। कठिन रूप में खाँसी के आरम्भ होने पर पहले दो-एक दिन बालक को सर्दी होती है। उसकी प्रकृति (दशा) को देखने से ऐसा बोध होता है कि उसे शीघ्र ही आराम हो जायगा। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। सर्दी धीरे-धीरे बढ़ने लगती है और उससे बालक को कष्ट होता है। बालक की त्वचा खुश्क, गर्म और श्वास की गति तेज़ हो जाती है। इस समय दूध पीने वाला बालक दूध पीना छोड़ देता है। रात्रि के समय उसके शरीर का ताप (गर्मी) बढ़ जाता है, श्वास सरल और तेज़ हो जाता है और कण्ठ में से शाँ-शाँ शब्द सुनाई देता है। इसके कारण बालक बेचैन हो जाता है। अधिक प्यास और निद्रा-नाश उसकी बेचैनी को और भी बढ़ा देते हैं। प्रातःकाल बालक को थोड़ी नींद आती है, किन्तु कुछ देर बाद ज़ोर की खाँसी आरम्भ होकर उसकी नींद को बिगाड़ देती है।

कठिन और बढ़ी हुई खाँसी की दशा में किसी-किसी को बहुत ज़ोर का ज्वर हो जाता है। इसके कारण बालक का मुख-मण्डल लाल हो जाता है। सूखी और दुःखदाई खाँसी, नथुनों का फूलना, श्वास लेने में कष्ट, और आँखों का उज्ज्वल वर्ण—इन लक्षणों को देखने से ज्ञात होता है कि रोग कठिन और महा कठिन होता चला जाता है। इस समय बालक को बार-बार मूत्र-स्राव होता है, क़ब्ज़ रहता है, जीभ

का पीछे का भाग मैला हो जाता है। इस प्रकार जितना समय व्यतीत होता जाता है उतना ही रोगी का मुख भारी और मलिन दिखाई देता है। मुख का वर्ण मटमैला-सा हो जाता है। बालक को बेचैनी अधिक होने पर कभी-कभी उसको नींद की झपकी सी लगती है। पाँच-छः दिन के भीतर इन लक्षणों के शान्त न होने से बालक की सङ्कटावस्था समझनी चाहिए। वक्षोगह्वर (छाती, फेफड़े, हृदय आदि) का शोथ अत्यन्त बढ़ जाने पर बालक को कभी-कभी वमन और आक्षेप होने लगते हैं।

इस देश में इस रोग का फल प्रायः अच्छा नहीं होता। योग्य चिकित्सा करने पर अनेक समय आरोग्य लाभ हो जाता है। किन्तु अनेक समय यह पीड़ा निमोनिया रोग में परिणत हो जाती है। उसमें दोनों फेफड़ों के ग्रस्त हो जाने से विपत्ति की सम्भावना रहती है। ऐसे समय बालक के शारीरिक ताप का विशेष ध्यान रखना चाहिए। शारीरिक ताप १०४ या १०५ डिग्री तक प्रतिदिन बढ़ कर फिर साधारण दशा में आ जाय तो उसे विषम उद्वेग (विकृति) का कारण समझना चाहिए। ऐसी दशा में अनेक लोग इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि यह 'ब्रोन्काइट्स' की बीमारी है या निमोनिया की। इसलिए इस भ्रम के निवारणार्थ इन दोनों के पृथक्-पृथक् लक्षण नीचे लिखे जाते हैं, जिससे रोग का ठीक-ठीक निर्णय किया जा सके :—

निमोनिया	ब्रोन्काइटस
१—शारीरिक ताप १०३ डिग्री से १०५ पर्यन्त रहता है।	१—शरीरिक ताप १०२ डिग्री से अधिक प्रायः नहीं होता।
२—त्वचा सर्वदा उष्ण और सूखी हुई रहती है।	२—त्वचा प्रायः गीली रहती है।
३—जीभ और नीचे का होंठ साफ़ तथा लाल रङ्ग के रहते हैं।	३—जीभ और होंठ स्वाभाविक रूप में दिखाई पड़ते हैं।
४—खाँसी सूखी और कठिन रूप में होती है।	४—खाँसी तर और मन्दगति की होती है।
५—श्वास कष्ट-साध्य और तेज़ चलता है। किन्तु उसमें 'घड़-घड़' या 'शाँ-शाँ' शब्द नहीं सुनाई देता।	५—श्वास में आद्योपान्त 'शाँ-शाँ' या 'घड़-घड़' शब्द सुनाई देता है।

चिकित्सा—बालक के वक्षोगह्वर के रोग-ग्रस्त होने का ठीक पता लगने पर उसको फ़लालैन से लपेट कर सुला देना चाहिए। इसके बाद वमन करने के लिए एक मात्रा 'एपिपाक' की देनी चाहिए। छाती के रोग-ग्रस्त अंश के सामने और पीछे की तरफ़ गरम-गरम भूसी (चोकर) की पुल्टिस से सेंक करना चाहिए।

यदि बालक का श्वास-कष्ट बढ़ जाय, उसे सूखी खाँसी उठती हो, और साथ में तेज़ ज्वर भी हो, तो भूसी के स्थान में सरसों और मैदा की पुल्टिस बाँधनी चाहिए। परन्तु

किसी भी दशा में बिलस्टर या मस्टर्ड (राई) का प्रयोग नहीं करना चाहिए। बालक को क़ब्ज़ होने पर एक मात्रा शुद्ध एरण्ड-तेल देना चाहिए, अथवा अन्य किसी योग्य औषधि का प्रयोग करना चाहिए। बहुत सी बार इस रोग में अतीसार होता दिखाई देता है। दस्तों का होना इस दशा में अत्यन्त कुलक्षण है। ऐसी दशा में बालक को शीघ्र ही किसी योग्य चिकित्सक को दिखलाना आवश्यक है।

इस रोग की दशा में बालक के शयन करने का मकान जहाँ तक हो सके साफ़ रहे, और उसमें शुद्ध वायु का आवागमन अच्छी तरह हो सके। मकान के भीतर सदैव एक सी गर्मी रहे, इस विषय में विशेष दृष्टि रखनी चाहिए। इस समय रोग की दशा में गरम वाष्प (भाप) के सूँघने से विशेष उपकार होता हुआ देखा गया है। दाँत निकलने की दशा में यदि उनके कारण इस रोग की उत्पत्ति समझी जाय और आवश्यकता हो तो मसूड़ों को चिरवा देना चाहिए।

पसुली (डब्बा)

इस रोग में श्वास के साथ पसुलियाँ फूल कर उठती हैं और उनके नीचे गढ़ा सा होता दिखाई देता है। इसलिए इसे पसुली-रोग, या डब्बा, टसका, हाफा आदि कहते हैं। यह जन्म से लेकर ५-७ वर्ष तक के बालक को होता है। कभी-कभी पूरी चिकित्सा न होने से इससे अधिक अवस्था में भी हो जाया करता है। परन्तु विशेषतः सूतिकागृह में ही

यह उत्पन्न होता है। उस समय चिकित्सा करने से यदि यह जड़ से अच्छा न हो तो फिर चाहे जिस समय सर्दी-गर्मी पाकर प्रकट हो जाता है। इसमें पसुलियों के अन्दर कफ जम जाता है, इस कारण श्वास लेने से उनमें खिंचाव होता है और पेट में गढ़ा पड़ जाता है।

कारण—प्रसव-स्थान सौरी) में शुद्ध वायु का आवागमन अच्छी तरह न होने से सौरि-गृह के अत्यन्त सङ्कीर्ण (तङ्ग) और अन्धकारयुक्त होने से; बालक के कपड़े और ओढ़ने-बिछाने के वस्त्रों के अपवित्र रहने से; नाल काटने के दोष से, और नाल काटने के बाद उसको सुखाने के लिए यथोचित प्रबन्ध न करने से; बालक का शरीर अस्वच्छ या गन्दा रहने से; बालकों को खिलाने-पिलाने के दोष से, अर्थात् दूध पिलाने वाली की असावधानता के कारण थोड़ी-थोड़ी देर में दूध पिलाने से, या स्वयं-गरिष्ठ भोजन करने से; बच्चे के शरीर को अधिक सर्दी या गर्मी लगने से, पैदा होने के बाद बच्चे का पेट साफ़ न होने से, पुरुष-प्रसङ्ग के पीछे बालक को दूध पिलाने से (क्योंकि मैथुन करने के बाद दूध में गर्मी रहती है), और माता के अधिक पुरुष-प्रसङ्ग करने से यह रोग उत्पन्न होता है।

इसके दो भेद होते हैं। एक गर्मी से उत्पन्न और दूसरा सर्दी से। इनमें गर्मी से उत्पन्न होने पर विशेष डर नहीं रहता। किन्तु सर्दी वाले में विशेष डर रहता है। इसमें कभी बालक

को दस्त आने लगते हैं और कभी क़ब्ज़ हो जाता है। क़ब्ज़ वाले बालक को प्रायः मूत्र भी नहीं उतरता।

लक्षण—इसमें नासिका सूख जाती है अर्थात् उसमें से पानी निकलना बन्द हो जाता है। पेट भारी और दबाने में कठिन लगता है। श्वास की गति तेज़ हो जाती है और इकहरा श्वास सा चलता है। इसके साथ किसी को इकहरी खाँसी भी रहती है। बालक प्रायः बेचैन और बेहोश रहता है। साथ में कुछ कराहने की आवाज़ करता है। गले में कभी कफ बोलता सुनाई देता है और कभी नहीं। ज्वर किसी दशा में अधिक और किसी दशा में बहुत कम रहता है। बालक प्रायः गोद में बैठाने से आराम पाता है। इसमें पेशाब के न होने से बालक ऐंठता है और हाथ-पैरों को छटपटाता है। दूध पीने वाला बालक दूध पीना छोड़ देता है। वैद्य-विलास ग्रन्थ में इसको उत्फुल्लिका नामक रोग माना है। उसमें इसके साधारण लक्षण भी इस प्रकार लिखे हैं :—

आध्मान वात सम्फुल्लो दक्ष कुक्षिः शिशोर्भवेत्।
उत्फुल्लिका सा विख्याता श्वासश्वयसुसंकुला॥

अर्थात्—"उत्फुल्लिका रोग में पेट में क़ब्ज़ या अन्य कारणों से अफरा होकर वायु की विकृति से श्वास लेते समय बालक की दक्षिण कुक्षि फूलती हुई दिखाई देती है। श्वास का वेग तेज़ होता है और छाती तथा मुख में शोथ

हो जाता है।" इसी तरह योग-सुधानिधि में भी इसके लक्षण लिखे हुए हैं :—

घनाध्मानं निरोधत्वं श्वास कासादि सम्भवः।
उत्फुल्ल कुक्षिर्भवति घन क्षीरस्य सेवनात्॥
उत्फुल्लिका सा विज्ञेया बालानामसुहारिणी।

वैद्य-विलास ग्रन्थ में इसकी चिकित्सा इस प्रकार लिखी है कि पहले बच्चे की पसुलियों के पास पेट में जोंक लगवा कर खून निकलवा दे। फिर उसकी माता को, बाँझ-ककोड़ा, सोंठ, नागरमोथा, शीतल चीनी और अतीस का चूर्ण बना कर खिलावे और बालक को दूध पिलावे। इससे दूध की शुद्धि होती है। अथवा किसी चतुर वैद्य या डॉक्टर से बालक के पेट में गर्म लोहे की सलाई से दाग़ लगवावे। ऐसा न होने पर खाली पेट को सेंके। बेल की जड़ की छाल, नागरमोथा, चित्रक, त्रिफला, दोनों कटेली—इनका मात्रापूर्वक क्वाथ बना कर उसमें पुराना गुड़ मिला कर बालक को पिलावे। अथवा पीपल, पीपरामूल, सोंठ, त्रायमाणा, दारुहल्दी, हरड़, गजपीपल, भारङ्गी, लौंग और सुहागा—इनको घिस कर प्रातःकाल रोज़ पिलाता रहे। अथवा नेत्र-बाला, हरड़, सेंधानमक एक भाग और सुहागे की खील दो भाग लेकर सबको ग्वारपाठे के रस में घोट कर दो रत्ती की गोली बना कर प्रातःकाल पानी में घिस कर पिलावे।

इस रोग में गर्मी की अपेक्षा सर्दी से उत्पन्न होने पर विशेष डर रहता है, इसके निवारण के लिए निम्न-लिखित उपाय करने चाहिएँ :—

१—कबीला, चूना, शुद्ध नीलाथोथा, बड़ी हरड़, बहेड़े का छिलका, पपड़िया कत्था—इन सबको बराबर ले कूट-छान कर जल के साथ गोली बाँध ले। बालक को रोग होने पर घी में मिला कर उसकी पसुली पर लेप कर दे।

२—बँगला पान का रस निचोड़ कर उसे गरम करे। फिर एक चावल भर असली कस्तूरी उसमें घोल कर बालक को पिला दे। इस प्रकार दिन में तीन-चार बार पिलाने से पसली का रोग नष्ट हो जाता है।

३—केंचुवा, पीलू के बीज और लौंग—सबको समान भाग पानी में घोट कर बाजरे के बराबर गोली बना ले। दिन में तीन-चार गोली जल या माता के दूध के साथ देनी चाहिएँ।

४—गुलचीनी का फल (पका हुआ), जो तलवार के आकार का होता है, ले। उसके भीतर पतला सफेद रङ्ग का बीज रहता है। तीन मास की अवस्था वाले बालक को आधा बीज, और आधी काली मिर्च, छः मास के बालक को एक बीज और एक काली मिर्च; तथा एक वर्ष के उपरान्त दो बीज तथा दो काली मिर्च पीस कर माता के दूध में घोल कर दिन-रात में दो-तीन बार पिलाने से पसुली-रोग शीघ्र ही आराम होता है। यह प्रयोग अत्युत्तम है।

५—करञ्ज का एक बीज और एक रत्ती शुद्ध नीलाथोथा जल के साथ घोट कर सरसों के बराबर गोली बना ले। दिन में तीन-चार बार माता के दूध के साथ घोल कर पिलाने से पसुली-रोग दूर होता है।

६—पसुली पर एरण्ड-तेल की मालिश करके अनन्तर बकायन के पत्तों का गरम सेंक करने से पसुली चलना बन्द हो जाता है।

७—प्याज के रस में मुसब्बर घोल कर गुनगुना करके तीन-चार बार पसुलियों पर लेप करने से उसका चलना बन्द हो जाता है।

८—तेलिया, सङ्खिया, जमालगोटे की मिङ्गी—समान भाग में थूहर के दूध में पीस कर नाभि पर लेप करने से पसुली चलना बन्द हो जाता है।

९—जन्म के समय जब बालक की नाल काटी जाती है, उस समय यदि नाल काटने के बाद एक चावल भर कस्तूरी बारीक पीस कर उस नाल में लगा दी जाय तो यह रोग नहीं होने पाता।

१०—मकरध्वज और सञ्जीवनी वटी को पान के रस में गरम करके दो बार पिलाने से पसुली चलना बन्द हो जाता है।

११—ओंगे की जड़ को घिस कर उसमें एक रत्ती काली-

मिर्च मिला कर फिर गरम करके पिलाने से पसुली और खाँसी में आराम होता है।

१२—मरी हुई भैंस का बहुत पुराना सींग यदि कहीं जङ्गल या गढ़े में पड़ा हुआ मिल जाय तो उसे उठा लावे। उसके भीतर से एक प्रकार का सफ़ेद मैल निकलता है, जैसा पुरानी तथा बरसात में भीगी हुई लकड़ियों में लग जाता है। उसको दो रत्ती लेकर माता के दूध में घिस कर दो-तीन बार पिलाने से यह रोग अवश्य शान्त हो जाता है।

१३—मकान या छतों के भीतर की तरफ़ कड़ियों या लकड़ियों में एक प्रकार का कीड़ा रेशम के समान एक थैली (घर) बनाता है। उसे कीड़े सहित सुखा कर उसमें से दो रत्ती माता के दूध में घोल कर दो-तीन बार पिलाने से पसली बन्द हो जाती है।

१४—ब्रह्मदण्डी के आकार के पत्तों वाली एक बूटी होती है, जो ज़मीन से दो अङ्गुल ऊँची होती है। वह ब्रह्म-दण्डी के समान सुगन्ध वाली होती है और उसके पत्ते भी वैसे ही होते हैं। उसकी जड़ को घिस कर बालक को पिलाने और थोड़ा पसुलियों तथा छाती में लेप करने से पसुली में शीघ्र ही आराम होता है। इसके सिवाय वह पेट के दर्द और गुल्म-रोग को भी तुरन्त शान्त करती है।

१५—शराब की चार-पाँच बूँद पानी में मिला बालक को तीन-चार बार पिलाने से और उसकी छाती में मालिश

करने से पसुली शान्त हो जाती है। अथवा शराब और तेल को बालक के नाख़ून और पेट में मलने से भी पसुली-रोग शान्त होता है।

१६—असली गोलोचन एक रत्ती प्रमाण में माता के दूध के साथ पीस कर दो-तीन बार बालक को पिलाने और छाती में मलने से पसुली शान्त होती है।

१७—गरम कण्डे की राख में पीले आक के पत्तों का रस डाल कर दो रत्ती मात्रा में शहद के साथ चटाने से डब्बा, कफ तथा खाँसी में बहुत लाभ होता है।

१८—नारायण चूर्ण एक माशा और आधा जमालगोटा लेकर दोनों को मिला कर गरम जल के साथ खिलाने से बालक को उलटी तथा दस्त होकर डब्बा-रोग शीघ्र शान्त हो जाता है।

१९—शुद्ध हिङ्गुल, जायफल, जावित्री और गोलोचन प्रत्येक तीन-तीन माशे, शुद्ध जमालगोटा १ तोला—सबको कागज़ी नींबू के रस में अच्छी तरह घोट कर रत्ती या दो रत्ती की गोली बना ले। इसके खिलाने से डब्बा-रोग शान्त हो जाता है।

२०—सुहागे की खील, सेंधानमक, पीपल, मिर्च, गोलोचन, उसारेरेवन और हीराहींग—इनके तीन रत्ती चूर्ण को भूभल में पके हुए डण्डाथूहर के स्वरस में मिला कर पिलाने से डब्बा-रोग तत्काल शान्त होता है।

२१—शुद्ध जमालगोटा और कालीमिर्च दोनों को बराबर लेकर अदरक के रस के साथ घोट कर एक रत्ती की गोली बना ले। इस गोली को गरम जल में घिस कर देने से डब्बा-रोग कफ, खाँसी आदि आराम होते हैं तथा पेट के कीड़े मर जाते हैं।

२२—पुटपाक से पकाए हुए थूहर के स्वरस में गोलोचन, उसारेरेवन और कस्तूरी एक रत्ती मात्रा में मिला कर पिलाने से डब्बा-रोग शान्त होता है।

२३—अडूसा, अपामार्ग, इमली का क्षार, सुहागे की खील, अतीस, हरड़—सबको घिस कर गरम जल के साथ पिलाने से डब्बा-रोग शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

२४—डब्बा की दशा में यदि पेट में बहुत अफरा होता हो तो एलुवा, सुहागा, हींग, सौंचल नमक और एरण्डक्षार—सबको बैंगन के रस में पीस कर पेट पर लेप करने से तत्काल अफरा दूर होकर रोग आराम होता है।

२५—सूखे केंचुवा को पानी में पीस कर तीन-चार बार एक-एक बूँद बालक के मुख में टपकाने से शीघ्र ही पसुली-रोग में लाभ होता है।

२६—पसुली-रोग मे सर्दी होकर गले में कफ घरघराता हो और पेट में पीड़ा होने के कारण बालक रोता और सुस्त पड़ा हो तो उसके लिए निम्न-लिखित औषधि देवे :—

वैतरा सोंठ पाव भर, पीपल छोटी आध पाव और दही

आध पाव लेकर पहले सोंठ और पीपल को बारीक पीस कर चूर्ण बना ले। उसको दही में घोट कर एक हाँडी में भर कर बन्द करके तीन कपड़मिट्टी कर दे। हाँडी के सूख जाने पर एक हाथ लम्बे, चौड़े, गहरे गढ़े में अरने उपले भर कर आँच दे। इस प्रकार उसी बन्द की हुई हाँडी को तीन बार पुट में पकावे। फिर निकाल कर भीतर की भस्म हुई औषधि को शीशी में भर कर रख ले। साधारण दशा में एक चावल भर माता के दूध के साथ दे। यदि रोग का अधिक ज़ोर हो तो औषधि के साथ एक रत्ती अदरक का रस और छः रत्ती शहद मिला कर तीन दिन तक दोनों समय बराबर देता रहे। पसुली के विशेष चलने पर चार रत्ती तुलसी का रस, एक माशा शहद और एक चावल शुण्ठी-भस्म मिला कर सेवन करावे। साथ ही निम्न-लिखित तेल का गुनगुना सेंक करे।

अदरक और लहसन का रस दो तोले, तिल का तेल एक छटाँक—तीनों को किसी बर्तन में रख कर अग्नि पर पकावे। जब रस जल जावे, उतार-छान कर शीशी में भर ले। इसका गुनगुना सेंक पसुलियों में करने से उनका चलना बन्द हो जाता है।

२७—एलुवा और शुद्ध जमालगोटा छः छः माशे लेकर एक मास के बछड़े के मूत्र के साथ लोहे के खरल में लौह-मूसली से अच्छी तरह घोंट ले। उसकी सरसों के समान

गोली बना कर दोनों समय एक-एक गोली दूध में घोल कर पिलाने से बालक का दस्त साफ़ आता है और पसुली का चलना बन्द हो जाता है। इसका नाम एलवादि वटी है। दस्त वाले पसुली-रोग में इस वटी को नहीं देना चाहिए।

२८—शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक आमलासार दो तोला, केशर एक तोला, कस्तूरी छः माशे, जायफल एक तोला, अकरकरा एक तोला, जावित्री छः माशे, गोलोचन एक तोला, लौंग एक तोला, छोटी पीपल एक तोला, सोंठ छः माशा, विजयसार एक तोला—इन सब चीजों को लेकर पहले पारे और गन्धक की कज्जली बना ले। शेष चीज़ों को भी बारीक पीस, बाद में उसमें मिला दे। फिर पान के रस में खरल कर एक रत्ती की गोली बना ले। पसुली और निमोनिया के दर्द में एक-एक गोली दिन में तीन बार विजयसार के क्वाथ में देना चाहिए। यह मात्रा बड़े मनुष्यों की है। बालकों के लिए दूध के साथ गोली का चौथाई भाग देना चाहिए। खाँसी, श्वास में शहद के साथ देना चाहिए। पसुली चलती हो, तो उसमें इस गोली को शराब में घिस कर लगाना चाहिए।

कूकर खाँसी या काली खाँसी

यह एक प्रकार का सांक्रामिक रोग है, जो बाल्यावस्था में आम तौर से देखा जाता है। इसका एक बार आक्रमण होने पर फिर दुबारा आक्रमण प्रायः नहीं होता। विलायत

में इस रोग के आक्रमण से प्रति वर्ष बहुत से बच्चों के प्राण जाते हैं। इस देश में भी इसका मारात्मक प्रभाव कुछ कम नहीं है।

तीन वर्ष की अवस्था के पहले बालकों के ऊपर इसका आक्रमण अधिक होता है। पाँच वर्ष के बाद इसका उतना आक्रमण नहीं होता। दस वर्ष के बाद इसका आक्रमण बहुत कम होता है। यह रोग बालकों की अपेक्षा बालिकाओं के ऊपर अधिक आक्रमण करता है। एक गाँव में होने पर प्रायः यह सम्पूर्ण प्रदेश में फैल जाया करता है।

लक्षण—इस रोग में पहले साधारण सर्दी लगती है और बालक की नाक और आँखों से जल गिरता है। जब वह जोर से श्वास लेता या छोड़ता है, तो उसके गले में 'शुड़-शुड़' शब्द होता है। इसके साथ ही खाँसी और साधारण ज्वर भी होता है। ये लक्षण शीघ्र ही कम पड़ जाते हैं और केवल खाँसी रह जाती है। फिर वह खाँसी और बढ़ जाती है और रात्रि के समय जोर पकड़ती है। खाँसी इस प्रकार की होती है कि मानों खाँसते समय रोगी को आक्षेप (झटका) सा होता है। अनेक समय बालक का खाँसते-खाँसते श्वास चढ़ जाता है। कभी-कभी गूदे की तरह का चिटचिटा कफ निकलता है, जिससे बालक को थोड़ी देर के लिए चैन पड़ जाता है। कूकर-खाँसी प्रायः हँसने, रोने, क्रोध करने या खाने-पीने के समय बढ़ जाती

है। इसके बाद जब वह बन्द रहती है या नहीं उठती है, उस समय बालक बिल्कुल अच्छा रहता है, मानों उसे कोई रोग ही नहीं है।

इस रोग में सबसे पहले यह देखना चाहिए कि रोगी को खाँसते समय पसीना आता है या नहीं। क्योंकि पसीना आने से रोगी किसी उपाय से अच्छा हो सकता है। परन्तु खाँसते समय कुछ भी पसीना न आने से उसका मुख नीला पड़ जाता है और कोई उपाय न किया जाय तो निस्सन्देह मृत्यु होने की सम्भावना रहती है। क्योंकि अन्त में खाँसी का जोर इतना बढ़ जाता है कि रोगी की आँख, नाक और कानों से ख़ून निकलने लगता है।

उपद्रव—इस रोग का जोर इस देश में अन्यान्य देशों की अपेक्षा कम देखा जाता है। किन्तु समय-समय पर इसके फल से अनेक उपद्रव होते देखे जाते हैं। इसमें कहीं निमोनिया, कहीं मस्तिष्क-प्रदाह, कहीं नासिका के छिद्रों से ख़ून निकलना, और कहीं अफरा, उदर-रोग (दस्त आदि) और शरीर में अत्यन्त शीतलता तथा ढीलापन आदि देखने में आता है।

चिकित्सा—इस रोग का सम्बन्ध प्रायः स्नायुओं से होता है। यदि स्नायुओं में कठोरता ज्ञात न हो तो किसी प्रकार की औषधि का सेवन न कराना ही अच्छा है। इसमें पहले एक ज्वर-मिक्स्चर जिसमें थोड़ा "वाइनम एपिकाक" पड़ा

हो, देना चाहिए। इसके बाद धीरे-धीरे अवस्थानुसार चिकित्सा करनी चाहिए। इसमें प्रायः प्रतिश्याय (ब्रोङ्काइ-ट्स) रोग की चिकित्सा उपयोगी होती है। इस खाँसी में चिकित्सा करने पर डेढ़ महीने में पूरा लाभ हो सकता है।

इस रोग में पहले रोगी के शरीर में या छाती से ऊपर के भाग में पसीना लाने की चेष्टा करे। पसीना आने से कफ ढीला पड़ जाता है और खाँसने में विशेष दुःख नहीं होता। पसीना आने के बाद निम्न-लिखित योगों का सेवन कराने से लाभ होता है:—

१—यदि दूध पीने वाले बालक को कूकर-खाँसी हो तो उसकी माता अथवा धाय को पीपल और घी का छोंक लगा कर उड़द का यूष देने से लाभ होता है।

२—मुनक्का, सोंठ और पीपल का चूर्ण उचित मात्रा में शहद और घी के साथ चटाने अथवा दूध में घोल कर पिलाने से लाभ होता है।

३—फूली हुई फिटकरी को दो रत्ती प्रमाण में लेकर एक माशा चीनी में तले-ऊपर करके फक्की लगा कर खिलावे। इसके ऊपर गरम जल पिलाने से कूकर-खाँसी में आराम होता है। इस औषधि का नाम "कास-केसरी" है।

४—कासनी, मुलैठी, काली मिर्च और सौंफ दो-दो माशे लेकर पानी के साथ सिल पर बारीक पीसे। फिर उसे ढाई तोले जल में घोल कर तोले भर तपाए हुए लोहे से

बुझा दे। इसमें एक माशा शहद मिला कर और छान कर प्रातःकाल पिला देवे। इसकी दिन-रात में एक ही मात्रा देना उचित है। इस प्रयोग से बहुत लाभ होता है।

५—थूहर के डण्डे को कोर कर (पोला कर) उसमें काली मिर्च भर दे और थूहर के टुकड़े से फिर उसे बन्द कर दे। तीन दिन तक उसे ऐसा ही रख कर फिर अग्नि से जला कर राख कर ले। इसमें से दो रत्ती प्रमाण मिश्री के साथ बालक को खिलादे और ऊपर से गुनगुना दूध पीने के लिए दे। इससे बालकों की खाँसी शीघ्र दूर हो जाती है।

साधारण खाँसी

अनेक प्रकार की ठण्ढी-गरम, खट्टी-मीठी चीजों के खाने तथा धूल व धुआँ में खेलने-बैठने आदि कारणों से बालकों को खाँसी उत्पन्न हो जाती है। उसको शान्त करने के लिए निम्न-लिखित चिकित्सा करनी चाहिए :—

१—कफ की अधिकता के कारण उत्पन्न खाँसी को शान्त करने के लिए पहले बालक को काली कोयल के एक तोला रस में सौंचल नमक एक माशा मिला कर गरम करके पिलावे। इससे वमन होगा और खाँसी शान्त हो जायगी। अथवा लहसुन को जला कर भस्म कर ले और उसमें से दो रत्ती गरम जल के साथ देवे। इससे खाँसी शीघ्र ही शान्त हो जाती है।

२—लौंग, तुलसी के पत्ते और सुहागा—इनको पीस,

गरम जल के साथ देने से बालकों का ज्वर, खाँसी, श्वास और उदर-रोग नष्ट हो जाते हैं।

३—सुहागे की खील और फूली हुई फिटकरी को पानी के साथ घोट कर स्तनों पर पतला लेप करके बालक को दूध पिलाने से दूध पीने वाले छोटे बच्चों की कठिन से कठिन खाँसी शीघ्र ही अच्छी हो जाती है।

४—धनिया और मिश्री तीन-तीन माशे चावल के धोवन में पीस ले। इसमें शहद मिला कर बालक को पिलाने से कफ ढीला होकर खाँसी और श्वास में आराम होता है।

५—नागरमोथा, अतीस, अडूसा, काकड़ासिङ्गी और पीपल—इनको तीन-तीन माशे लेकर एक छटाँक पानी में आध घण्टा भिगो कर छान ले। फिर इसमें शहद मिला कर थोड़ा-थोड़ा तीन-चार बार पिलावे। इससे बालकों की सूखी खाँसी तर हो जाती है। इससे पाँचों प्रकार की खाँसी शान्त होती हैं।

६—नागरमोथा, अतीस, काकड़ासिङ्गी, पीपल और जवासा—इनका चूर्ण बनाकर योग्य मात्रा में शहद के साथ दिन में तीन-चार बार चटाने से बालकों की सब प्रकार की खाँसी आराम होती है।

७—काकड़ासिङ्गी और मूली के बीजों का चूर्ण बना कर योग्य मात्रा में घी और शहद के साथ चटाने से बालकों की भयङ्कर खाँसी भी दूर हो जाती है।

८—सोंठ, मिर्च, पीपल, पुराना गुड़ और सेंधा नमक—इनका काढ़ा बना, छान कर दोनों समय पिलाने से बालकों की खाँसी शान्त होती है।

९—दो रत्ती छोटी कटेली के फूल, केशर और शहद में मिला कर चटाने या माता के दूध में पिलाने से बालकों की खाँसी आराम होती है।

१०—मुनक्क़ा, अडूसे की जड़ की छाल, पीपल—इनका चूर्ण शहद के साथ चटाने से बालकों की खाँसी, ज्वर, श्वास, वमन, अतीसार-रोग दूर होते हैं।

११—कटेली के स्वरस में अथवा उसके क्वाथ के साथ बहुत अल्प मात्रा में मकरध्वज मिला कर चटाने से खाँसी के साथ साधारण ज्वर भी शान्त होता है।

१२—छोटी तथा बड़ी कटेली के फल और छोटी पीपल का चूर्ण सम भाग में शहद के साथ चटाने से कफयुक्त खाँसी शान्त होती है।

१३—छोटी कटेली की जड़ ढाई तोला, मुलैठी पाँच तोला, मिश्री एक पाव ले। दोनों औषधियों को जौकुट कर आध सेर जल में पकावे। चौथाई जल बाक़ी रहने पर उतार-छान कर उसमें मिश्री की चाशनी तैयार करके मिला दे। यह अवलेह दो-तीन माशे दिन-रात में तीन-चार बार चटाने से बालकों की खाँसी अवश्य शान्त हो जाती है। इसे कष्टकारी अवलेह कहते हैं।

श्वास-रोग

इनफ्लूएन्ज़ा, निमोनिया, खाँसी आदि रोगों के अच्छे हो जाने के बाद कुपथ्य करने से अथवा कभी-कभी डब्बे की बीमारी के बिगड़ जाने से बालकों को श्वास-रोग हो जाता है। उसके लिए साधारण अवस्था में निम्न-लिखित योग काम में लाने चाहिएँ। विशेष अवस्था में वैद्य को दिखा कर चिकित्सा करानी चाहिए। किसी अन्य रोग के उपद्रव की अवस्था में उत्पन्न श्वास की चिकित्सा उसी रोग के अनुसार करनी चाहिए जिससे वह पैदा हुआ हो।

१—चित्रक की छाल, सोंठ, दन्ती की जड़ की छाल, गोखुरू—इन औषधियों का चूर्ण गुनगुने जल से सेवन करने से बालकों के श्वास, खाँसी और हिचकी-रोग शान्त होते हैं। अथवा मुनक्का, जवासा, हरड़ और पीपल—इनका सम भाग में चूर्ण बना कर योग्य मात्रा में घी और शहद के साथ चटाने से श्वास-रोग शान्त होता है।

२—भुनी हींग, काकड़ासिङ्गी, गेरू, मुलैठी, इलायची और सोंठ—इनका चूर्ण शहद में मिला कर चटाने से श्वास और हिचकी-रोग दूर होते हैं।

३—काकड़ासिङ्गी, अतीस, छोटी पीपल—प्रत्येक दो-दो माशे, नौसादर और फूला सुहागा एक-एक माशे लेकर सबको चूर्ण कर चार-चार रत्ती दिन में तीन समय मधु के

साथ चटाने से श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन और अजीर्ण-रोग दूर होते हैं।

इसके सिवाय बालकों के श्वास के लिए खाँसी-प्रकरण में बतलाई गई औषधियों का भी प्रयोग करना लाभदायक होता है।

निमोनिया (फुफ्फुस-प्रदाह)

फुफ्फुस-प्रदाह या निमोनिया नामक रोग बालकों को प्रायः होता है। यह कफ-पित्तोल्वण-सन्निपात या कर्कोटक सन्निपात के लक्षणों से बहुत-कुछ मिलता है। इस रोग की उत्पत्ति प्रायः सर्दी के लगने से होती देखी गई है। सर्दी के कारण उत्पन्न होने से इसके साथ 'ब्रोङ्काइटस' रोग भी देखा जाता है। इसलिए अनेक चिकित्सक इसको 'ब्रोङ्को-निमोनिया' या 'क्रॅप्स निमोनिया' के नाम से पुकारते हैं।

इस रोग में पहले ज्वर होता है; फिर खाँसी, छाती में दर्द, श्वास में कष्ट, नाड़ी में चञ्चलता और शरीर में अत्यन्त दुर्बलता आदि लक्षण देखने में आते हैं। शरीर अत्यन्त खुश्क रहता है और बेचैनी भी बहुत बढ़ जाती है। श्वास की गति बढ़ जाती है और रोगी एक प्रकार से हाँपने लगता है। मस्तिष्क पर इस रोग का आक्रमण होने से हिचकी के लक्षण प्रकट होते हैं। इस प्रकार के मस्तिष्क सम्बन्धी निमोनिया को अङ्गरेजी में सेरिब्रल या टाइफाइड निमोनिया कहते हैं। इसमें प्रलाप, बेचैनी, नींद की अधिकता

रहती है, नाड़ी क्षुद्र और अनियमित चलती है तथा मुख-मण्डल का वर्ण बदल जाता है। इस रोग में पेट में विकृति होने से बार-बार दस्त और मूत्र होता रहता है।

वक्षःस्थल की परीक्षा करने से 'थस्-थस्' शब्द सुनाई देता है। जब रोग अधिक बढ़ जाता है और फेफड़े ठोस होने लगते हैं, उस समय कोई शब्द नहीं सुनाई देता। फिर जब रोग अच्छा होने लगता है तो 'घड़-घड़' शब्द सुनाई देता है।

वक्षःस्थल पर अँगुली का आघात करने पर हलका शब्द होता है। परन्तु वक्षःस्थल में वेदना होने पर बड़ी साव-धानी से यह परीक्षा करनी चाहिए।

चिकित्सा—बालक के शरीर को अच्छी तरह ओढ़ाए रखना चाहिए। घर में शुद्ध वायु का सञ्चार होना आवश्यक है, परन्तु ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए जिसमें बालक के शरीर में ठण्ढ न लगे।

इस रोग की पहली अवस्था में ज्वर, सर्दी, ग्लानि, दर्द, जकड़ाहट आदि हो तो नारायण तैल में थोड़ा कड़ुवा और तारपीन का तेल मिला गरम हाथों से छाती में मालिश करे और गरम रूई से मन्द-मन्द सेंक करे। इससे खाँसी का वेग कम हो जाता है और दर्द भी दूर हो जाता है। रोगी के पास हर समय कोयलों की अँगीठी रहनी चाहिए। महालक्ष्मीविलास रस की चौथाई गोली पान के रस और शहद के साथ तीन-तीन, चार-चार घण्टे में देना चाहिए।

इसके अभाव में मृत्युञ्जय रस को अदरक के रस और शहद के साथ तीन-तीन घण्टे में देना चाहिए। पथ्य में छोटे बच्चे को माता का दूध और अन्न खाने वाले बड़े बच्चे को मुनक़्क़ा के साथ औटाया हुआ दूध देना चाहिए। इससे बालक कमज़ोर नहीं होता है। द्वितीयावस्था में जब अत्यन्त कठिन खाँसी, छाती में दर्द और रक्त-मिश्रित गाढ़ा कफ निकलना और नाड़ी की द्रुतगति आदि लक्षण हों तो महालक्ष्मीविलास रस या चन्द्रोदय, अडूसे के रस में शहद मिला कर तीन-तीन घण्टे बाद देवे। छाती में नारायण तैल की मालिश कर रूई से सेंक करे। पीने के लिए मुनक़्क़ा के साथ औटाया हुआ दूध देवे।

तृतीयावस्था में जब बार-बार सूखी खाँसी, छाती में सुई चुभने के समान पीड़ा, श्वास-कष्ट आदि लक्षण हों तो कफ को पतला करने के लिए शास्त्रोक्त चन्द्रामृत रस, पान का रस और शहद मिलाकर देवे। फिर अभ्रक और मालतीबसन्त को गुडूची का रस और शहद मिलाकर देवे। चतुर्थावस्था में जब कि श्वास-प्रश्वास में कष्ट, कफ की अधिकता, मूर्च्छा आदि कठिन उपद्रव हों, तो षड्गुण बलिजारित मल्लसिन्दूर मकरध्वज या चन्द्रोदय पान के रस और शहद के साथ देवे।

क्षय-कास

कितने ही बालकों को क्षय-कास रोग देखा जाता है। यह दो तरह का होता है—पैतृक और दोषज। माता-पिता

के इस रोग में ग्रस्त होने से उत्पन्न क्षय-कास पैतृक या प्रकृत क्षय-कास कहा जाता है। शारीरिक दोषों के विकार से उत्पन्न होने वाले को दोषज क्षय-कास कहते हैं। फुफ्फुस-प्रदाह या निमोनिया के बाद भी क्षय-कास प्रकट होता है। निमोनिया के होने पर उसकी योग्य चिकित्सा के अभाव में या उसका कुछ अंश बाक़ी रह जाने पर बाद को वह क्षय-कास के रूप में परिणत हो जाता है।

लक्षण—इसमें रोगी के शरीर में शूल, मन्द ज्वर और हाथ-पैरों में जलन होती है। शरीर में मांस तथा बल का अभाव हो जाता है। खाँसी पहले सूखी रहती है, बाद को पीब और रक्त-मिश्रित कफ निकलता है। इसके साथ अन्यान्य वातादि लक्षण भी देखने में आते हैं।

चिकित्सा—आयुर्वेद में इस रोग को असाध्य माना है। परन्तु बाल्यावस्था में इसकी चिकित्सा करने से कभी-कभी आराम भी हो जाता है। इसकी चिकित्सा निमोनिया की चतुर्थावस्था के समान करनी चाहिए। अथवा क्षय-कास सम्बन्धी योगों द्वारा, जो बड़ों के लिए व्यवहार में आते हैं, चिकित्सा करनी चाहिए। इसका एक उत्तम प्रयोग यह है :—

मालतीबसन्त और अभ्रक को अडूसे का रस और शहद मिला कर एक मात्रा सुबह देवे। भोजन करने के डेढ़ घंटे बाद ३ माशा द्राक्षासव पिलावे। दिन के ४ बजे चन्द्रामृत

रस अडूसे का रस और शहद मिला कर चटावे। और शाम को सोते समय च्यवनप्राश दूध के साथ देवे। यह एक दिन की औषधि है। इसी तरह रोज आराम होने तक औषधि देता रहे। विशेष अवस्था में वैद्य की अनुमति लेकर चिकित्सा करे।

शोष या मेरेसमस

बालक के शरीर का धीरे-धीरे क्षीण या क्षय हो जाना शोष या 'मेरेसमस' रोग कहा जाता है। खाने-पीने के द्रव्यों का ठीक रीति से परिपाक न होना और शरीर का क्रमशः दुर्बल होते जाना इस रोग का कारण है। अधिकतर यह रोग उपदंश (गर्मी), ट्यूबरकिलोसिस आदि क्षयकारी रोगों के बाद उत्पन्न होता है। किन्तु इसको प्रकृत क्षय-रोग नहीं कहा जा सकता। क्योंकि पाकादि क्रिया के बिगाड़ से शरीर में जो क्षीणता आती है, उसको 'मेरेसमस' कहा जाता है। बड़े-बड़े शहरों में खुली हवादार जगहों का अभाव होने; शुद्ध, साफ़ तथा ताजा खाने-पीने की चीजों के न मिलने; माता के दूध के अभाव या कमी आदि कारणों से यह रोग उत्पन्न होता है।

लक्षण—आहार के न पचने के कारण उत्पन्न दुर्बलता इसका प्रधान लक्षण है। पेट में पीड़ा, अल्प ज्वर, आँखें भीतर को धँसी हुई, मुख-मण्डल रक्तहीन, शारीरिक ताप स्वाभाविक की अपेक्षा अल्प, कच्चे मल के दस्त, क्षुधा की

अधिकता, भोजन करने पर वमन, पाकाशय में उत्तेजना आदि लक्षण इस रोग में प्रायः देखे जाते हैं। इसके कारण सम्पूर्ण शरीर में जल सञ्चित रहता है। मुख में घाव तथा वेडसार (एक प्रकार का व्रण) भी इसके कारण से उत्पन्न होते हैं।

चिकित्सा—इस रोग में सबसे पहले अस्वास्थ्यकारक स्थान का परित्याग करना चाहिए। यदि माता के स्तनों में दूध न रहा हो तो दूसरी धाय रख कर उसका दूध पिलाने का प्रबन्ध करना चाहिए। जिन बालकों को अपनी माता या धाय का दूध पूर्ण रूप से मिलता है, उनके ऊपर इस रोग का आक्रमण बहुत ही कम देखा जाता है। इस रोग में माता या धाय का दूध थोड़ा-थोड़ा कई बार देना चाहिए। दस्त आदि उदर-विकार हों तो 'बार्ली' को जल में पका कर उसमें थोड़ा दूध मिला कर पिलाना चाहिए। बहुत चिकित्सक लोग इस रोग में बकरी या गधी का दूध पिलाने की सम्मति देते हैं। पेट में किसी प्रकार की विकृति न होने पर अनेक बार "मेलिन्स फूड" देने से बहुत उपकार होते देखा गया है। इस रोग में तेल की जितनी मालिश की जाय, उतना ही अच्छा है। इसके लिए सरसों का तेल धूप में गरम कर बालक के शिर तथा सर्व शरीर में मालिश करनी चाहिए।

ऊपर शोष-रोग या मेरेसमस के जो लक्षण बतलाए हैं

और चिकित्सा की जो विधि लिखी गई है, वह डॉक्टरी मतानुसार है। आयुर्वेद में भी शोष-रोग का वर्णन किया गया है, जो डॉक्टरी मत से मिलता है। नीचे हम इसके लक्षण और चिकित्सा आयुर्वेदीय ग्रन्थों से देते हैं। यह चिकित्सा मेरेसमस रोग में भी लाभदायक होती है।

लक्षण—दिन में अधिक सोने, शीतल जल के अधिक पीने, या कफाधिक गुण वाली माता का दूध पीने से बालक के शरीर में कफ बढ़ कर रसवाही स्रोतों को बन्द कर देता है। इससे बालक को पहले अरुचि और ज़ुकाम होता है और फिर अल्प ज्वर तथा खाँसी प्रकट हो जाती है। ज्वर और खाँसी के सदा रहने से तथा रक्त-सञ्चार की कमी से बालक दिनोंदिन सूखने लगता है। ख़ून के अभाव से उसका मुख तथा आँखें सफेद हो जाती हैं। कफ की अधिकता से मन्दाग्नि हो जाती है और कभी-कभी बालक को कच्चे दस्त भी आने लगते हैं। पाचन शक्ति बिल्कुल कम हो जाती है। समय बीतने पर कास के अधिक बढ़ जाने पर मुख से रक्त-मिश्रित कफ निकलने लगता है। इस रोग की चिकित्सा-विधि निम्न प्रकार है :—

१—अरुचि आदि उपद्रवों को शान्त करने के लिए बालक को सेंधानमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, मजीठ, पाढ़ और पहाड़ी कदम्ब की छाल का समान भाग में चूर्ण बना कर घी और शहद के साथ मिला कर चटावे। इससे

बालक का दस्त बँध कर आवेगा तथा खाने-पीने में रुचि पैदा होगी।

२—पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक की छाल, सोंठ, अशोक, कुटकी—इनका चूर्ण बना कर शहद और घी के साथ मिला कर चटावे। अथवा छोटे सूखे बेर, धाय के फूल, और आँवलों का चूर्ण बना कर पिघले हुए घी में मिला कर चटावे।

३—शालपर्णी, घुड़बच, दोनों कटेली, काकोली, पीपल, तगर, जलबेत, नीलोफर, पुनर्नवा, भारङ्गी, नागरमोथा—इन सब औषधियों को एक-एक तोला लेकर जल में पीस कर लुगदी कर ले। फिर एक क़लई किए हुए पात्र में आधा सेर घी, पूर्वोक्त लुगदी और चार सेर जल डाल कर मन्द-मन्द अग्नि से पकावे। जब घृत अवशेष रहे, उतार-छान कर दो माशे दूध के साथ मिला कर खिलावे। इससे कफ से रुके हुए स्रोत खुल जाते हैं और रस का सञ्चार होकर रक्त बनने लगता है।

४—छोटी कटेली, असगन्ध, तुलसी, पीपल—प्रत्येक ढाई-ढाई तोले लेकर लुगदी बनावे। फिर उस लुगदी को आध सेर घी और चार सेर जल के साथ एक पात्र में मन्द अग्नि पर पकावे। घृत सिद्ध हो जाने पर पूर्वोक्त रीति से सेवन करावे।

५—काकड़ासिङ्गी, मुलैठी, भारङ्गी, पीपल, देवदारु,

असगन्ध, काकोली, क्षीर काकोली, रास्ना, जीवक, ऋषभक, माषपर्णी, मूँगपर्णी और बायबिडङ्ग—सबको समान भाग में कुल पाव भर लेकर जल से पीस लुगदी बना ले। फिर खरगोश के शिर के चार,सेर शोरवे (यूष) में एक सेर घी और लुगदी डाल कर मन्द-मन्द अग्नि से पकावे। जब पक जाय तब छान कर सुबह मिश्री के साथ खिलाने और ऊपर से दूध पिलाने से बालक का शरीर अत्यन्त पुष्ट हो जाता है।

६—बच, हरड़, तगर, गिलोय और चोरपुष्पी—इनकी पाव भर लुगदी बनावे। फिर एक पात्र में एक सेर तिल का तेल, दो सेर बकरे का मूत्र, दो सेर शराब और पूर्वोक्त लुगदी को डाल कर मन्द अग्नि से पकावे। तेल-मात्र शेष रहने पर उतार-छान प्रतिदिन बालक के शरीर में मालिश करे। इससे ख़ून का सञ्चालन ठीक होता है और शरीर प्रतिदिन पुष्ट होता है। इसके सिवाय तालुकण्टक रोग में लिखे हुए लाक्षादि तैल का मर्दन करे। इससे ज्वर, दुर्बलता आदि सब विकार नष्ट होते हैं।

७—अतीस, काकड़ासिङ्गी और पीपल—इनका दो रत्ती प्रमाण चूर्ण शहद के साथ दिन में तीन बार चटाने से, अथवा केवल अतीस का डेढ़ रत्ती चूर्ण शहद के साथ चटाने से बालक के खाँसी, ज्वर और उलटी रोग में विशेष लाभ होता है। दूध के वमन को बन्द करने वाले जो प्रयोग पहले लिखे गए हैं, वे भी इसमें लाभदायक होते हैं।

८—मुलैठी चार रत्ती, गिलोय का सत्व दो रत्ती, अतीस दो रत्ती, घुड़बच दो रत्ती, सोने की भस्म (अभाव में सोने के वर्क़) एक रत्ती—इन सब औषधियों का चूर्ण बना कर सबको एकत्र खरल करके छै पुड़िया बनाले। प्रतिदिन सुबह, दोपहर और शाम को एक-एक पुड़िया शहद में मिला कर चटाने से बालकों का सूखना, सूखे का रोग, शारीरिक दुर्बलता, खाँसी, क़ब्ज़, अपच, पतले दस्तों का होना, ज्वर, दूध डालना आदि उपद्रव दूर होकर बालक मोटा-ताज़ा होता है।

इस रोग में सूखा-रोग में लिखा हुआ अश्वगन्धा घृत बहुत उपयोगी है।

यकृत्-रोग

आजकल इस देश में बालकों को एक प्रकार का यकृत्-रोग देखा जाता है, जिसके कारण अनेक बालक अकाल में ही काल-कवलित हो जाते हैं। पाँच या छः महीने से लेकर दो-तीन वर्ष की आयु तक यह रोग अधिकतर होता है। बालकों को इस प्रकार का रोग देख कर प्रायः सभी लोगों को आश्चर्य होता है कि इनको कैसे और कब यह रोग हो गया। बालक को साधारण ज्वर आने के बाद इसका आक्रमण होता है और कभी-कभी बिना ज्वर की दशा के भी यह रोग आक्रमण करता है। दो-चार दिन ज्वर होने से किसी को इस बात की शङ्का नहीं होती कि बालक का यकृत् बढ़ गया

होगा, परन्तु बालक के पेट पर हाथ फेरने से यकृत् बढ़ा हुआ मालूम पड़ता है।

पहले-पहल बहुत से चिकित्सक इस रोग को बड़ा ही भयानक और साङ्घातिक रोग समझते थे। परन्तु बाद में अच्छी तरह औषधि का प्रबन्ध और सावधानी से चिकित्सा करने पर सिद्ध हुआ कि इसके अधिकांश रोगी अच्छे हो जाते हैं।

कारण—बालकों की शारीरिक दुर्बलता, माता-पिता की अनेक प्रकार की व्याधियाँ, विशेष कर अम्लपित्त, अम्लशूल, पुरातन अजीर्ण आदि रोगों में बालकों के पथ्य की व्यवस्था ठीक न होना आदि कारणों से इस रोग की उत्पत्ति होती है। इसके सिवाय कलकत्ता, बम्बई, देहली आदि बड़े-बड़े शहरों में शुद्ध और स्वच्छ वायु का अभाव, शुद्ध अमिश्रित दूध का न मिलना, और बालकों के शारीरिक नियमों के पालन में असुविधा होने से भी यह रोग उत्पन्न होता है।

बालकों को ज्वर की दशा में दूध देते रहना भी इसका कारण है। क्योंकि ज्वर में दूध पिलाने से यकृत् में रक्ताधिक्य होता है, जिसके कारण अधिकांश स्थानों में यकृत्-वृद्धि-रोग उत्पन्न हो जाता है। परीक्षा करने पर अनेक बालक उपरोक्त कारण से ही यकृत-रोग-ग्रस्त पाए गए हैं। हमारे देश में बूढ़ी स्त्रियाँ इस बात को भली-भाँति जानती हैं कि ज्वर में बालक को दूध पिलाने से खराबी पैदा होती है। इसलिए वे

प्रायः ज्वर की अवस्था में दूध न देकर जल में साबूदाना या बार्ली आदि पका कर देने की व्यवस्था करती हैं। इस उपाय से इस रोग की उत्पत्ति का भय नहीं रहता।

माता-पिता को अम्लपित्त रोग का होना बालकों के यकृत्-वृद्धि-रोग का एक और प्रधान कारण है। क्योंकि अम्लपित्त या विदग्धाजीर्ण होने पर माता या धाय का दूध खराब हो जाता है। इस प्रकार के दूषित दूध के पिलाने से बालकों को हरे-पीले दस्त, ऐंठन, उलटी आदि अनेक प्रकार के रोग घेर लेते हैं। जब बालक ज्वर-ग्रस्त हो तो ऐसा दूध पिलाने से यकृत्-वृद्धि-रोग हो जाता है। पर बालक के लिए ज्वरावस्था में भी स्तनपान बन्द करना असम्भव सा है और बन्द न करने से जीवन-नाशकारी रोग हो जाता है। ऐसे कठिन समय में किसी योग्य धाय अथवा पड़ोस या घर की किसी दूसरी स्त्री का स्तन-पान कराना ही एकमात्र उपाय है।

बहुत बार रोगी के घर वाले कहते हैं कि बिना किसी प्रकट रोग के एकाएक बालक का पेट बढ़ कर यकृत् रोग हो गया है। इसका कारण जाँच करने से यह मालूम हुआ है कि जिन बालकों को अर्धरात्रि में थोड़ा-थोड़ा ज्वर हो जाता है, जिसको कि उनके माता-पिता बिल्कुल नहीं जान पाते हैं, और जो खाना-पीना बराबर हमेशा के माफ़िक़ जारी रखते हैं, उनको एकाएक यकृत्-वृद्धि-रोग हो जाता है।

लक्षण—इसमें कुछ सन्देह नहीं कि इस रोग का जो

प्रधान आनुषङ्गिक (सम्बन्ध रखने वाला) लक्षण ज्वर है, वह सदा सर्दी लग कर प्रकट होता है। इस प्रकार बारम्बार सर्दी के साथ ज्वर के होने से धीरे-धीरे यकृत् की वृद्धि हो जाती है, जिससे बालक बेचैन सा रहता है, आहार करने की इच्छा प्रकट नहीं करता, कभी-कभी खाया-पिया सब उलट देता है, मल (दस्त) प्रायः कड़ा होता है और उसका रङ्ग भी स्वाभाविक न होकर कुछ कालापन लिए रहता है। किसी-किसी बालक को पतले दस्त होते हैं और उनमें आँव मिला रहता है। रोग जितना बढ़ता है उतना ही उसका पेट बड़ा हो जाता है। कभी-कभी यकृत् के साथ ही तिल्ली की भी वृद्धि होती देखी गई है।

इस रोग में प्रायः आँखें पीली (हल्दी के रङ्ग की सी) होकर पाण्डु रोग प्रकट हो जाता है, और धीरे-धीरे सम्पूर्ण शरीर पीला पड़ कर रोगी की मृत्यु हो जाती है। कभी-कभी पेट फूल कर जलोदर पैदा हो जाता है। इसमें रोगी को मूत्र कम और अत्यन्त लाल या हल्दी के वर्ण का उतरता है। यकृत् दबाने से कठिन लगता है। हाथ-पैर और मुख-मण्डल कुछ सूजन के साथ तने हुए से रहते हैं। सर्दी के सूखने पर अत्यन्त कष्टदायक खाँसी उत्पन्न हो जाती है।

भावी फल—इस रोग का परिणाम प्रायः अत्यन्त ख़राब होता है। पहले से ही रोग की अच्छी तरह चिकित्सा न करने से अन्त में इसमें कोई लाभ नहीं होता। एक साथ

अधिक औषधियों का प्रयोग करना भी बड़ी खराबी पैदा करता है। आँखें और सम्पूर्ण शरीर हल्दी के रङ्ग का हो जाने पर, अथवा पेट में जल-सञ्चय (जलोदर) हो जाने पर फिर आरोग्य होने की आशा नहीं रहती। इसी प्रकार इसमें 'सिरोसिस्' (यकृत्-सङ्कोच) रोग के हो जाने पर रोगी का बच सकना असम्भव हो जाता है।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा बड़ी सावधानी से करनी चाहिए। इसकी प्रथम अवस्था में ज्वर को दूर कर यकृत्-वृद्धि न होने दी जाय तो फिर किसी प्रकार की खराबी उत्पन्न नहीं हो सकती। इसके लिए ज्वर-प्रकरण में लिखा हुआ 'भद्रमुस्तादि-क्वाथ' देकर फिर शङ्ख-भस्म, सुहागा और ओङ्गे का क्षार अदरक के रस में मिला कर सेवन करावे। यकृत् के कड़े पड़ जाने पर एक थैली में गोमूत्र भर कर उसके द्वारा बच्चे के सहने योग्य यकृत् के ऊपर स्वेद करे। इससे उसकी विकृति तथा कठिनता दूर हो जाती है।

ज्वर न होने पर या मन्द ज्वर होने पर यकृत्-वृद्धि में मालतीवसन्त, लोह-भस्म, अभ्रक और मकरध्वज—चारों को डेढ़ चावल मात्रा में दिन में दो बार शहद के साथ चटाने से बहुत लाभ होता है। अन्न खाने वाले बालक को दो रत्ती वज्रक्षार चूर्ण, चार माशे कुमर्यासव में घोल कर पिलाना चाहिए। इससे प्रायः बहुत लाभ होता है। यदि बालक को क़ब्ज़ रहता हो तो कुमर्यासव में थोड़ा साल्ट मिला देवे।

डिफ़्थेरिया

यह एक प्रकार का प्रबल संक्रामक (छूत वाला) रोग है। जब यह उत्पन्न होता है तो सम्पूर्ण देश में फैल जाता है। ज्वर और दुर्बलता इसके मित्र हैं। इसके आक्रमण से शरीर के अनेक स्थानों की, विशेषकर गले व तालु की श्लैष्मिक झिल्ली में सूजन होकर घाव हो जाता है। इस घाव तथा दूसरे घावों के ऊपर एक अप्राकृत झिल्ली (फाल्समेम्ब्रेन) पैदा हो जाती है।

डिफ़थेरिया एक विशेष विष द्वारा उत्पन्न होने वाला स्वतन्त्र, नवीन, विशेष रोग है। इसका विष प्रधानतः श्वास द्वारा शरीर में प्रवेश करता है। परन्तु बहुतों का मत है कि यह विष स्वेद, मल, मूत्र आदि के द्वारा निकलता है। अनेकों की धारणा है कि डिफथेरिया का विष शरीर में प्रवेश कर सबसे पहले कण्ठ या अन्य किसी स्थान में लग जाता है और फिर कुछ समय बाद प्रकट होता है। रोगी के परिवार के सभी मनुष्य और विशेषकर जो सदा उसके पास रहते हैं, वे भी इसमें फँस जाते हैं। रोगी की नासिका से कफ के साथ इस विष का बीज निकलता है। अपवित्र और गन्दे आहार-विहार वाले बालक या मनुष्य ही प्रायः इस रोग के शिकार बनते हैं। इसका विष अनेक दिन तक रहने से रोगी के घर में निवास कर लेता है। रेशमी या ऊनी कपड़ों के द्वारा इस विष के सञ्चार होने की सम्भावना रहती है।

मकान के भीतर वायु का सञ्चार अधिक होने से इसका विष उड़ जाता है।

कारण—बाल्यावस्था, व्यक्तिगत या पारिवारिक रोगों की अधिकता डिफथेरिया रोग के पूर्व प्रवर्तक कारण माने जाते हैं। इसके सिवाय शारीरिक क्लान्ति और स्नायविक उग्रता भी इसके कारण हैं। बहुत से लेखकों का मत है कि मिथ्या आहार-विहार, गन्दे स्थानों का निवास और साधारण दौर्बल्य इस रोग के पूर्व प्रवर्तक कारण हैं। इसके सिवाय लाल बुखार, बसन्त-ज्वर, कूकर खाँसी, कण्ठ-शूक आदि रोगों के होने पर भी यह प्रकट हो जाता है। गरम और खुश्क ऋतु तथा जल-वायु में इस रोग का विष-बीज विशेष स्फूर्ति को प्राप्त होता है। बड़े मनुष्यों की अपेक्षा यह रोग बालकों को अधिक होता है और तीसरे वर्ष से बारह वर्ष के भीतर विशेष आक्रमण करता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ इसमें अधिक फँसती हैं। दीन-हीन व्यक्तियों में भी यह अधिक फैलता देखा गया है।

लक्षण—डिफथेरिया के साधारण लक्षणों में से सर्वप्रथम ज्वर है। वह कभी बढ़ता नहीं, यहाँ तक कि रोग के कठिन होने पर भी शारीरिक ताप अधिक नहीं होता। रोगी बेचैन, दुर्बल और शिथिल हो जाता है। यह पहले ही बतला दिया है कि इससे गले की श्लैष्मिक झिल्ली में विकृति आती है और उसमें सूजन होकर घाव हो जाता

है। इस वास्ते रोगी की ग्रीवा कड़ी पड़ जाती है और मुख के दोनों तरफ़ के भाग कोमल हो जाते हैं। रोग के कठिन होने पर अनेक समय "टाइफाइड फ़ीवर" अर्थात् आन्त्रिक ज्वर या मियादी बुखार की दशा हो जाती है। श्वास-मार्ग के आक्रान्त होने से रक्त-अशुद्धि के लक्षण प्रकट होते हैं। इसी कारण रोगी का श्वासरोध हो जाता है। मूत्र में विकृति आने से एलब्यूमन (चर्बी) का सञ्चय होता है। इसके फल से कभी-कभी रक्तस्राव और अधःक्षेप (कास्ट) होता हुआ दिखाई देता है।

उपद्रव—मूत्र की कमी या कभी-कभी बिल्कुल बन्द हो जाना, मुख तथा अन्यान्य शारीरिक छिद्रों से रक्त-स्राव, त्वचा के ऊपर दग्ध सदृश चिह्न आदि उपद्रव दिखाई देते हैं, जिनका वर्णन विस्तार के भय से नहीं किया जा सकता।

चिकित्सा—यह डॉक्टरी में एक स्वतन्त्र रोग है, परन्तु आयुर्वेद में इसके पूर्ण लक्षण किसी रोग से नहीं मिलते। इसलिए इसको केवल "औपद्रविक गलशोथ" कह सकते हैं। इसकी भिन्न-भिन्न अवस्थानुसार आयुर्वेद में चिकित्सा न होने से डॉक्टरी मत से ही इसकी चिकित्सा लिखी जाती है।

इसकी चिकित्सा में खाने और लगाने दोनों प्रकार की औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। पथ्य के सम्बन्ध में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। यह रोग संक्रामक

और स्पर्शाक्रामक दोनों प्रकार का है। रोगी के श्वास व कण्ठ से बाहर निकली हुई झिल्लियों के अविकृत अवयव ही इस रोग के विष-बीज हैं। इसलिए डिफ़थेरिया के रोगियों को अलग स्थान में रखना अत्यन्त आवश्यक है। उसके सम्पूर्ण झिल्ली के टुकड़ों को एक पात्र में कार्बोलिक एसिड अथवा परक्लोराइड ऑफ़ मर्करी डाल कर रखना चाहिए। इस रोग के अधिक फैलने पर किसी भी मनुष्य को गाय का दूध नहीं पीना चाहिए। यदि किसी को पीना आवश्यक हो, तो पीने के पहले उसे अच्छी तरह गरम कर लेना चाहिए। इस विषय में डॉक्टर कोषेन का मत है कि उन दिनों में घर के पाले हुए बिल्ली-कुत्ते आदि जीव भी वहाँ से हटा देने चाहिएँ।

स्थान—इस रोग में रोगी के रहने और सोने का मकान साफ़, पवित्र और छायादार होना चाहिए। उसमें शुद्ध वायु का अच्छी तरह आवागमन हो सके। श्वास-नलिका के आक्रान्त होने पर घर की वायु को कुछ गरम रखने की आवश्यकता है। क्योंकि वायु के शीतल होने पर निमोनिया होने की सम्भावना रहती है।

पथ्यादि—यह रोग अत्यन्त दुर्बलता पैदा करने वाला है। गले में आक्रमण होने से अनेक बार रोगी कुछ न खा सकने के कारण और भी दुर्बल हो जाता है। इसीलिए रोगी के आहार के विषय में विशेष ध्यान रखने की आव-

श्यकता है। डॉ० कोषेन का मत है कि पूर्वोक्त अवस्था में दूध ही रोगी का एकमात्र आहार है। दूध में थोड़ा चूने का पानी या सोडा-वाटर मिला कर देना चाहिए। प्रत्येक दो-दो घण्टे बाद दूध देते रहना चाहिए। यदि रोगी एक समय में कुछ अधिक दूध नहीं पी सकता हो तो उसे एक-एक घण्टे बाद थोड़ा-थोड़ा करके पिलाना चाहिए। दूध के साथ दिन में दो-तीन बार दूध में अण्डे की जर्दी मिला कर या अरारोट पका कर देना चाहिए। सप्ताह में दो-एक दिन मांस-रस (शोरवा) भी देते रहना चाहिए। इस रोग में अनेक समय बालक कुछ भी खाना नहीं चाहते। ऐसी दशा में कमज़ोरी दूर करने के लिए नासिका या गुदा-मार्ग से नली या पिचकारी के द्वारा आहार भीतर पहुँचाना चाहिए।

उत्तेजक औषधि—कठिन डिफ़थेरिया रोग में सदा शराब का प्रयोग करना चाहिए। शराबों में शैम्पेन या ब्राण्डी अच्छी हैं। दो-तीन घण्टे के अन्तर से रोगी की अवस्था और रोग के अनुसार इसका प्रयोग करते रहना अच्छा है। हृदय (दिल) के कार्य में किसी प्रकार की कमी-बेशी हो तो इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

अभ्यन्तरीण चिकित्सा—इस रोग की आभ्यन्तरिक (भीतरी) चिकित्सा में लोह व पारे से बनी हुई औषधियां और कुनैन का ही प्रयोग करना चाहिए। डॉ० रॉबर्ट का मत है कि आवश्यकता होने पर प्रतिदिन एक मृदु विरेचन

देना अच्छा है। साथ ही कोई लवण पीने के लिए देना भी हितकारक है। लवणों में साइट्रेट ऑफ पुटाशियम का सोल्यूशन अथवा क्लोरेट ऑफ पुटाशियम का सोल्यूशन देना हितकारक है।

स्थानिक चिकित्सा—गला, डिफ़थेरिया रोग का एक प्रधान स्थान है। इसी स्थान से रोग का विष-बीज शरीर के भीतर पहुँचता है। इसलिए उसका निवारण करना उचित है। डॉ० कोषेन का सिद्धान्त है कि गले के भीतर से विकृत झिल्ली को उठा कर बाहर निकालने के लिए पहले जोर नहीं लगाना, चाहिए, वरन् क्लोराइड ऑफ मर्करी $\frac{१}{५००}$ भाग और कार्बोलिक एसिड $\frac{१}{४०}$ भाग (अथवा रिसर्शिन $\frac{१}{२०}$ भाग) के सोल्यूशन द्वारा प्रतिदिन गले के भीतर धोना चाहिए। इसके लिए परक्लोराइड ऑफ आइरन के सोल्यूशन का प्रयोग भी बड़ा लाभकारी है। आवश्यकता होने पर इसको ग्लेसरीन के साथ मिला कर प्रयोग करना चाहिए। टिञ्चर आयोडीन को भी गले में लगा सकते हैं।

इन्फ़्लुएञ्जा

यह भी एक प्रकार का छूत वाला रोग है। एक ही बार बहुत से लोगों पर इसका आक्रमण होता है। इसमें ज्वर तथा अत्यन्त दुर्बलता होती है। फेफड़ों पर इसका आक्रमण होने से सर्दी-खाँसी हो जाती है और अन्त में स्नायु-मण्डल भी आक्रान्त हो जाता है।

इसमें पहले एकाएक ठण्ढ लग कर ज्वर होता है। फिर ज्वर के साथ शिर भारी, शरीर में दर्द और दुर्बलता होती है। इस तरह एक सप्ताह या कुछ अधिक समय तक रोग बना रहता है। यह पीड़ा यदि बड़ी उम्र वालों को हो तो उनकी खाँसी धीरे-धीरे बढ़ जाती है और शरीर दिन पर दिन कमज़ोर होता चला जाता है।

चिकित्सा—इस रोग में बालक को बड़ी सावधानी के साथ रखना चाहिए, जिससे उसे किसी प्रकार ठण्ढ न लगने पावे। साथ ही उसके शयन-स्थान में शुद्ध वायु के भली प्रकार आवागमन होने के लिए पूरा प्रबन्ध रखना चाहिए। इन्फ्लुएन्ज़ा की पहली अवस्था में काली मिर्च और तुलसी की चाय के साथ सञ्जीवनी वटी देना चाहिए। यदि बालक छोटा हो तो एक वटी और आधी लौंग पीस कर गरम जल के साथ देना चाहिए। क़ब्ज़ होने पर एक सञ्जीवनी वटी और दो छोटी हरड़ घिस कर या पीस कर गरम जल के साथ देना चाहिए। खाँसी और ज्वर के होने पर पहले लिखा हुआ चातुर्भद्रिक चूर्ण या शृंग्यादि चूर्ण शहद या शरबत-बनफ़शा या माता के दूध के साथ सेवन कराना चाहिए। छाती में दर्द होने पर नारायण तैल की मालिश करे।

पथ्य—खाने के लिए दूध का सेवन करना अच्छा है। दूध के अभाव में या कफ की अधिकता में बार्ली का जल, साबूदाना, अरारोट आदि का पथ्य देना चाहिए।

कृमि-रोग

मनुष्यों की आँतों में प्रधान रूप से तीन प्रकार के कृमि देखने में आते हैं। पहले गोलाकार कृमि, जिनकी लम्बाई चार इञ्च से दस-बारह इञ्च तक और मोटाई पेन्सिल के बराबर होती है। इन कृमियों का रङ्ग भूरा होता है। यह कृमि बालकों के साधारण रीति से पाए जाते हैं और बड़ी उमर के लोगों में से भी किसी-किसी के होते हैं। यह कृमि छोटी आँतों में उत्पन्न होते हैं और मल द्वारा या वमन के द्वारा बाहर निकला करते हैं। उल्टी के द्वारा ऊपर को आए हुए कृमि यदि श्वास के द्वारा पुनः पेट में चले जायँ तो बड़ी हानि होती है। इन गोलाकार कृमियों में मादा, नर से जरा अधिक मोटी होती है।

दूसरे प्रकार के कृमि बहुत बारीक सूत के समान पतले होते हैं। ये मलाशय और बड़ी आँतों में हुआ करते हैं और पौन इञ्च से आधे इञ्च तक लम्बे होते हैं। इनमें नर और मादा भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं। जब यह गुदा में भर जाते हैं, तो वहाँ पर अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न होता है। इस कारण गुदा में दाह, खुजली, खिंचाहट आदि बवासीर के समान लक्षण प्रकट होते हैं।

तीसरे प्रकार के कृमि बहुत लम्बे होते हैं। उनको चपटे कृमि कहते हैं। इनकी लम्बाई २०-३० फ़ीट तक देखी गई है। अधिकतर ये कृमि बड़ी उम्र वाले मनुष्यों के होते हैं।

ये कभी किसी तेज़ औषधि के विष से मल द्वारा बाहर निकल आते हैं और थोड़ी देर बाद मर जाते हैं। बहुत से ८-१० वर्ष की उम्र वाले बालक तो इनको एकाएक साँप की तरह निकलते हुए देख कर बहुत घबरा जाते हैं। मल के साथ इनके शरीर के टुकड़े बाहर निकलने पर यदि मुख का भाग टूट कर भीतर ही रह जाय तो वह फिर बढ़ कर उतना ही लम्बा हो जाता है। जिनके पेट में यह कृमि होते हैं, उनके मल में इन कृमियों के अण्डे हज़ारों की संख्या में पाए जाते हैं।

लक्षण—सब कृमियों के एक से लक्षण नहीं होते हैं। किसी मनुष्य या बालक के पेट में इन तीनों प्रकार के कृमियों में से कोई कृमि है या नहीं, इसका कोई ख़ास लक्षण नहीं है। मल के साथ एकाध कृमि का देखा जाना ही उदर में कृमियों के होने का प्रधान लक्षण है। इसके सिवाय पेट का दुखना, अफरना, ज्वर होना, भोजन में अरुचि, अन्न का न पचना, दस्त का साफ़ न होना, गुदा-द्वार के चारों तरफ़ जलन या थोड़ा-थोड़ा दर्द होना, उलटी होना, नासिका मलना, हाथ पैरों का ठण्ढा और पेट का गरम होना, सोते हुए स्वप्न में दाँतों को चबाना या रगड़ना, शिर में दर्द होना इत्यादि लक्षणों से पेट में कृमियों का होना अनुमान किया जा सकता है। पेट में कृमियों के होने से रोगी का चेहरा निस्तेज और प्रायः पीला हो जाता है। इन कीड़ों के कारण कभी-कभी

हैज़ा, अपस्मार (मृगी) या पागलपन की तरह चिन्ह भी प्रकट होते हैं, जिन्हें देख कर वैद्य लोग चकरा जाते हैं और ठीक-ठीक निदान नहीं कर सकते।

चिकित्सा—गोलाकार कृमियों के अनेक उपाय हैं। बच्चों की आयु के अनुसार रात्रि में एक से तीन-चार ग्रेन सेटोनाइन नामक अङ्गरेजी औषधि खाँड के साथ खिलाने से और प्रातःकाल दूध के साथ थोड़ा कॉस्ट्राइल (एरण्ड-तैल) पिलाने से पेट के सम्पूर्ण कृमि मल के साथ बाहर निकल आते हैं। सेटोनाइन इन कृमियों के लिए अत्युत्तम औषधि है। इस औषधि के सेवन करने से मूत्र प्रायः पीला आता है।

यदि एक दिन में इस औषधि के देने से पूर्ण रूप से कृमि बाहर न निकलें तो दो दिन बाद फिर इसकी एक मात्रा देनी चाहिए। यदि कोई चाहे तो इस औषधि की गोलियाँ भी बनी हुई मिल सकती हैं। इनके उपयोग से भी बड़ा लाभ होता है। कैलोमल, सोडा और सेटोनाइन उपरोक्त मात्रा से रात्रि में देने से प्रातःकाल दस्त होकर कृमि नष्ट हो जाते हैं।

कृमियों की दूसरी औषधि कवीला है। उपरोक्त रीति से कवीले के चूर्ण को रात्रि में सेवन कराके सुबह अण्डी का शुद्ध तेल दूध के साथ देने से सब कृमि नष्ट हो जाते हैं। तारपीन के तेल में भी कृमि-नाशक शक्ति है। तारपीन का

तेल ४ ड्राम, कॉस्ट्राइल ४ ड्राम, गोंद का जल ४ ड्राम और सोए का जल या अर्क १ औंस—सब मिला कर पूरी उमर वाले मनुष्य के लिए एक मात्रा है। इसको बालकों को पूर्व-लिखित औषधि-मात्रा के हिसाब से देना चाहिए।

एक सप्ताह पर्यन्त पुराने वायविडङ्ग का चूर्ण शहद के साथ चटाने से और बाद को शुद्ध एरण्ड-तैल का विरेचन देने से सब कृमि नष्ट हो जाते हैं। अनार की जड़ की छाल का चूर्ण बालक की अवस्थानुसार एक मात्रा प्रातःकाल और एक मात्रा सायङ्काल के समय खाँड या शहद के साथ सेवन करावे और दूसरे दिन 'साल्ट' नमक का विरेचन दे। इससे सब कृमि नष्ट हो जाते हैं। इसके सिवाय कैलोमल, जलापा, निसोथ आदि औषधियाँ भी कृमि-नाशक हैं। परन्तु यह सब रोगी की अवस्थानुसार देनी चाहिएँ।

प्याज का रस निकाल कर चार रत्ती से तीन माशे पर्यन्त दोनों समय पिलाने से कृमि नष्ट हो जाते हैं। परन्तु इसके प्रयोग के बाद रोगी को विरेचन (कॉस्ट्राइल) देना जरूरी है। विरेचन देने से पेट के भीतर भरे हुए कृमि बाहर निकल आते हैं।

यदि किसी के पेट में चपटे कृमि हों तो उनको दूर करने के लिए पहले एक हलका सा विरेचन देकर पेट साफ कर लेना चाहिए। फिर मेलफर्न-तैल ३० से ४० बूँद तक सोंठ के जल के साथ पिलाना चाहिए और चार घण्टे बाद

कालादाना, जलापा अथवा अण्डी के तेल का जुलाब देना चाहिए। यह कृमि बालकों के पेट में बहुत कम होते हैं।

सूत जैसे कृमियों के लिए कैलोमल का जुलाब देना उचित है। यदि यह कृमि फिर से हो जायँ तो थोड़े नीम के पत्ते जल के साथ पीस कर पीने चाहिएँ। इसके पीने से फिर कृमि नहीं होते। अथवा नमक का जल, चूने का पानी अथवा लोहे का पानी अल्प मात्रा में पीना चाहिए। बालक की आयु के अनुसार पलासपापड़ा और वायविडङ्ग दोनों का चूर्ण जल के साथ पीस कर सुबह-शाम पिलाना चाहिए और दूसरे दिन अरण्डी के तेल का विरेचन देना चाहिए। अथवा पलासपापड़ा और कालीजीरी बालकोपयोगी मात्रा में लेकर सुबह-शाम खाँड में मिला कर खिलाना चाहिए, फिर दूसरे दिन एरण्ड-तेल का विरेचन देना चाहिए। कच्चे आम की गुठली का चूर्ण दो से चार रत्ती तक अवस्थानुसार दही या जल के साथ दोनों समय खाने से भी लाभ होता है। इसी तरह कीड़ामारी नामक बनौषधि को छाया में सुखा कर चूर्ण करके दो से आठ रत्ती तक गरम जल के साथ देने से तीन दिन में सब कृमि नष्ट हो जाते हैं। परन्तु इन सब औषधियों के सेवन करने के बाद दूसरे दिन दूध के साथ कॉस्ट्राइल पीकर अवश्य विरेचन लेना चाहिए।

बच्चों की गुदा में सूत के आकारके कृमि भर जाते हैं,

उनको निकालने और मारने के लिए कुकुन्दर (कुकरौंधा) नामक औषधि को जल के साथ पीस, टिकिया बना कर बालक की गुदा में रख दे। आध घण्टे में कृमि टिकिया के नीचे इकट्ठे मरे हुए मिलेंगे।

कबीला चार से आठ रत्ती तक और कैलोमल तीन या चार ग्रेन लेकर दोनों को गुड़ में मिला कर सेवन करने से दस्त होकर सब प्रकार के कृमि बाहर निकल जाते हैं।

जो बालक अत्यन्त छोटे होने के कारण कृमि-नाशक औषधि या विरेचक द्रव्यों को न सेवन कर सके, उनके पेट तथा गुदा के कृमियों को निकालने के लिए नमक की पिचकारी देना विशेष लाभदायक है। एक छटाँक जल में थोड़ा नमक मिला कर उसे एक काँच की पिचकारी द्वारा बालक की गुदा में डालना चाहिए। पिचकारी लगाते समय उसके अग्रभाग में (जो गुदा के अन्दर जाता है) थोड़ा सा तेल लगा देना चाहिए, जिससे भीतर जाने में कोई कष्ट न हो। पिचकारी लगाते ही जल वापस बाहर न आवे, इसलिए पिचकारी देने के बाद अपनी अँगुलियों से बालक के गुदा-द्वार को दो-तीन मिनट तक बन्द रखना चाहिए। इस प्रकार दो-तीन दिन लवण-जल की पिचकारी देने से बालकों के सम्पूर्ण कृमि नष्ट हो जाते हैं।

प्रायः बालकों को आहार की खराबी से ही कृमि पैदा हो जाते हैं। इसलिए आहार के विषय में विशेष सावधानी

की आवश्यकता है। अधिक मीठा, भारी, क़ाबिज़ और अजीर्ण-कारक आहार बालकों को बिल्कुल नहीं देना चाहिए।

मृत्तिका-भक्षण

बहुत से बालकों को मिट्टी खाने की आदत लग जाती है, जिसके बारे में बाल-परिचर्या के परिच्छेद में अच्छी तरह लिखा जा चुका है। मिट्टी के खाने से पेट बढ़ जाता है, उदर में अनेक प्रकार के रोग, मन्दाग्नि, अजीर्ण आदि उत्पन्न हो जाते हैं। बालक की इन्द्रियों की शक्ति नष्ट हो जाती है। बालक निस्तेज और कमज़ोर होकर पीला पड़ जाता है।

विशेष लक्षण—मिट्टी खाने से पीला शरीर होने की पहिचान यह है कि उसकी आँखों के चारों तरफ़ तथा गालों, भौंहों, हाथ, पैर तथा लिङ्ग में शोथ हो जाता है। इसके सिवाय उसके पेट से कभी-कभी कृमि निकलते हैं, अथवा कृमियों के समान लक्षण दिखाई देते हैं। कुछ दिनों के बाद बालक को रक्त-मिश्रित आँव के दस्त आने आरम्भ हो जाते हैं।

चिकित्सा—इस रोग में पहले निम्न-लिखित घृत से उदर-स्थित मिट्टी को अच्छी तरह फुला कर कोमल कर लेना चाहिए। कोमल होने के बाद साधारण विरेचन से उसे निकाल देना चाहिए। फिर अग्निदीपन औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

पाढ़, वायविडङ्ग, दारुहल्दी, भारङ्गी, पुनर्नवा, बेल की

छाल, सोंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा और कौआठोड़ी का फल डेढ़-डेढ़ तोला और गाय का घी एक सेर ले। सब औषधियों को कूट कर, जल के साथ सिल पर पीस, चार सेर जल में घोल कर घी के साथ मन्द-मन्द अग्नि पर पकावे। सिद्ध हो जाने पर उतार कर छान लेवे। इस घी को योग्य मात्रा में दूध या मिश्री के साथ सेवन कराने से मिट्टी खाने से उत्पन्न हुए बालकों के सब रोग नष्ट हो जाते हैं।

२—छोटी इलायची १ माशा, शुद्ध गन्धक २ माशे, कङ्कुष्ठ (उसारेरेवन) ३ माशे और सौंफ ४ माशे—इन सबका बारीक चूर्ण कर दो माशे की मात्रा में गाय के दूध के साथ पाँच दिन तक सेवन कराने से बालक की खाई मिट्टी ज्यों की त्यों दस्त के साथ बाहर निकल आती है।

३—केशर, निसोथ, पीपल और मुलेठी के क्वाथ में पोतनी मिट्टी को सान कर धूप में सुखा ले। इसी प्रकार चार बार गीली करके सुखाने पर वह मिट्टी बालक को खिलावे तो खाई हुई पेट की मिट्टी दस्त के साथ बाहर निकल आती है, और सब रोग दूर हो जाते हैं।

पथ्यापथ्य—इस रोग में बालक की आँतें कमजोर हो जाती हैं और पाचकाग्नि नष्ट हो जाती है। इसलिए भोजन हल्का तथा रुचिकर देना चाहिए। बार्ली का जल, साबूदाना, अरारोट, दलिया, दूध, चावल आदि हितकारक हैं। इसमें पाण्डु-रोग के समान पथ्य और चिकित्सा करना उपयोगी है।

बालकों का हैज़ा

बालकों के लिए यह रोग अत्यन्त विपत्तिकारक है। हमारे देश में इस रोग के कारण अनेकों बालक अकाल में ही काल-कवलित हो जाते हैं। यह रोग प्रायः बालकों को रात्रि-काल में आ घेरता है। इसके होने के पूर्व बालक रोता है और हाथ-पैरों को छटपटाता है। इसके बाद उलटी होना आरम्भ होता है और फिर दस्त शुरू हो जाते हैं, कभी-कभी उलटी और दस्त एक साथ ही आरम्भ होते हैं। पहले खाए हुए पदार्थों की उलटी होती है और खाई हुई चीजें दस्त मे ज्यों की त्यों कच्ची ही निकलती हैं। फिर जल के समान उलटी और दस्त होते हैं, शरीर शीतल हो जाता है, पसीना आता है और भयानक जल की प्यास लगती है। किन्तु जल पीते ही तुरन्त उलटी हो जाती है। नाड़ी क्षीण, दुर्बल और अत्यन्त चञ्चल हो जाती है। बालक ज़ोर से श्वास खींचने लगता है, आँखें भीतर को धँसी हुई मालूम होती हैं तथा मुख-मण्डल नीला पड़ जाता है। कभी-कभी हाथ-पैरों में खिंचाहट होने लगती है। कुछ समय बाद फिर शरीर गरम हो जाता है, नाड़ी चञ्चल और पूर्ण हो जाती है, दस्त तथा उलटी कम हो जाती है। यदि यह अवस्था स्वाभाविक हो तो रोगी बच जाता है, अन्यथा ज्वर होकर विकार पैदा हो जाता है। फिर "हाइड्रोकेफ़ेलेड" (शिरोगह्वर में जल भरना) रोग के लक्षण उपस्थित होते देखे जाते हैं।

हाइड्रोकेफ़लेड रोग की अवस्था में सम्पूर्ण शरीर अथवा हाथ-पैर अत्यन्त शीतल, मस्तक गरम और आँखें आधी बन्द रहती हैं। आँखों की पुतली ऊपर की तरफ उठी रहती हैं या नीचे की तरफ़ झुकी हुई मालूम पड़ती हैं। बालक छटपटाता है और अज्ञानावस्था में शिर को इधर-उधर हिलाता है अथवा गहरी नींद में सोया हुआ सा जान पड़ता है। श्वास ज़ोर से लम्बा और धीरे-धीरे चलने लगता है। नाड़ी क्षीण, सूत के समान और चञ्चल हो जाती है तथा थोड़ी देर में ढूँढ़ने से भी नहीं मिलती। इसी दशा को हाइ-ड्रोकेफ़लेड या हैज़े की तृतीयावस्था कहते हैं।

इस रोग की उत्पत्ति अनेक प्रकार के अस्वास्थ्यकर कारणों से हुआ करती है। जैसे आहार का अनियम, बासी या बिगड़ा हुआ भोजन खाना, अत्यन्त गर्मी की दशा में एकाएक ठण्ढ का लगना, एक स्थान में अनेक आदमियों का इकट्ठा होकर रहना इत्यादि। कभी-कभी यह रोग संक्रामक रूप धारण कर लेता है।

चिकित्सा—हैज़े के आरम्भ होते ही बिना विलम्ब चिकित्सा करनी चाहिए। क्योंकि इसमें दो-तीन घण्टे भी देर हो जाने से जो हानि होती है, उसका प्रतिकार जीवन भर फिर किसी तरह नहीं हो सकता, अर्थात् रोग असाध्य हो जाता है। जहाँ पर डॉक्टर या वैद्य दूर हों, वहाँ बिना विलम्ब अर्क़-कपूर या कर्पूरार्क का प्रयोग, वैद्य के आने

तक अवश्य करना चाहिए, जिससे रोग बढ़ने न पावे। इसलिए प्रत्येक गृहस्थ को कपूँरार्क की एक शीशी अपने घर में अवश्य रखनी चाहिए। अथवा रोग आरम्भ होते ही तीन सञ्जीवनी वटी, तीन लौंग और एक माशा काला नमक पीस कर जल के साथ गरम करके पिला देवे। इससे दोषों का पाक हो जाता है और रोग बढ़ने नहीं पाता। इससे दस्त पच कर पीले रङ्ग का आने लगता है। इस तरह एक-एक घण्टे में यह औषधि देनी चाहिए। प्यास लगने पर पीपल को जला कर पानी में बुझा कर पिलाना चाहिए। शरीर में पसीना आने पर सोंठ और कायफल के चूर्ण को शरीर में मलना चाहिए। उलटी के अधिक होने पर एक रत्ती "वमनकुठार-रस" गरम जल के साथ देना चाहिए। बायँटे (खिंचाहट) विशेष आने पर श्वेत पुनर्नवा की जड़ को घिस कर पिलाना चाहिए, इससे प्यास भी शान्त होती है। हैज़े में लाभदायक दो परीक्षित औषधियाँ नीचे लिखी जाती हैं :—

१—फुलाया हुआ सुहागा, अफीम, कपूर, काली मिर्च, हीराहींग (भुनी हुई)—प्रत्येक छः छः माशे लेकर गुलाब-अर्क़ में घोट कर सरसों बराबर गोली बना ले। एक गोली प्याज़ के रस में घोल कर पिलाने से बालकों के हैज़े में बहुत शीघ्र आराम होता है। यदि आवश्यक हो तो एक घण्टे के बाद फिर एक गोली देने से रोग समूल नष्ट हो जाता है। इसका नाम विसूचिकान्तक वटी है।

२—बिना बुझा हुआ पत्थर का चूना पाव भर एक मिट्टी के पात्र में ढाई सेर गरम पानी डाल कर भिगो दे। चूने के गल जाने पर लकड़ी से हिला कर अच्छी तरह पानी में मिला कर छोड़ दे। चौबीस घण्टे के बाद निथरा हुआ ऊपर का पानी छान कर रख ले। उसमें आध सेर मिश्री डाल कर पकावे। आधा पानी रहने पर उसमें रतनजोत का एक माशा कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला दे और चाशनी पक जाने पर नीचे उतार, पतले कपड़े से छान कर बोतल में रख ले। इसमें से तीस बूँद दवा, तीन बूँद क्लोरोडाइन अथवा पाँच बूँद सुधासिन्धु और ४ बूँद ब्राण्डी के साथ मिला कर बालकों को हैजे की दशा में देने से बहुत उपकार होता है। इसकी बीस बूँद से छः माशे पर्यन्त मात्रा दिन में दो-तीन बार पानी अथवा दूध में मिला कर पिलाने से अजीर्ण, पेट का फूलना, दूध डालना, हरे-पीले दस्त होना, उदर-पीड़ा और सूखा-रोग आराम होता है। साथ ही बालक का शरीर पुष्ट और बलवान् होता है। आरोग्य बालक को इसका निरन्तर सेवन कराने से उसको कोई रोग सहसा नहीं घेर सकता। इस औषधि का नाम बालामृत शर्बत है।

पथ्यापथ्य—इसमें बड़ी सावधानी के साथ पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिए। पहले रोगी को जल, साबूदाना, बार्ली-जल आदि देने चाहिए। जब रोग कम हो जाय तब

थोड़ा सा दूध, अरारोट या बार्ली के साथ अथवा आधा जल मिला कर देना चाहिए। माता के दूध में कोई विकृति न होने पर वही सर्वोत्तम है। बालक को साफ़ तथा शुद्ध वायु के आवागमन वाले मकान में रखना चाहिए।

कण्ठमाला

शरीर की एक विशेष सर्वाङ्ग-सम्बन्धी अस्वस्थ अवस्था को कण्ठमाला कहते हैं। इस रोग की उत्पत्ति अधिक ठण्डे पहाड़ आदि अथवा पृथ्वी के मध्यम ऋतु वाले भागों में हुआ करती है। इस रोग में 'लसीका' ग्रन्थियों की अवस्था दूषित हो जाती है और शारीरिक ग्रन्थियों के समूह तने हुए और शोथयुक्त होकर धीरे-धीरे कठिन आकार धारण कर लेते हैं।

माता-पिता को इस रोग के होने पर उनके बालकों के ऊपर भी इसका आक्रमण होता है। अथवा माता-पिता या पूर्व-पुरुषों को ट्यूबरक्लोसिस, उपदंश, केन्सर (अर्बुद) आदि रोगों के होने पर बालक कण्ठमाला-रोग से ग्रस्त होते हैं। जिन बालकों की दशा ठीक नहीं रहती, जो सर्वदा अशुद्ध (गन्दे) रहते हैं, जो अशुद्ध हवा वाले स्थान में वास करते हैं, जिनको योग्य पुष्टिकारक आहार नहीं मिल सकता, और जिन बालकों का दूध जल्दी ही छुड़ा दिया जाता है, उनको यह रोग हो सकता है।

ऐसे बच्चों को सर्वदा सर्दी घेरे रहती है, कान से पीब

निकलती है, पेट में सदा कोई न कोई विकृति रहती है, शरीर की सम्पूर्ण गाँठें फूली हुई और वेदनायुक्त रहती हैं, और आँखों से पीब निकलती है। सारांश यह कि सदा किसी न किसी रोग में फँसे रहते हैं। ऐसी दशा उपस्थित होने पर क्षय-कास हो सकता है और बालक का शरीर क्षीण होकर पूर्वोक्त मेरेसमस (शोव) रोग का आक्रमण भी हो सकता है।

इस रोग में बालक का शिर बड़ा, मुख वर्गाकार अर्थात् चौखूँटा, आँखें सूजी हुई, शरीर फूला हुआ, टाँगें निर्वल, हाथ और पैर कुरूप हो जाते हैं तथा मस्तिष्क में शिथिलता रहती है। इन लक्षणों में से एक या कई कण्ठ-माला के रोगी में देखने में आते हैं। सब लक्षण एक साथ एक रोगी में बहुत कम पाए जाते हैं। इन लक्षणों के साथ हाथ-पैर ठण्ढ रहते हैं और सम्पूर्ण शरीर में एक प्रकार की ठण्ढ सी प्रतीत हुआ करती है। यह ठण्ढ रोग की भयान-कता को प्रकट करती है।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा बड़ी सावधानी के साथ करनी चाहिए। बालक को साधारण पसीना लाकर स्रोतों को शुद्ध कर लेना चाहिए। स्रोतों के शुद्ध हो जाने पर ठण्ढ लगना तथा विजातीय द्रव्य का उफान मन्द पड़ जाता है। फिर चिकित्सक की अनुमति के अनुसार खाने की औषधि सेवन करानी चाहिए। बाहरी लेप, सेंक आदि के लिए निम्न-लिखित औषधियों का प्रयोग करना चाहिए :—

१—अमलतास की जड़ की छाल को चावलों के जल में पीस कर लेप करने या नस्य लेने से कण्ठमाला में लाभ होता है। अथवा सम्भालू की जड़ को पानी में पीस कर लेप करने से कण्ठमाला नष्ट होती है।

२—इन्द्रायण अथवा श्वेत अपराजिता (सफेद कोयल) की जड़ को योग्य मात्रा में लेकर गो-मूत्र में पीस कर पीने या लेप करने से कण्ठमाला नष्ट होती है।

३—मुलेठी या मजीठ की जड़ को धूप में रख कर भिगोए हुए चावलों के जल के साथ पीस कर लेप करने से गलगण्ड, कण्ठमाला और अण्डवृद्धि-रोग नष्ट होते हैं।

४—छछून्दर का मांस पाव भर अच्छी तरह काट कर कल्क कर ले, फिर पाव भर उसी का मांस लेकर कूट के चार सेर जल में पकावे। जब चौथाई अवशेष रहे तब उतार-छान कर उसमें एक सेर तेल और पूर्वोक्त मांस का कल्क डाल कर मन्द अग्नि पर पका लेवे। सिद्ध होने पर इसकी मालिश करने से कण्ठमाला और गलगण्ड आदि रोगों में बहुत लाभ होता है। यह छछून्दरी तैल है।

५—पाव भर चक्रमर्द (पमार) की जड़ लेकर पानी के साथ पीस कर कल्क कर ले। फिर भाँगरे का रस चार सेर और कड़ुवा तेल एक सेर लेकर तीनों चीजों को किसी पात्र में डाल कर पका लेवे। जब तेल पक जाय तो उसमें पाव भर सिन्दूर डाल कर उतार ले। फिर छान कर इसकी

मालिश करने से कण्ठमाला और गलगण्ड रोग शीघ्र ही नष्ट होते हैं।

अन्त्र-वृद्धि

शरीर के किसी स्थान में आँतों के ऊपर दबाव पड़ने से आँत अपने स्थान से बाहर हो जाती है। उसको अन्त्र-वृद्धि या हार्निया-रोग कहते हैं। यों तो अन्त्र-वृद्धि शरीर के अनेक स्थानों में पाई जाती है, परन्तु विशेष कर बाईं तरफ़ नाभि के चार अङ्गुल नीचे होती है। अनेक समय बालक के नाभि-स्थल में भी अन्त्र-वृद्धि देखी जाती है। यह नाल काटने के दोष से, या नाल काटते समय बालक को खाँसी आने से, या उसकी ठीक-ठीक रक्षा न होने से उत्पन्न हो जाती है। परन्तु यह नाभि-स्थल की अन्त्र-वृद्धि विशेष भयजनक नहीं है। क्योंकि बड़ी उम्र में यह स्वतः ही बैठ जाती है। यदि बड़ी अवस्था में भी आँत न बैठे और नीचे को खसक जाय तो चिन्ता की बात होती है।

यह रोग अधिक खाँसने या कूकर-खाँसी के होने से उत्पन्न होता है। अधिक रोने से भी यह रोग कभी-कभी उत्पन्न हो जाता है। बालकों को विशेष क़ब्ज़ रहने से भी यह हो सकता है, क्योंकि क़ब्ज़ होने पर बालक मल त्यागने के लिए ज़ोर लगाता है, उससे कभी-कभी अन्त्रावरक झिल्ली फट जाती है और आँत धीरे-धीरे बाहर निकल कर नीचे अण्डकोषों की तरफ़ झुकने लगती है। इसके सिवाय

माता-पिता को यह रोग होने पर उनके बालकों को भी इस रोग के होने की सम्भावना रहती है। अन्त्र-वृद्धि की पहचान यह है कि बालक को सीधा सुला कर बाएँ तरफ़ के अण्डकोष के ऊपर उलटी अङ्गुलियाँ रख कर दबाते हुए ऊपर को लावे। यदि अन्त्र-वृद्धि होगी तो हाथ ऊपर ले जाते समय कुछ आवाज़ के साथ गुड़गुड़ाहट मालूम पड़ेगी। फिर बालक के खाँसने से उसी स्थान पर एक गाँठ नीचे को खसकती हुई ज्ञात होगी।

इस रोग की प्रथम अवस्था में ही यदि चिकित्सा की जाय तो रोग बढ़ कर असाध्य या कष्टसाध्य रूप धारण नहीं कर सकता। इसकी चिकित्सा में अधिक औषधियों का सेवन करना भी उचित नहीं है। ऐसा करने से अन्यान्य रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।

चिकित्सा—पहले बताया गया है कि इस रोग में अन्त्रावरक झिल्ली फट जाती है, जिससे आँत बाहर निकल आती है। ऐसी दशा में सिवाय ऑपरेशन के और चिकित्सा सफल नहीं हो सकती। इस ऑपरेशन के लिए योग्य सर्जन की आवश्यकता है। आयुर्वेद में इसके लिए बताया गया है कि अन्त्र-वृद्धि के होने पर वायु को शान्त करने के लिए शरीर में साधारण स्वेद देकर वायु के अनुलोमन करने के लिए दस्तावर औषधियों या आहार का सेवन करावे। क्योंकि वायु के रुक जाने पर क़ब्ज़ हो जाता है और इस

कारण रोगी को टट्टी में जोर लगाना पड़ता है। इस ज़ोर लगाने से वायु बढ़ कर आँत को बाहर निकालने की कोशिश करती है। वायु की शान्ति के लिए सदा घृत, तैलादि स्निग्ध पदार्थों का सेवन करते रहना चाहिए। इसके सिवाय आँत के निकलने की जगह पर सदैव कुण्डल-बँधनी, जिसको अङ्गरेज़ी में 'ट्रस' कहते हैं, बाँधनी चाहिए। इससे आँत बाहर नहीं निकलती और न चलने-फिरने से विशेष हानि ही होती है। इसलिए इसको बाँधना अत्यन्त आवश्यक और लाभप्रद है। बहुत से रोगी तो जन्म-पर्यन्त इसी पेटी को बाँध कर अपनी आयु व्यतीत कर जाते हैं। परन्तु इससे आँत का निकलना सर्वथा बन्द नहीं हो सकता। यह पेटी अङ्गरेज़ी दुकानों में 'हार्निया ट्रस' के नाम से मिल सकती है।

वच और सरसों अथवा सहजने की छाल और सरसों को जल के साथ पीस कर अन्त्र-वृद्धि के शोथयुक्त स्थान पर (अर्थात् जहाँ पर आँत बाहर निकलने से गाँठ-सी पड़ी हुई हो) लेप करने से इसका बाहर की तरफ़ खिंचाव बन्द हो जाता है। इसके सिवाय रोगी को एरण्ड-पाक तथा वृद्धिवाधिका वटी का सेवन भी करना चाहिए।

अण्ड-वृद्धि

अनेक बार यह रोग हार्निया (अन्त्र-वृद्धि) के साथ-साथ देखा जाता है और कभी-कभी स्वतन्त्र देखने में आता है।

अनेक समय बिना किसी प्रकार की चिकित्सा के बालक के बड़े होने पर यह स्वयं कम पड़ जाता है। यदि आसानी के साथ यह कम न हो और बढ़ता ही जाय तो चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। यदि अण्डकोषों को हिलाने या खसकाने और चलने-फिरने में अत्यन्त पीड़ा हो तो समझना चाहिए कि यह रोग किसी आघात (चोट) लगने से उत्पन्न हुआ है।

अण्डकोष के नीचे त्वचा के बीच में जल भर जाने से वह दबाने पर पिलपिल या चकचक करता है और अण्ड-कोष का आकार बढ़ जाता है। यह प्रायः लम्बाई के रुख में बढ़ा करता है, पर कभी-कभी गोलाकार रूप में भी बढ़ता देखा गया है।

चिकित्सा—हम लिख चुके हैं कि इस रोग में बहुत से बालक स्वतः अच्छे हो जाते हैं। यदि ऐसा न हो तो बड़ी सावधानी से चिकित्सा करनी चाहिए। अनेक समय अण्ड-कोषों को दबा कर बाँध देने से बड़ा उपकार होता है, या हर समय लँगोट बाँधे रहने से भी बहुत लाभ पहुँचता है। आयुर्वेद में इसकी चिकित्सा निम्न-लिखित रीति से बतलाई गई है :—

१—हरड़ को गो-मूत्र में बारीक पीस, उसमें सेंधा नमक तथा पीपल मिला कर लेप करने से सात दिन में अण्ड-वृद्धि का रोग शान्त हो जाता है। इस दवा को पी भी सकते हैं।

२—नींबू के पत्तों को सेंक कर घी चुपड़ के गरम-गरम सेंक करने से यह रोग कुछ ही दिनों में शान्त हो जाता है।

३—लजवन्ती और गीध की बीट (मल)—दोनों को पानी में बारीक पीस कर गरम लेप करने से अण्ड-वृद्धि रोग शान्त होता है।

४—वायु द्वारा वृद्धि होने पर अण्ड-कोषों में नारायण और विषगर्भ तैल की गरम हाथों से मालिश कर ऊपर से गरम पान बाँधने से तीन दिन में सब पीड़ा शान्त हो जाती है।

५—कफ की वृद्धि में देवदारु के बुरादे को गो-मूत्र में बारीक पीस कर गरम लेप करने से अथवा थोड़ी मात्रा में पिलाने से अण्ड-वृद्धि शान्त होती है।

६—अण्ड-कोषों में जल भर जाने पर किसी योग्य चिकित्सक से पिचकारी द्वारा जल निकलवा देना चाहिए। जब दुबारा जल भर जावे तो फिर निकलवा देवे। अण्डकोष को ठण्ढ से बचावे और कभी-कभी गरम लेप तथा सेंक करता रहे।

गुदा-भ्रंश या काँच निकलना

पेचिश के बहुत पुरानी और भयङ्कर हो जाने से, अथवा एकाएक अतीसार के होने से, अथवा क़ायमी क़ब्ज़ के रहने से बालकों को दस्त के लिए प्रायः ज़ोर लगाना पड़ता है जिससे उनकी गुदा की बन्धनियाँ ढीली पड़ जाती हैं और

गुदा बाहर निकल आती है। इसके निकलने पर बालक को प्रायः कोई विशेष दुःख प्रतीत नहीं होता, पर गुदा को भीतर करने में कुछ दर्द अवश्य होता है।

चिकित्सा—गुदा-भ्रंश की अवस्था में रोगी के उकड़ बैठने, खाँसी, क़ब्ज़ के होने तथा कूदने-फाँदने आदि के विषय में विशेष सावधान रहना चाहिए। इस रोग में नीचे लिखे उपाय लाभदायक हैं:—

१—काँच के निकलने पर उसको साफ़ कर धीरे से हाथ के तलुवे के सहारे भीतर डालना चाहिए। फिर एक पत्थर गरम करके उससे गुदा में सेंक करे। इससे यह रोग थोड़े दिन में अच्छा हो जाता है।

२—आयुर्वेद के शल्यतन्त्र में गुदा-भ्रंश को रोकने या बाँधने के लिए गोफण-बन्धन नामक यन्त्र का प्रयोग लिखा है। इसकी आकृति खेतों में पक्षी आदि को उड़ाने के लिए बनाए हुए गोफिए के समान होती है। इसको गुदा में बाँध कर औषधि सेवन कराने से गुदा-भ्रंश रोग नष्ट होता है।

३—चाङ्गेरी (लूनिया) का रस सवा पाँच सेर, सूखी मूलियों का क्वाथ सवा पाँच सेर, दही का पानी सवा पाँच सेर, सोंठ तथा जवाखार दस-दस तोला, घी एक सेर ले। पहले सोंठ को पीस कर कल्क बना ले और उसमें जवाखार मिला कर, सबको एकत्र करके पकावे। जब घी मात्र अवशेष रहे, उतार कर छान ले। इस घी के सेवन कराने से

गुदा-भ्रंश, अतीसार, ग्रहणी, अजीर्ण आदि रोग दूर होते हैं। इसका नाम चाङ्गेरी-घृत है।

४—पुरानी चलनी का चमड़ा जला कर पानी में घिस कर गुदा के चारों ओर बाहर लेप करते रहने से कुछ दिनों में आराम होता है।

५—आम और जामुन की छाल और पत्तों का क्वाथ बना कर गुदा में गुनगुना लेप कर दे। और उसी समय बालक को शौच करावे। इससे काँच निकलना बन्द हो जाता है।

६—गुदा में कड़वा तेल लगावे और फिर लिसोड़े को जला और पानी में घिस कर उस स्थान में लगा दे। इससे कुछ दिनों में यह रोग शान्त हो जाता है।

उपदंश

माता-पिता को अथवा वंश में यह रोग होने से बालकों को भी इसका फल भोगना पड़ता है। जिन माता-पिता को उपदंश-रोग होता है, उनके बच्चों को जन्म से ही यह घेर लेता है। कभी-कभी कुछ दिनों के बाद भी प्रकट होता देखा जाता है।

इस रोग में बालकों के शरीर में खुजली होती है और घाव भी हो जाते हैं। बालक का शरीर पुष्ट नहीं होता और नासिका से अच्छी तरह निश्वास नहीं चलता। एक प्रकार का शब्द होकर वायु नासिका में प्रवेश करती है। बालक

को सदा सर्दी लगती रहती है और वह सदैव रोता रहता है। शरीर में वायु-विकार, अस्थि-वेदना और अस्थि-क्षय के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। दाँत अच्छी तरह नहीं निकलते और निकलने पर छोटे-छोटे तथा नुकीले होते हैं। वे थोड़े ही दिनों में नष्ट हो जाते हैं। शरीर में स्थान-स्थान पर चकत्ते और धब्बे से पड़ जाते हैं। शरीर सूखा और त्वचा सिकुड़ी हुई रहती है। इसकी चिकित्सा अनेक दिन तक और सावधानी के साथ करनी चाहिए।

चिकित्सा—आजन्म उपदंश में मर्करी (रस-कपूर) प्रायः जादू का सा असर रखता है। रस-कपूर को मलहम के रूप में प्रयोग करने से विशेष फल प्राप्त होता है। अथवा खड़िया मिट्टी के चूर्ण के साथ आध ग्रेन से १ ग्रेन तक मात्रा में रस-कपूर का प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु इससे अत्यन्त दस्त लगने की सम्भावना रहती है। दुर्बलता के लक्षण प्रकट होने पर बड़ी सावधानी से रस-कपूर देना उचित है। रस-कपूर के प्रयोग करते समय बालक की शक्ति के विषय में विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। इस दशा में अल्प मात्रा में "कॉड लिवर ऑइल" (मछली का तेल) देने से विशेष उपकार होता है। यदि माता बालक को दूध पिलाने में असमर्थ हो तो अन्य कृत्रिम उपायों से बालक का पोषण करना चाहिए। परन्तु किसी शुद्ध शरीर वाली धाय को दूध पिलाने के लिए नहीं रखना चाहिए।

क्योंकि ऐसी दशा में स्तन-पान कराने से धाय के स्तनों में उपदंश का क्षत होने की सम्भावना रहती है। परन्तु बालक की माँ इस प्रकार के क्षत से पीड़ित नहीं हो सकती।

आजन्म उपदंश की शेष अवस्था में "आयोडाइड ऑफ पोटाशियम" दिया जा सकता है। इसके साथ अल्प मात्रा में रस-कपूर देने से प्रायः बड़ा लाभ होता है। गर्भावस्था में माता अथवा पिता के शरीर में यदि उपदंश के लक्षण प्रकट होवें तो गर्भिणी को ही रस-कपूर का सेवन कराना आवश्यक है। बालक उपदंश-रोग-ग्रस्त ही उत्पन्न हो तो माता-पिता दोनों को ही भविष्य के विषय में सावधानी रखना आवश्यक है।

नीम की छाल, उसबा, हरड़, सनाय—दो-दो तोले; खरेंटी, मुण्डी, चिरायता, काला-सफेद दोनों अनन्तमूल, पित्तपापड़ा, लाल चन्दन, गुलाब के फूल, नीलोफर, गिलोय, अडूसा, मेंहदी के पत्ते—एक-एक तोला; चोपचीनी दो तोले—सबको जौकुट करके ढाई सेर पानी में पकावे। चौथाई रहने पर उतार-छान उसमें पाव भर मिश्री डाल कर चाशनी करले। जब शरबत तैयार हो जाय तो उसे उतार, बोतल में रख ले। इसमें से प्रतिदिन छः माशे सुबह-शाम पिलाने से बालक का उपदंश शान्त हो जाता है। शरीर में छाले या उपदंश के घाव हो जाने पर इसके क्वाथ से धोवे। अथवा नीम के क्वाथ से या मर्करी-लोशन से धो दिया करे और

उन पर मर्करी (रस-कपूर) का ही मरहम लगावे। रोग की विशेष अवस्था में वैद्य की सम्मति के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

ऐकज़िमा या छाजन

यह रोग मनुष्यों को सदैव तथा शरीर के सभी स्थानों में उत्पन्न हो सकता है। बाल्यावस्था में अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा अधिक होता है। इसमें त्वचा के ऊपर छोटी-छोटी फुन्सियाँ उठती हैं। त्वचा लाल होकर उस स्थान में बड़ी खुजली चलती है, खुजाने से घाव होकर पीले रङ्ग का रस (जल) निकलने लगता है। कभी-कभी इसमें से रक्त और पीब भी निकलने लगता है। इसके अनेक भेद होते हैं। किसी को पहले एक फफोले के सदृश दाना उठता है, उसको फोड़ देने से घाव हो जाता है। किसी को एक बारगी पीब भरी हुई फुन्सी पैदा होती है और उसके फूटने पर घाव हो जाता है। किसी को पहले त्वचा में लाल रङ्ग की फुन्सी हो जाती है और खुजाने से उसमें से स्राव होने लगता है और वह स्थान शोथयुक्त हो जाता है।

चिकित्सा—इसकी चिकित्सा में प्रायः बाहरी लगाने और धोने की औषधियों का व्यवहार किया जाता है। इसके लिए कार्बोलिक, बोरेसिक अथवा अन्य प्रकार की पाकनिवारक औषधियों को धोने के काम में लाना चाहिए। कार्बोलिक सोप (साबुन), या कोलतार सोप के द्वारा आक्रान्त स्थान

को अच्छी तरह धोकर अन्यान्य औषधियों को घाव अच्छा करने के लिए लगाना चाहिए। बाल्यावस्था में प्रायः शिर में ऐक्ज़िमा उत्पन्न होता है। ऐसी दशा में शिर के बालों को कटा कर कार्बोलिक तेल लगा कर शिर में पुलटिस या मरहम लगाना चाहिए। इसके बाद लेड अथवा ज़िङ्क का मरहम प्रयोग करना चाहिए। रक्तस्राव होने पर बिस्मिथ या ज़िङ्क का मरहम लगाना लाभदायक है। पुराने ऐक्ज़िमा में पाइसिस का मरहम लगाना लाभदायक है। अथवा रस-कपूर $\frac{1}{200}$ भाग जल में मिला कर उससे धोना चाहिए और फिर डस्टिङ्ग पाउडर ऊपर से बुरक देना चाहिए। अथवा नीम के जल से धोकर उस पर कबीला, कत्था, मुरदाशङ्ख और सीप या कौड़ी का चूर्ण बुरक देना चाहिए। खाने की औषधि के लिए उपदंश-प्रकरण में लिखा हुआ रक्तशोधक शरबत देना चाहिए।

पामा या खुजली

बालकों की सफ़ाई-सुथराई न रखने से, या भोजन का समय नियत न होने से, या ठण्ढ-गरम चीजें बिना क्रम के खिलाने से, या शरीर में तेल की मालिश न करने से खुजली का रोग हो जाता है। इसमें छोटी-छोटी अनेक फुन्सियाँ, खाज और जलन के साथ शरीर में उत्पन्न हो जाती हैं। इसके दो भेद होते हैं। एक सूखी खुजली और दूसरी गीली खुजली। सूखी खुजली में छोटे-छोटे दाने से निकलते हैं।

उनमें से किसी प्रकार का पीब या जल नहीं निकलता। परन्तु गीली खुजली में फफोले के समान स्राव वाली पिडिकाएँ उत्पन्न होती हैं। उनके फूटने पर शरीर में घाव होकर खुजली चलती है। इस रोग में निम्न-लिखित प्रयोग हितकारी बहुत हैं :—

१—चौकिया सुहागा, फूली फिटकरी और कवीला—तीनों को बराबर लेकर खरल में डाल कर बारीक घोट ले। उसमें मरहम हो जाने के योग्य सरसों का तेल मिला कर २-३ दिन तक बराबर घोटता रहे। इसके लगाने से दाद, खाज, फोड़ा, फुन्सी सब दूर होते हैं।

२—खस, लाल चन्दन, पद्माक—तीनों को जल में बारीक पीस कर लेप करने से बालकों की सूखी खुजली शीघ्र दूर हो जाती है।

३—वायविडङ्ग, बच, कूट और चक्रमर्द (पमाड़)—इनका क्वाथ बना कर उससे बालक को स्नान कराने से दोनों प्रकार की खुजली अच्छी होती है।

४—घर का धुआँ, हल्दी, कूट, राई और इन्द्रजौ—इनको मठे के साथ बारीक पीस कर लेप करने से बालकों के सीप, खुजली आदि रोग दूर होते हैं।

खाल का लग जाना

इस रोग को अङ्गरेजी में "चेफिङ्ग ऑफ इन्फ़ेण्टम" कहते हैं। यह सभी जानते हैं कि बालकों की त्वचा अत्यन्त

कोमल होती है। सामान्य कारण से भी उनकी त्वचा उपड़ कर क्षत हो जाता है। वालक की खाल, विशेष कर कोख, कोहनी, घुटने, रान और जाँघों में चिपकी रहती है। इस कारण इन स्थानों में खाल लग जाती है। इन स्थानों को अच्छी तरह साफ़ न करने से मैल जम जाता है और कच्ची खाल होने के कारण वह लग जाती है। इसके सिवाय माता या धाय की असावधानी के कारण ज़ोर से मलने या उवटन करने या धोने से भी वहाँ की त्वचा छिल जाती है और खाल लग जाया करती है।

त्वचा या चमड़े के लाल होने पर उसमें से रस (पानी) निकलने लगता है और जलन होती है। कभी-कभी त्वचा के समीपवर्ती स्थान खिंचे हुए शोथयुक्त हो जाते हैं। इससे वालक को वहुत कष्ट होता है और वह वेचैन होकर रोता रहता है।

चिकित्सा—खाल लगे हुए स्थान में वड़ी सावधानी से सफ़ाई करनी चाहिए। पानी निकलने पर घाव फैल कर वढ़ जाता है। इसलिए पानी निकलना शीघ्र वन्द कर देना चाहिए। क्षत के स्थान को मैदे की लोई से साफ़ कर उस पर मुँह में लगाने का पाउडर छिड़क देना चाहिए। अथवा लगा हुई खाल के स्थान पर धीरे से कड़वा तेल लगा कर, आटे की लोई से जमा हुआ मैल निकाल कर, नित्य-प्रति गरम जल से धो देना चाहिए।

गञ्ज-रोग

बालक के खान-पान के दोष से कफ और वायु की ख़राबी उत्पन्न होकर बाल गिरने लगते हैं, शिर की त्वचा बड़ी कठिन, रूक्ष तथा देखने में बहुत ही ख़राब हो जाती है। इसके साथ उसमें खाज के चलने से घाव हो जाते हैं। इस रोग की चिकित्सा-विधि इस प्रकार है :—

१—पहले बालक के शिर को नीम के गरम जल या नीम के साबुन से धो डाले। फिर चिरौंजी-बीज, मुलैठी, कूट, उड़द और सेंधानमक—सबको समान भाग में लेकर काँजी के साथ पीस ले और उसमें शहद मिलाकर बालक के शिर में लेप करे। इस प्रयोग से गञ्ज बिल्कुल शान्त हो जाता है।

२—शिर को नीम के जल या साबुन से धो डाले। फिर आम की गुठली और छोटी हरड़ दोनों को बराबर लेकर दूध में पीस कर लेप करे। इससे भयङ्कर गञ्ज-रोग शान्त हो जाता है।

३—नीम की पत्तियों के जल से शिर को धोकर साफ़ कर दे। फिर गन्धक और चूना आधी-आधी छटाँक लेकर तीन पाव जल में औटावे। जब डेढ़ पाव या आध सेर जल रहे तो उतार-छान कर रख ले। इसमें से प्रति दिन गञ्ज की जगह कबूतर के पङ्ख से लगा दिया करे। इससे कुछ ही दिनों में यह रोग अच्छा हो जाता है।

४—गाय के घी को अच्छी तरह धोकर उसमें कबीला, तूतिया, मुर्दाशङ्ख—प्रत्येक एक-एक तोला पीस कर मिलावे। इस मरहम के प्रतिदिन शिर में लगाने से गञ्ज शान्त हो जाता है।

५—लोह का कीट, त्रिफला, अनन्तमूल—इनको मिला कर एक पाव ले और जल में पीस लुगदी बना ले। फिर भाँगरे का रस चार सेर, तिल का तेल एक सेर और जल चार सेर लेकर सबको मिला कर पकावे। पक जाने पर उतार-छान कर रोज शिर में लगाया करे। इससे गञ्ज-रोग मिट जाता है। इसका नाम भृङ्गराज तैल है।

६—गुञ्जा या चिरमिठी (घुमची) पाव भर, तिल का तेल एक सेर और भाँगरे का रस चार सेर लेकर, पहले घुमची को जल में पीस के उसमें तेल, भाँगरे का रस तथा चार सेर जल मिला कर पकावे। इसको शिर में लगाने से खुजली, गञ्ज, कोढ़ आदि व्याधियाँ नष्ट होती हैं।

७—गाय के दूध के साथ पोस्त के बीजों को बारीक पीस कर शिर धोकर लेप करे। इससे गञ्ज मिट जाता है।

८—छोटी कटेली के फलों का रस निकाल कर और उसके बराबर तेल डाल कर आग पर पकावे। इस तेल को मलने से गञ्ज शीघ्र ही मिट जाता है। इसी तरह गुड़हल के फूलों का रस तेल में मिला कर पका ले। इसके लगाने से भी गञ्ज शान्त हो जाता है।

विसर्प

मिथ्या आहार-विहार के कारण तीनों दोषों के प्रकोप से बालक के शिर या वस्ति (मसाना) स्थान में लाल कमल के समान रङ्ग वाला विसर्पण शील (फैलने वाला) एक फोड़ा होता है। इसको महापद्म-रोग कहते हैं। इसके उत्पन्न होकर फैलने से बालक की मृत्यु हो जाती है। मस्तक या शिर में उत्पन्न हुआ विसर्प कनपटियों से होकर छाती और हृदय में पहुँचता है। और वस्ति में उत्पन्न हुआ विसर्प गुदा आदि स्थानों में फैलता है। इस रोग में बड़ी सावधानी से चिकित्सा करनी चाहिए।

लक्षण—इसमें स्थानिक शोथ के साथ दाह, जलन, वेदना रहती है, बालक को ज्वर रहता है, उसे चैन नहीं पड़ता और हर समय रोता है। उस स्थान पर ठण्ढी चीजों के लगाने से उसे आराम जान पड़ता है। जहाँ पर उसे ठण्ढ मालूम पड़ती है, वहाँ सोता है। उसकी आँखें कुछ लाल और तेज दिखाई पड़ती हैं।

चिकित्सा—इस रोग में बालक का ज्वर शान्त करने के लिए हरड़ और बहेड़े के फल की छाल, आँवला, पटोलपत्र, हल्दी, चिरायता और नीम की छाल—इनका क्वाथ बना कर दोनों समय योग्य मात्रा में पिलाना चाहिए। इससे बालकों का विसर्प, व्रण, विस्फोट और रक्त-विकार दूर हो जाते हैं। ज्वर के कम हो जाने पर निम्न उपचार करने चाहिएँ:—

अनन्तमूल, कमलगट्टा, इलायची छोटी, खस, नागरमोथा, नीलोफर, मजीठ, मुलैठी, लाल चन्दन, सफ़ेद चन्दन और सरसों—ये सब समान भाग में लेकर जल के साथ पीस कर मोटा-मोटा लेप बार-बार करते रहने से उभड़ता हुआ बालकों का विसर्प बैठ जाता है।

दाह की अधिकता में बड़, पीपल, गूलर, पाकर, पारिस पीपल—इनकी छाल जल में पीस कर उसमें सौ बार धोया हुआ घी मिला कर लेप करे। इससे दाह बहुत शीघ्र शान्त होता है।

विसर्प की बहुत बढ़ी हुई दशा में किसी चतुर जर्राह या डॉक्टर से उस स्थान का रक्त निकलवा देना चाहिए। यदि विसर्प पक जाय तो उसे नीम के जल से धोकर रोज़ उस पर सौ बार धोए हुए घी का लेप करना चाहिए। अथवा कसेरू, कमलगट्टा, पद्माक, नीलोफर, मुलैठी, लाल चन्दन, खरेंटी—इनको जल के साथ बारीक पीस कर सौ बार धोए हुए घी में मिला कर पुलटिस की तरह लेप कर देना चाहिए।

पथ्य—इसमें बालक को दूध, मुनक्का, दूध-चावल, सेब, अनार, दूध-बार्ली या दूध-साबूदाना देते रहना चाहिए। भारी अन्न तथा गरम और तेज़ मसाले खाना, अग्नि या धूप में बैठना, खट्टे, नमकीन, चरपरे आदि पदार्थों का सेवन करना हानिकारक है।

साधारण विसर्प

इसको अङ्गरेज़ी में "एरिसिपेल्स न्यूटोरस" कहते हैं। अनेक समय नाभि-नाल की शिरा में शोथ उत्पन्न होने पर यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इसके सिवाय ठण्ढ के लगने से भी यह उत्पन्न होता । इसमें पहले चमड़े के ऊपर किसी स्थान में सामान्य रूप में एक लाल रङ्ग का दाग़ (चिह्न) दिखाई देता है। वही धीरे-धीरे सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है। इससे बालक अत्यन्त दुखी होता है और बहुत अधिक रोता । वह बेचैन होकर हाथ-पैरों को छटपटाता है और उसे नींद नहीं आती है। इसके साथ ज्वर भी होता रहता है। शोथयुक्त या दाग़ वाला स्थान फूल जाता है और उसमें घाव होकर पानी निकलने लगता है। इस तरह धीरे-धीरे शरीर में बहुत फैल जानेसे बालक दुबला होकर अन्त में मृत्यु के मुख में चला जाता है। पहले लिखा हुआ महापद्म नामक विसर्प आयुर्वेद के अनुसार नियत स्थानों में ही उत्पन्न होता है और वह इसकी अपेक्षा अधिक भयानक होता है। साधारण विसर्प को हिन्दी में अगौना कहते हैं। इसमें निम्न-लिखित प्रयोग लाभकारी हैं:—

१—चिरायता, अडूसा की छाल, कुटकी, पटोलपत्र, नीम की छाल, हरड़, बहेड़ा, आँवला—इनको समान भाग लेकर क्काथ बना कर उचित मात्रा में बालक को पिलाने से सब प्रकार का विसर्प और विसर्प-जन्य ज्वर, दाह, शोथ,

खाज, तृष्णा और वमन आराम होते हैं। यदि बालक दूध पीने वाला हो तो उसकी माता को यह क्वाथ दिन में दो बार पिलाना चाहिए और बालक के व्रण पर लेप करना चाहिए।

२—शिरस, तगर, मुलैठी, लाल चन्दन, छोटी इलायची, जटामाँसी, हल्दी, दारुहल्दी, कुड़ा की छाल और नेत्रबाला—इन दस औषधियों को जल के साथ बारीक पीस कर विसर्प के स्थान पर लेप करना चाहिए। इसका नाम दशाङ्ग लेप है।

३—रास्ना, नीलोफर, देवदारु, रक्त चन्दन, मुलैठी, खरेंटी—इन द्रव्यों को समान भाग में गाय के घी और दूध के साथ पीस कर लेप करना चाहिए। इससे वात-विसर्प के सब विकार दूर होते हैं।

४—बड़ की कोंपल, गिलोय, केले के फूल और भसीड़ा—इन द्रव्यों को जल या दूध के साथ पीस कर लेप करने से पित्त-विसर्प अच्छा होता है।

५—त्रिफला, पद्माक, खस, कोयल सफ़ेद, सफ़ेद कनेर की जड़, अनन्तमूल—इन द्रव्यों को जल में पीस कर लेप करने से कफ-विसर्प के समस्त विकार दूर होते हैं।

व्रण

यह रोग बालक को अनेक समय बड़ा दुखदाई हो जाता है। प्रायः पुराने व्रण ग्रीष्म-ऋतु के आते ही बड़े कष्ट-दायक हो जाते हैं। इसके सिवाय बालकों के व्रण कभी

अच्छे हो जाते हैं और कभी फिर उभरने लगते हैं। इस रोग में नीचे लिखे प्रयोग लाभदायक हैं :—

१—दूध पीने वाले बच्चों के व्रण होने पर उनकी माताओं को रक्त-शोधक औषधि सेवन कराना चाहिए। साथ ही बालकों के घाव को धोकर कवीला, मुरदाशङ्ख, कत्था, कौड़ी की भस्म बुरक देनी चाहिए या इनके चूर्ण को घी में मिला कर लेप करना चाहिए।

२—श्वेत कनेर की पत्ती दो तोले पानी में महीन पीस कर आध पाव कड़वे तेल में पकावे। जब पत्तों की लुगदी जल कर काली पड़ जाय तो उसे नीचे उतार लोहे के डण्डे से ख़ूब घोट कर मरहम बना ले। इस मरहम के लगाने से सब प्रकार के व्रण अच्छे होते हैं।

३—मुरदाशङ्ख, पपड़िया कत्था, कायफल, माजूफल, गोदन्ती-हरताल, सोना-गेरू, सिङ्गरफ, कवीला, रस-कपूर—प्रत्येक दो-दो तोले; भुना तूतिया १ तोला, सात पीली कौड़ियों की भस्म—इन सबको पीस कर कपड़छन करके सौ बार ठण्ढे जल में धोए हुए घी में मिला कर ख़ूब खरल करे और पानी डाल कर घोटता रहे। मरहम के अच्छी तरह घुट जाने पर इसको २० या ३० बार ठण्ढे जल से धो डाले और एक काँच या चीनी के पात्र में रख ले। इसके लगाने से बालकों के सब प्रकार के फोड़े, फुन्सी, विसर्प आदि शान्त होते हैं।

४—सूखे आँवलों को जला कर उसकी भस्म को घी में मिला बालकों के व्रणों पर लगाने से घाव सूख जाते हैं।

५—रेवतचीनी को चन्दन की तरह किसी चिकने पत्थर पर घिस कर लेप करने से बालकों के फोड़े-फुन्सी शीघ्र अच्छे हो जाते हैं।

किसी रोग के कारण उत्पन्न व्रणों को रोग के अनुसार औषधि लगा कर अच्छा करना चाहिए।

अजगल्ली या इल्ला

मिथ्या आहार-विहार के कारण कफ और वायु-दोष के कुपित होने से बालकों के शरीर में मूँग के बराबर एक ग्रन्थि (गाँठ) पैदा हो जाती है। उस गाँठ का रङ्ग शरीर के अनुसार होता है। वह देखने में चिकनी और पीड़ा-रहित होती है। जब वह बहुत बढ़ जाती है तो बकरी के गले में उत्पन्न थन के आकार की हो जाती है। इसलिए उसे अजगल्लिका (इल्ला) कहते हैं।

चिकित्सा—जब यह गाँठ कच्ची हो तभी जोंक लगवा कर उसका रक्त निकलवा देना चाहिए। इस रक्त के निकलने से उसमें रुके हुए कफ और वायु भी निकल जाते हैं। रक्त निकल जाने के पश्चात् उस पर जंवाखार, फिटकरी और सीप की भस्म को जल में पीस कर लेप कर दे। यदि ग्रन्थि कठिन हो और पूर्वोक्त औषधि से दूर न हो तो तेज़ाब लगा कर उसको गलाना चाहिए और काली निसोथ, कलिहारी की

जड़, मरोड़फली की जड़ को पीस कर उस पर लेप करना चाहिए। गाँठ के पक जाने पर उसका पीब निकाल डाले और धोकर मरहम आदि लगा कर व्रण (घाव) के समान चिकित्सा करे।

वृषण-कच्छू

बालक को यथोचित रीति से स्नान न कराने तथा उबटन न लगाने से उसके शरीर में मैल जम जाता है। विशेषकर यह मैल अण्डकोषों की त्वचा में जमता है, क्योंकि वहाँ की त्वचा विशेष रूप से सिकुड़ी हुई और चुन्नटदार होती है। शरीर में पसीने के आने से वह मैल गीला हो जाता है और उसमें खाज चलने लगती है। जब बालक उसे अधिक खुजा देते हैं, तो उसमें फफोला पड़ जाता है और वह फूट कर रिसने लगता है। ऐसी दशा में यदि चिकित्सा की जाय तो उसकी वृद्धि नहीं होने पाती। परन्तु ठीक चिकित्सा न होने पर वह धीरे-धीरे चारों तरफ फैल जाता है और पकने लगता है। साथ ही अण्डकोषों में शोथ हो जाता है तथा दर्द होने लगता है। इससे बालक अच्छी तरह चल-फिर नहीं सकता।

चिकित्सा—वृषण-कच्छू के ऊपर पहले थोड़ा तेल लगावे। फिर राल, नेत्रबाला, कूट, सेंधानमक सफेद सरसों—इन सबको समान भाग में लेकर जल में पीस लुगदी बना ले, और धीरे-धीरे अण्डकोषों में उबटन करे। इससे रोग शान्त

हो जाता है। यह दवा इस रोग की आरम्भिक दशा में लाभदायक होती है।

रोग के बढ़ जाने पर व्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिए। अथवा घाव को धोकर उसमें हीराकसीस, गोलोचन, शुद्ध तूतिया, हरताल और रसौत—इनको समान भाग में काँजी में पीस कर लेप कर दे। इससे अण्डकोषों की खुजली बन्द हो जाती है। परन्तु यह लेप बहुत छोटे बालकों के लिए प्रयोग नहीं करना चाहिए।

अहिपूतन रोग

कितनी ही माताएँ या धाय बालक के दस्त जाने पर उसकी गुदा को धोने की परवा नहीं करतीं। ऐसी दशा में बालकों की गुदा में मल धीरे-धीरे चिपक जाता है और कभी एकाएक स्नान कराने या ग्रीष्म-ऋतु में पसीना आने से फूल जाता है। उसमें रक्त तथा कफ की ख़राबी से खाज चलने लगती है। अधिक खुजाने से गुदा में उस स्थान पर एक फफोला उत्पन्न हो जाता है और उसके फूटने से पानी बहने लगता है। इस तरह गुदा में कई छोटे-छोटे फफोले उत्पन्न हो जाते हैं और बहने लगते हैं। अन्त में सब मिल कर भयानक रूप धारण कर लेते हैं और गुदा में बड़ा भारी घाव हो जाता है, जिससे बालक को बड़ी तकलीफ़ रहती है। इससे उसे मल-मूत्र करने में बड़ा कष्ट होता है। इसको अहिपूतन रोग कहते हैं।

चिकित्सा—इस रोग के उत्पन्न होने पर चिकित्सक को चाहिए कि सबसे पहले माता के दूध को शुद्ध करने की औषधि दे। दूध शुद्ध करने के लिए पहले कितने ही प्रयोग लिखे गए हैं। फिर माता को एक या दो हलका विरेचन (जुलाब) देकर उसके कोठे को शुद्ध कर लेना चाहिए। क्योंकि माता या धाय के दूध में विकृति या गर्मी होने से बालक की गुदा का घाव दिन पर दिन बढ़ता ही रहता है। स्तन शुद्ध करने के बाद त्रिफला या खैर की छाल या नीम के पत्तों का क्काथ बना कर प्रतिदिन गुदा के व्रण को अच्छी तरह धोना चाहिए। अथवा गरम जल में बोरिक एसिड डाल कर उससे धोना चाहिए। धोने के बाद उसमें निम्न-लिखित औषधियों का लेप करना चाहिए :—

१—शङ्ख-चूर्ण, काला सुरमा और मुलैठी—इन सबको जल में पीस कर पतला लेप बना ले। इस लेप को लगाने से बालकों का अहिपूतन (गुदा-व्रण) रोग बहुत जल्द शान्त हो जाता है।

२—पटोल के पत्ते, त्रिफला और रसौत—इनको कुल मिला कर पाव भर लेकर जल में पीस कर लुगदी बना ले। फिर उसे एक सेर गाय का घी और चार सेर जल में डाल कर मन्द अग्नि से पका कर घी तैयार कर ले। इस घी के पिलाने और लगाने से कष्टसाध्य अहिपूतन रोग नष्ट हो जाता है।

शोथ या सूजन

अतीसार तथा ज्वर आदि रोगों के कारण; या खारी, खट्टी, तेज़, गरम और भारी चीज़ों के खाने से, या विरोधी, सड़ा-गला, बासी आहार करने से बालकों के शरीर में सूजन हो जाती है। इस प्रकार के शारीरिक दोष-जन्य शोथ में निम्न-लिखित औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। खाने-पीने के नियम भी ठीक रखने चाहिएँ :—

१—नागरमोथा, पेठे के बीज, देवदारु, इन्द्रजौ और पुनर्नवा—इन सब औषधियों को जल में पीस कर पतला लेप करने से शोथ नष्ट होता है। अथवा इन्हीं औषधियों के उबटन करने से भी शोथ शान्त हो जाता है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि शोथ की चिकित्सा करने के पूर्व बालक को लघु विरेचन या वस्ति देना ज़रूरी है।

२—देवदारु, गूगल और सोंठ—इनको गो-मूत्र में महीन पीस कर गुनगुना लेप करने से बालकों का सर्वाङ्ग-शोथ शान्त होता है।

३—आक की छाल, नीम की छाल, नीम के पत्ते तथा पुनर्नवा—इनके गुनगुने क्वाथ से बालक को स्नान कराने से शोथ नष्ट होता है।

आँख दुखना

इस रोग को आयुर्वेद में नेत्राभिष्यन्द, अङ्गरेज़ी में "अपथेलमिया" और हिन्दी भाषा में आमतौर से आँख दुखना या

आँख का उठना कहते हैं। यह अत्यन्त भयानक रोग है। बड़ी उमर के मनुष्यों के लिए यह अधिक भयानक या विपत्तिकारक नहीं होता। किन्तु सद्यःप्रसूत (एक-दो महीने के) बालक को नेत्राभिष्यन्द होने पर सावधानी से चिकित्सा न करने से आँखें नष्ट होने की सम्भावना रहती है।

लक्षण—इसमें आँख फूल कर लाल हो जाती हैं। इसकी वेदना, ज्वाला और यन्त्रणा इतनी भयानक होती है कि बालक बेचैन होकर रोता ही रहता है। आँखों की सूजन बढ़ कर उनमें पीब पड़ जाता है। आँखें बन्द हो जाती हैं, अर्थात् पलक चिपक जाते हैं और कीचड़ जम जाता है। कभी आँखों में सूजन होकर इतना तनाव हो जाता है कि रोगी किसी तरह भी देख नहीं सकता।

कारण—अधिकतर ठण्ढ के लगने से यह रोग होता देखा गया है। कभी-कभी विशेष गर्मी-सर्दी के कारण भी उत्पन्न हो जाता है। प्रसूता स्त्री के प्रमेह अर्थात् श्वेतप्रदर (ल्यूकोरिया) रोग-ग्रस्त होने पर उसका विषैला पदार्थ बालक की आँखों में लगने से अनेक समय यह रोग उत्पन्न होता है। इसके सिवाय दाँतों के निकलने से और दूध पिलाने वाली की आँख दुखने से भी यह उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—इस रोग में विशेष सावधानी से अच्छी तरह आँखों के न धोने, शुद्ध वायु के सेवन न करने तथा बालक के शरीर को साफ-सुथरा न रखने पर केवल औषधियों

के सेवन करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। जब आँख दुखने आवे तो पहले तीन दिन किसी प्रकार की औषधि का प्रयोग न करे। क्योंकि पहले से ही चिकित्सा करने से दोषों का वेग रुक जाता है और पीछे बहुत दिनों तक कष्ट देता रहता है।

१—आँखों में लाली अधिक होने या जलन के विशेष होने पर लोध की छाल को जौकुट कर घी में सेंक ले। उसकी पोटली बाँध कर धीरे-धीरे सुहाता सेंक करना चाहिए। इससे लाली और जलन की पीड़ा शान्त होती है।

२—दारुहल्दी, रसौत, फिटकरी, लोध, सेंधानमक, हल्दी, हरड़—इनकी पोटली बना कर मिट्टी के पात्र में रक्खे हुए जल में भिगो कर ठण्ढा लगाते रहने से गर्मी से दुखने वाली आँखों में विशेष लाभ होता है।

३—आँवला और लोध को पानी के साथ पीस कर पलकों पर गुनगुना लेप करने से आँख की पीड़ा और ललाई दूर हो जाती है।

४—अनार की पत्ती पीस कर पलकों पर लेप करने से तुरन्त लाभ होता है।

५—दो रत्ती अफ़ीम ले लोहे के पात्र में इमली के पत्तों के रस के साथ पका ले। पलकों पर इसका गुनगुना लेप करने से ललाई और पीड़ा दूर होती है।

६—दारुहल्दी और उसका भेद (चोतरा) लोध की

छाल—इन दोनों औषधियों को एक-एक पाव लेकर जौ कुट करके दो सेर पानी में बारह घण्टे भिगो दे। फिर उसको पका कर क्वाथ बना ले। जब चौथाई रहे, उतार-छान कर और एक मात्रा अफीम मिला कर फिर उसे कढ़ाई में पकावे। जब पकते-पकते गाढ़ा हो जाय तो उतार कर किसी काँच या चीनी के बरतन में रख ले। इसको बालक की आँखों के बाहर पलकों में चारों तरफ़ लेप करने से आँखों की सूजन, दर्द और ललाई दूर होती है।

७—फुलाई हुई फिटकरी, रसौत और लोध की छाल एक-एक माशा और अफ़ीम दो रत्ती लेकर लोहे के पात्र में काग़ज़ी नींबू के रस में घोटे। इसको गरम करके पलकों पर लेप करने से ललाई, पानी का बहना और पीड़ा शान्त होती है।

८—एक पात्र मे घी गरम करके उसमें नई साफ़ रुई के फ़ाए सेंधानमक के जल में भिगो कर छोड़ दे। जब पक जायँ और छुन-छुन शब्द बन्द हो जाय तो फ़ायों को उतार कर ठण्ढा करके आँखों पर बाँध दे। इससे पीड़ा और जलन बन्द होती है।

९—आँवला और लोध को गाय के घी में भून कर और पानी में पीस कर पलकों के चारों तरफ़ लेप करने से पीड़ा और ललाई दूर होती है।

१०—रसौत और फिटकरी बराबर और अफ़ीम आधी लेकर पानी में पीस डाले। इसका पलकों पर गुनगुना लेप

करने से शोथ और पीड़ा दूर होती है। लेप की चीजें आँख के भीतर नहीं जानी चाहिएँ।

११—केवल रसोत को पानी में घोल और छान कर आँखों में डालने से ललाई और पीड़ा अवश्य शान्त होती है।

१२—फिटकरी सफेद तथा सेंधानमक तीन-तीन माशे; मिश्री छः माशे, बोरिक एसिड एक माशा—सबको पीस कर आध सेर गुलाब-अर्क़ में मिला कर बारीक कपड़े में छान ले। उसमें से दिन में तीन-चार बार दो-दो बूँदें आँखों में टपकाने से पित्त-सम्बन्धी गर्मी की ऋतु में दुखने वाली आँखें बहुत शीघ्र आराम हो जाती हैं। अथवा "जिङ्क-लोशन" को दो-तीन बार दिन में डालने से गर्मियों में आँख दुखना बन्द हो जाता है।

१३—सफेद फिटकरी एक तोला लोहे के पात्र में एक छटाँक गाय का घी डाल कर भूने। जब फिटकरी अच्छी तरह भुन जाय तो उसे उतार कर लोहे के चम्मच से छः घण्टे बराबर घोटे। घोटते समय उसमें ४ रत्ती अफीम भी मिला दे। जब घुट कर बिल्कुल मक्खन के सदृश हो जाय तो उसे किसी काँच या चीनी के ढक्कनदार पात्र में रख ले। इसमें से शाम को सोते समय आधी रत्ती आँख में डाल दे। इससे पकी हुई आँखें साफ और शोथ-रहित हो जाती हैं।

पथ्यापथ्य—आँख दुखने में दूध-भात, साबूदाना, मीठा दलिया, गरम जलेबी, दूध और गरम हलुवा देना अच्छा है।

तेज गरम मसाले, खट्टी, चरपरी, नमकीन चीजें, तेल, मिर्च, गुड़, पकौड़ी आदि माता तथा बालक को नहीं खाना चाहिए। शिर से स्नान, धूप में घूमना, आग के पास बैठना या विशेष परिश्रम करना आदि हानिकारक है।

रोहे अथवा खुथुवा

यह रोग प्रायः आँख के ऊपर वाले पलक के भीतर उत्पन्न होता है। इसमें पलक के भीतर लाल रङ्ग के छोटे-छोटे दाने पैदा हो जाते हैं और पलक सूज जाता है। इससे बालक हर समय आँखें बन्द किए रहता है। बहुत प्रयत्न करने पर अँधेरे मे कभी आँखें खोल देता है, किन्तु सूर्य अथवा दीपक के प्रकाश में वह बिल्कुल नहीं खोल सकता। रोग की आरम्भिक अवस्था में कभी कुछ देर के लिए आँखें खोल भी देता है, परन्तु रोग के बढ़ जाने पर दिन-रात आँखें बन्द रखता है। देर तक आँखें बन्द रहने से, या खुजली अथवा पीड़ा के कारण आँखों को मलने से, पिड़िकाओं की रगड़ से आँख में फूली-माड़ा पड़ कर दृष्टि का नाश हो जाता है। इस रोग को आमतौर से रोहे अथवा खुथुवा कहते हैं।

चिकित्सा—इस रोग में किसी चतुर जर्राह या डॉक्टर से दानों को चिरवा कर रक्त निकलवा देना चाहिए। या नेनुओं की पत्ती धीरे-धीरे घिस कर रक्त निकाल देना चाहिए। फिर चीरे हुए स्थान पर सोंठ तथा सेंधानमक के बारीक चूर्ण

को रगड़े और गरम जल से धो डाले। इसके बाद खैर की छाल, अरहर और सहजने की छाल के गुनगुने काथ से सेंक करे, अथवा हल्दी, दारुहल्दी, हरड़ और मुलैठी के काथ में शहद मिला कर सेंक करे, अथवा रक्त निकालने के बाद पलकों पर हल्दी का गुनगुना लेप कर दे। इसके पश्चात् दूसरे दिन से, एक छोटी हरड़ और दो रत्ती साफ कण्डे की भस्म को बेलपत्र के रस (पानी के साथ बेल के पत्तों को पीस कर उसका रस निचोड़ ले) के साथ घोट कर दोनों समय आँखों में अञ्जन करे। इससे एक सप्ताह में अति भयङ्कर रोहे सूख कर शान्त हो जाते हैं।

१—चाकसू के बीज दो तोले और नीम की हरी पत्ती एक छटाँक लेकर एक मिट्टी के पात्र में आध सेर जल के साथ मन्द अग्नि पर आधी घड़ी तक पकावे। फिर नीचे उतार पानी को अलग कर दे और बीजों को निकाल छिलका दूर करके सुखा डाले। उन बीजों में समान भाग सफ़ेदा मिला कर नीम के पत्तों के स्वरस में एक पहर तक खरल करे और सुखा कर कपड़छन चूर्ण कर ले। इसको दोनों समय बालक के पलकों को उलट कर दोनों पर धीरे-धीरे अँगुली से लगावे अथवा चूर्ण को बुरक दे। इससे शीघ्र ही रोहे सूख कर अच्छे हो जाते हैं। यह इस रोग की अचूक औषधि है।

२—इलायची, लहसुन, निर्मली के बीज, शङ्ख-चूर्ण, काली या सफेद मिर्च, कायफल तथा महुआ—इनको समान

भाग में ले और बारीक चूर्ण करके ब्राण्डी शराब में घोट डाले। इसकी स्लेट पर लिखने की पेन्सिल के बराबर मोटी बत्ती बना ले। इसको जल में घिस कर दोनों समय अञ्जन करने से रोहे और कुकूणक रोग नष्ट हो जाते हैं।

३—हल्दी, दारुहल्दी, लोध, मुलैठी, कुटकी, नीम के पत्ते और ताँबे का बारीक चूर्ण—सबको समान भाग लेकर जल के साथ खरल में खूब घोट कर बत्ती बनाले। इसको दोनों समय रोहों पर लगाने से आराम होता है।

४—ताँबे और लोहे का चूर्ण छः-छः माशे और गाय का घी, दूध और शहद अल्प मात्रा में लेकर खरल करे। जब घोटते-घोटते खूब बारीक हो जाय, तब उसका रोहों पर अञ्जन करे। इससे शीघ्र आराम हो जाता है।

५—पीपल, मुलैठी, गेरू, लाही, कालीमिर्च, प्याज, सेंधा नमक और सोंठ—प्रत्येक का छः-छः माशे चूर्ण करके जल के साथ खरल में घोट कर छोटी-छोटी गोली बना ले। इस दवा को दोनों समय जल में घिस कर अञ्जन करने से रोहे शीघ्र ही नष्ट होते हैं।

६—गोंद, कतीरा और जलाया हुआ तूतिया छः-छः माशे; तथा यशद-भस्म (सफेदा) पाँच तोला—सबको पानी में घोट कर सलाई के समान छोटी-छोटी बत्ती बना कर सुखा ले। यदि रोहे पक गए हों तो पलक को उलट कर उस पर धीरे-धीरे सलाई घिस कर लगावे। फिर हल्दी के चूर्ण को

जल के साथ गरम करके पलकों के ऊपर लेप कर दे। इससे दो-तीन दिन में ही रोहे सूख जाते हैं।

७—अफीम और फुलाई हुई फिटकरी चार रत्ती लेकर कागज़ी नींबू के रस में लोहे के पात्र में लोहे की मूसली से एक घण्टे तक घोटे। जब काले रङ्ग का अञ्जन तैयार हो जाय तो उसे लोहे की प्याली में रख दे। उठते हुए रोहों पर इसका अञ्जन करने से दो ही दिन में रोहे सूख कर आराम हो जाते हैं। यह अञ्जन लगता बहुत है और इसके लगाने से बालक घण्टों छटपटाता और रोता रहता है। इसलिए बहुत छोटे बालकों को यह अञ्जन नहीं लगाना चाहिए।

८—काली मिर्च, रसौत, शङ्ख, मैनशिल, सेंधानमक—इन सबका चूर्ण बारीक करके आँखों में अञ्जन करने से रोहे नष्ट हो जाते हैं।

शुक्र-रोग या फूली

नेत्राभिष्यन्द के कारण आँखों के बहुत दिन तक बन्द रहने या पलकों के रगड़ने से प्रकाश वाले काले तिल पर सफेद रङ्ग की एक जाली पड़ जाती है, जिससे ज्योति रुक कर बालक को अन्धा अथवा काना बना देती है। इसको फूली-रोग कहते हैं। इसके बहुत से भेद हैं, परन्तु यहाँ केवल आँखों के बिगड़ने से उत्पन्न फूली की चिकित्सा देते हैं:—

१—हाथी, घोड़ा, सूअर, गाय, ऊँट, बकरी और गधा

के दाँत, शङ्ख-चूर्ण, मोती और समुद्रफेन—इन सबको बराबर लेकर चूर्ण करले। इस चूर्ण से चौथाई सफ़ेद मिर्चों का चूर्ण कर दोनों को मिला कर खूब खरल करे। फिर जल के साथ घोट कर छोटी-छोटी बत्ती बना कर रखले। इन बत्तियों को जल में घिस कर आँखों में दो बार दिन में अञ्जन करने से छोटी-बड़ी सभी प्रकार की फूली सात दिन मे नष्ट हो जाती है। बालकों के अञ्जन करने में यदि मिर्च को न भी डाला जाय तो कुछ हानि नहीं होगी। मिर्चों की तेज़ी को छोटे बालक सहन नहीं कर सकते।

२—तमालपत्र, गाय का दाँत, शङ्ख, ताँबे का चूर्ण और गधे की हड्डी—इन सबका बारीक चूर्ण करके अञ्जन के समान खूब घोट ले और जल में मिलाकर उसकी बत्ती बना ले। इसको गो-मूत्र में घिस कर अञ्जन करने से सब प्रकार की फूली नष्ट होती है।

३—छोटी कटेली की जड़, मुलैठी, ताँबे का बारीक चूर्ण, सेंधा नमक, सोंठ—सबको बराबर लेकर आँवलों के फलों के रस में घोट ले। उस लुगदी को किसी साफ़ ताँबे के पात्र के भीतर लेप करदे। कुछ सूखने पर जौ, घी और आँवले के पत्तों को कूट कर उस पात्र को धूप दे, फिर सबको निकाल और घोट करके बत्ती बनाले। इन बत्तियों को महानीला वर्त्ति कहते हैं। इनके लगाने से बाहरी जड़ वाले सभी प्रकार के फूली-रोग नष्ट होते हैं।

४—फुलाई हुई फिटकरी, नौसादर और अफ़ीम समान भाग लेकर अपामार्ग के स्वरस में घोट कर नित्यप्रति अञ्जन करने से फूल -रोग नष्ट होता है।

५—ताँबे तथा सोनामक्खी का चूर्ण समान भाग लेकर द्रोणपुष्पी (गूमा) के स्वरस में घोट कर अञ्जन करने से फूली-रोग निर्मूल हो जाता है।

६—अपामार्ग की जड़ का रस और शहद मिला कर नेत्रों में प्रतिदिन अञ्जन करने से फूली-रोग नष्ट होता है।

मुखक्षत

इस रोग के कितने ही भेद होते हैं। जैसे थुरुस (सर्दी से उत्पन्न क्षत); एपथि या फेलिक्यूला (मुखपाक); स्टमाटाइटिस कैङ्क्रेस अरिस।

लक्षण—इनमें से पहले प्रकार के रोग अर्थात् थुरुस का कारण बालकों के पेट की खराबी होता है। पाकाशय में अम्लावस्था उत्पन्न हुए बिना यह रोग नहीं हो सकता। इसमें मुख-मण्डल की श्लैष्मिक झिल्ली के ऊपर एक प्रकार का "फङ्गसग्रोथ" (श्वेत मुख) उत्पन्न हो जाता है। यह रोग प्रायः दुर्बल और रक्तहीन बालकों को ही होता है। इसमें होंठ, जीभ और गल-कोष आदि स्थानों की श्लैष्मिक झिल्ली के ऊपर पतली और मैली पपड़ी सी पड़ जाती है। यह पपड़ियाँ धीरे-धीरे एकत्र होकर एक बड़े घाव का आकार धारण कर लेती हैं।

इसका मुख्य कारण शारीरिक दशा की ख़राबी ही है। किन्तु यदि किसी स्त्री का दूध ख़राब हो और उसके दूध को एक से अधिक बालक पीते हों तो यह रोग उन सब बालकों को हो जाता है।

स्तनपान करते समय मुख में वेदना और कष्ट अनुभव होना इस रोग का प्रधान लक्षण है। इसके साथ दुर्बलता, अस्थिरता और पेट की विकृति, अतीसार, पेचिश, ग्रहणी और पाकाशय तथा आँतों में शोथ भी देखने में आता है। बालक बहुत रोता है और उसको कुछ ज्वर भी रहता है। इसके कारण उसके मुख और जीभ में एक दही के समान पदार्थ जम जाता है। इस दशा में विशेष भय की कोई बात नहीं होती। किन्तु यदि रोगी अत्यन्त दुर्बल हो तो अवश्य चिन्ता का विषय समझना चाहिए।

एपथि वा फ़ेलिक्यूला क्षत प्रायः खसरा और पेट की ख़राबी से उत्पन्न होता है। इसमें ज्वर बेचैनी, भूख की कमी, पतले दस्त, मुख से अधिक लार का बहना, मुख गरम, गले की ग्रन्थियाँ फूली हुई और वेदनायुक्त आदि लक्षण देखने में आते हैं। मुख की श्लैष्मिक झिल्ली रक्त-वर्ण की हो जाती है और उसमें से साफ़ और सादी पपड़ी बाहर निकल आती है। अन्त में यही पपड़ी घाव के रूप में परिणत हो जाती है। होंठ, जिह्वा और मुख के प्रान्त भागों में घाव होने पर सादा या हल्दी के रङ्ग का पका हुआ मांस

बाहर निकलने लगता है। इस रोग में विपत्ति होने की आशङ्का नहीं रहती। किन्तु सावधानी से चिकित्सा न करने पर अन्त में बड़ी हानि हो सकती है।

स्टमाटाइटिस में छोटे-छोटे घाव होते हैं। घावों के होने पर एक प्रकार का एगज़ुडेसन (लसी) बाहर निकल कर श्लैष्मिक झिल्ली में चारों तरफ फैल जाता है और झिल्ली में अनेक घाव हो जाते हैं। इस रोग में दाँतों के मसूड़े लाल और खिंचे हुए स्पञ्ज के सदृश रहते हैं। मसूड़ों की धार मैली रहती है। पहले मसूड़ों के आगे का भाग आक्रान्त होता है, बाद को धीरे-धीरे समीपवर्ती स्थानों में रोग फैल जाता है। इसके लक्षण साधारण मुखक्षत के समान होते हैं, किन्तु साधारण क्षत की अपेक्षा यह अधिक तेज़ होता है। वेदना और खिंचाहट आदि शोथ के लक्षण इसमें वर्तमान रहते हैं और बालक के श्वास से दुर्गन्ध निकलती है। इसमें नाइट्रिक एसिड बहुत लाभ पहुँचाता है। अनेक बार मर्क्यूरियस भी बहुत लाभ करता है। बोरिक एसिड शहद में मिला कर मुख में लेप करने से भी लाभ पहुँचता है।

कैङ्क्स में पारे के खाने के समान घाव होते हैं। इस रोग का कारण अभी स्थिर नहीं किया जा सका है। किन्तु यह रोग प्राय: योग्य आहार के न मिलने पर, रक्त के दूषित होने से, या टाइफस, ट्यूबर्किलोसिस्, खसरा आदि को

बिगाड़ने वाले रोगों के उत्पन्न होने के बाद होता देखा गया है। इस देश में पुराने मलेरिया (विषम-ज्वर) वाले मनुष्यों या बालकों को भी यह रोग हो जाता है। इस रोग के आरम्भ में गालों के भीतर की तरफ एक साधारण पपड़ी पड़ती है। आक्रान्त स्थान धीरे-धीरे तना हुआ और एकदम लाल रङ्ग का हो जाता है। मुख के भीतर इतना खिंचाव और सूजन हो जाती है कि बालक अपना मुख भी नहीं खोल सकता। मुख के बीच में दो-तीन जगह बड़े-बड़े घाव हो जाते हैं। इन घावों के ऊपरी भाग में भूरा या हल्दी के रङ्ग का सड़ा हुआ मांस देखने में आता है। मुख के बाहर लाल रङ्ग का दाग़ बढ़ कर फैल जाता है। अन्त में उसका रङ्ग काला हो जाता है। रोग के आरोग्य होते समय सड़े-गले मांस के टुकड़े गिर जाते हैं और नीचे से लाल रङ्ग का शुद्ध चर्म निकल आता है। यदि ऐसा न हो तो दुर्बलता और अचैतन्यता की वृद्धि होकर अथवा आक्षेप उत्पन्न होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

यद्यपि इस रोग का भावी फल बड़ा अनिश्चित और आपत्तिजनक है, तथापि अनेक बार यह अच्छा भी होता देखा गया है। इस रोग में औषधि सेवन कराने के साथ-साथ पुष्टिकारक पथ्य द्वारा रोगी के शरीर की शक्ति की रक्षा करना अत्यावश्यक है।

मुखक्षत रोग बालकों को प्रायः हुआ करता है और

इसकी चिकित्सा अधिकांश स्त्रियाँ अच्छी तरह जानती हैं। तथापि कुछ दवाइयाँ यहाँ लिखी जाती हैं। मुखपाक के विषय में छोटे बच्चों के लिए यह बात याद रखनी चाहिए कि बिना दूध के दूषित हुए तथा बिना क़ब्ज़ के यह रोग नहीं होता है। इसलिए चिकित्सा करते समय माता के दूध की परीक्षा करना अत्यावश्यक है तथा बालक के क़ब्ज़ की भी अच्छी तरह जाँच कर लेनी चाहिए। कभी-कभी पैतृक उपदंश के कारण भी यह रोग हो जाता है।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा करने के पूर्व बालक को एरण्ड-तैल का साधारण विरेचन देना चाहिए, जिससे उसके कोष्ठ की दशा सुधर जाय। फिर अवस्थानुसार निम्न-लिखित योगों से अथवा विशेष दशा में वैद्य की सम्मति के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

१—आम की गुठली, शुद्ध लोह-चूर्ण या लोह-भस्म, गेरू और रसौत—समभाग में महीन पीस कर शहद के साथ अँगुली से बालक के मुख में चारों ओर धीरे-धीरे लगावे। इससे मुखपाक, छाले आदि सब विकार दूर होते हैं।

२—पीपल की छाल और पत्ते पानी के साथ सिल पर बारीक पीस कर उसमें शहद मिला कर मुख में लगाने से भयङ्कर मुखपाक, छाले और निनुवाँ आदि मुख-रोग शीघ्र ही नष्ट होते हैं।

३—दारुहल्दी, मुलैठी और जावित्री समान भाग ले।

इनको बारीक पीस कर शहद में मिला कर मुख में लगाने से मुखपाक नष्ट होता है।

४—बोरिक एसिड अथवा सुहागे की खील शहद में मिला कर दिन में चार-पाँच बार लेप करने से मुख के छाले अच्छे हो जाते हैं।

५—जम्बीरी-नींबू के रस में थूहर के पत्तों को सिल पर बारीक पीस कर मुख में लगाने से मुख के छाले और अन्यान्य विकार शान्त होते हैं।

६—ताजा भेड़ का दूध बालक के मुख में लगाने से भी मुख के घाव, छाले और पाक शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं।

७—चौकिया सुहागे की खील, फुलाई हुई सफ़ेद फिट-करी, गेरू और सेलखड़ी—इनका बारीक चूर्ण शहद या माँ के दूध के साथ मुख में लगाने से छाले, नितुवाँ आदि शीघ्र अच्छे होते हैं।

८—कपूर एक रत्ती, कबाबचीनी दश दाना, पपड़िया कत्था छः माशे—इन तीनों का चूर्ण जल में घोट कर मुख में लगाने से मुखपाक शान्त हो जाता है।

९—मुख का रङ्ग लाल हो और लार अधिक गिरती हो तो बाल-परिचर्या-प्रकरण में बतलाई हुई घुट्टियों में से कोई एक बालकों को पिलानी चाहिए।

१०—छोटी इलायची के बीज, वंशलोचन और पप-

ड़िया कत्था—इनका चूर्ण बारीक करके मुख के छालों पर बुरकना चाहिए।

११—चमेली के पत्ते, तुलसी के पत्ते, आँवला, पाढ़, बहेड़ा, हरड़ और मुनक्का—इन सबका क्वाथ बना कर उसमें शहद डाल कर बड़े बच्चों को कुल्ली कराने से मुखपाक शान्त हो जाता है।

१२—अनन्तमूल, काले तिल, मुलैठी और लोध के क्वाथ से बालकों के मुख धोने से मुखपाक शान्त होता है तथा लार गिरना भी बन्द हो जाता है।

१३—बड़ी इलायची का दाना और रूमी मस्तगी दो-दो तोले और मिश्री एक पाव ले। मिश्री की चाशनी करके उसमें दोनों औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला कर शर्बत बना ले। इसको दिन में चार-पाँच बार बराबर लगाने से मुखपाक अच्छा होता है और लार का गिरना भी बन्द हो जाता है।

कान का दर्द

कान में पीड़ा होने का रोग बालकों को प्रायः हुआ करता है। अनेक बार चिकित्सकों को कान के दर्द का पता ही नहीं चलता और वे भ्रम में पड़ कर पेट अथवा अन्य किसी प्रकार की वेदना समझ कर चिकित्सा करने लगते हैं।

आमतौर से बालकों को ठण्ढ लगने या कान में दूध या जल के प्रवेश करने से यह रोग उत्पन्न होता है। इसलिए

माता या धाय को बड़ी सावधानी से बालक को स्नान और भोजन कराना चाहिए। कण्ठ-नाड़ी में शोथ और नासिका में ठण्ढ लगने के कारण भी यह रोग हो जाता है। खसरा, सन्निपात आदि रोगों के होने पर भी यह उत्पन्न होता है और कभी-कभी दाँत निकलते समय भी कान की पीड़ा हो जाती है। बालकों के इस रोग का सहज में पता लग सकना कठिन बात है। बालक अत्यन्त दुःख पाता है, पर अज्ञानवश यह नहीं बतला सकता कि उसको कहाँ पर दर्द होता है। रात्रि के समय और स्तनपान करते समय प्रायः यह रोग बढ़ जाता है। अनेक बालक दर्द होने पर अपने कान में हाथ लगाते या डालते हैं। इस वेदना के कारण बालक अपनी ग्रीवा को अनेक समय टेढ़ी रखता है। कान पर हाथ रखने से उसमें गर्मी और धड़कन सी ज्ञात होती है। कभी-कभी इस रोग में अत्यन्त वेदना होने के कारण आक्षेप और मूर्च्छा भी हो जाती है। कान में पीड़ा होने पर बालक अपने कान में हाथ नहीं लगाने देता है और ज़ोर से चीख़ कर रोने लगता है। कान की वेदना जब बहुत बढ़ जाय तो स्वेद या गर्मी देने से प्रायः बड़ी जल्दी अच्छी हो जाती है। इसके लिए पुरानी रूई को गरम कर के सेंकना चाहिए। कर्ण-पीड़ा के उपयोगी प्रयोग नीचे लिखे जाते हैं:—

१—हल्दी का चूर्ण करके गाय के घी में भूने। जब

पक जाय तो घी को छान कर गुनगुना कान में डाले, इससे पीड़ा बन्द हो जाती है।

२—केवल वायु के कारण या ठण्ढ से कान में पीड़ा हो तो पके हुए आक (मदार) के पत्ते में तेल लगा कर गरम करे। उसका रस निचोड़ करके गुनगुना कान में डाले, इससे पीड़ा तुरन्त बन्द हो जाती है।

३—तिल के तेल में कार्बोलिक एसिड बीसवाँ भाग मिला कर तीन-चार बार कान में डालने से कर्ण-पीड़ा बन्द हो जाती है।

४—नारायण तैल तथा विषगर्भ तैल दोनों को मिला कर गुनगुना करके रूई के फाए से कान में डालने से तुरन्त पीड़ा बन्द हो जाती है।

५—सुदर्शन के पत्तों का रस निकाल कर गुनगुना करके कान में डालने से कान की पीड़ा शान्त होती है।

कान बहना

कान को सलाई या सींक से कुरेदने से या तेल के न डालने के कारण मल के चिपक कर सूख जाने से, या शिर अथवा कनपटी में चोट लगने से, या सन्निपात, शीतला आदि रोग के होने से कान में पीव पड़ जाता है। यदि इसकी कुछ दिनों तक चिकित्सा न की जाय तो वह कान के नासूर के रूप में परिणत हो जाता है। उसमें कभी मक्खी आदि के रुक कर मर जाने या रह जाने से बड़ा दर्द और शोथ हो

जाता है। बालक बेचैन होकर खाना-पीना छोड़ देता है। साथ ही उसको ज्वर भी हो जाता है। योग्य चिकित्सा के न होने से कुछ दिनों के बाद बालक बहिरा हो जाता है। उस दशा में इसकी चिकित्सा कठिन हो जाती है। कर्ण-पीड़ा में उपयोगी चिकित्सा नीचे लिखी जाती है :—

१—गरम जल से अथवा कच्चा ताजा दूध और जल को मिला कर उससे कान को धोकर साफ करना चाहिए। उसके बाद सींक में रूई या बारीक कपड़ा लगा कर उसके द्वारा कान को भीतर से साफ, करना चाहिए फिर दो-तीन बूँद इतर की डाल दे।

२—पहले गरम जल में बोरिक एसिड या सुहागे की खील मिला कर; ठण्ढे जल में परमैगनेट पोटाश (कुँओं में डालने की लाल दवा) मिला कर; या नीम के पत्तों को जल में औटा कर उससे पिचकारी द्वारा कान को खूब धो डाले। फिर उसे रूई से अच्छी तरह साफ करके पूर्वोक्त कर्णामृत-तैल (एक भाग तिल का तेल और बीसवाँ भाग कार्बोलिक एसिड) की दो-तीन बूँद डाल दे।

३—कान को गरम जल से अच्छी तरह धोकर रोज़ दो-तीन बूँद ब्राण्डी शराब डालनी चाहिए। इससे कर्ण-शूल और पीब का बहना बन्द हो जाता है। अथवा कान को धोकर उसमें फिटकरी के जल की दो-तीन बूँदें रोज़ डालनी चाहिएँ।

४—बहेड़े की छाल, कूट, हरताल और मैनशिल—सब को समान भाग में कुल पाव भर लेकर जल से पीस लुगदी बना ले। उसको एक सेर तिल के तेल और चार सेर जल में डाल मन्द अग्नि से पकावे। इसको रोज़ कान धोकर दो-तीन बूँद डालने से कान का बहना बन्द हो जाता है।

५—समुद्रफेन, सुपारी की राख और कत्था—सबको बारीक पीस ले। फिर कान को धोकर इस चूर्ण को एक नली के द्वारा फूँक मार कर कान में डाल दे। इससे कान का बहना बन्द हो जाता है।

६—बाबूना नामक यूनानी औषधि को जल में औटा कर किसी टोंटीदार लोटे या बर्तन में भर कर उसका मुख इस तरह से बन्द करदे कि उसकी भाप सिवाय टोंटी के और किसी स्थान से न निकल सके। फिर उस टोंटी के मुख को बालक के कान में लगा कर उसकी भाप देवे। इससे कान का दर्द और पीब का बहना आराम होता है।

७—सफ़ेद या लाल आक (मदार) की जड़ को तिल के तेल में डाल कर पकावे। जब जड़ जल कर काली पड़ जाय तो उतार-छान कर गुनगुना करके कान में डालने से दर्द बन्द हो जाता है।

८—मोर के पञ्जे की अस्थि अथवा सूअर के कान की अस्थि को जल में घिस कर कान में डालने से उनका दर्द और बहना बन्द हो जाता है।

मूत्राघात

इसको हिन्दी में पेशाब का बन्द होना और अङ्गरेज़ी में 'एस्त्रयूरिया' या 'रिटेन्शन ऑफ यूरिन' कहते हैं। सद्यःप्रसूत बालक को अनेक समय यह रोग हो जाता है। उत्पन्न होंने के बाद यदि बालक मूत्र-त्याग न करे तो यह समझना चाहिए कि उसे कठिन मूत्राघात रोग हो गया है। इसके सिवाय अनेक बार ऐसा भी देखा गया है कि बालक को मूत्र भी नहीं होता है और उसे कोई विशेष कष्ट भी नहीं प्रतीत होता। ऐसे समय में विशेष सावधानी से खूब सोच-विचार कर निर्णय करना चाहिए।

कुछ पीड़ा सहित रुक-रुक कर बूँद-बूँद पेशाब होना मूत्राघात कहा जाता है। पेशाब न होने पर बालक बेचैन हो जाता है और बहुत रोता है। इसके साथ ही पेट तथा रानों के फूल जाने के कारण उसे विशेष कष्ट होता है। ऐसी दशा में तुरन्त औषधि का प्रयोग करना उचित है, देरी करने से यह रोग भयानक रूप धारण कर लेता है।

चिकित्सा—इस रोग में बहुत जल्दी-जल्दी औषधि देना ठीक नहीं है। दी हुई औषधि के गुणोदय होने तक अपेक्षा करना उचित है। बहुत बार देखा गया है कि जितनी जल्दी औषधि दी गई उतनी ही देर में और कष्ट के साथ आराम हुआ है। एक औषधि देकर कम से कम एक घण्टा तक प्रतीक्षा करना परमावश्यक है। इस रोग में

खाने की औषधियों की अपेक्षा बाहरी लेप और सेंक आदि का प्रयोग करना अधिक अच्छा है।

१—बालक का पेशाब बन्द होने पर घोड़े की ताज़ी लीद को लेकर उसमें कुछ जल डाल कर पकावे। इसे गुनगुना बालक के पेड़ू-स्थान में लेप करने से तुरन्त पेशाब हो जाता है।

२—पाषाणभेद के पत्तों पर तेल चुपड़ कर गरम करके बालक की वस्ति में बाँधने से पेशाब उतर आता है।

३—कपूर को पानी में गला कर और उसमें बारीक मलमल का कपड़ा भिगो कर बत्ती बनावे। इसको मूत्रेन्द्रिय के छिद्र में डाल कर रखने से अत्यन्त भयानक मूत्राघात तुरन्त दूर हो जाता है।

४—नरसल, कुश, कास और गन्ने की जड़, धनिया, गिलोय—इन सबको एक तोला लेकर चार तोले पानी में चार घण्टे तक भिगो रक्खे। फिर हाथ से मसल-छान कर थोड़ा-थोड़ा बालक को पिलावे। इसके पिलाने से बालक को पेशाब साफ़ आता है। एक सप्ताह पिलाने से बिल्कुल आराम हो जाता है।

५—छोटी इलायची के बीज, पीपल, काली मिर्च, सेंधानमक, मिश्री या चीनी—सबको समान लेकर चूर्ण कर ले। इसमें से उचित मात्रा में शहद के साथ सेवन कराने से मूत्राघात की पीड़ा और जलन दूर हो जाती है।

पथरी

यह रोग प्रायः बड़ी अवस्था के बच्चों को ही होता है। खान-पान के दोष से मसाने में मूत्र का क्षार-भाग अलग होकर धीरे-धीरे जमने लगता है। उसके जमने से मूत्र की प्रकृति ठीक नहीं रहती। इसलिए वायु कुपित होकर उस क्षार-भाग को सुखा देता है और स्पर्श तथा देखने में पत्थर के सदृश कर देता है। इसी कारण इसे पथरी-रोग कहते हैं।

पथरी के पैदा होने पर मसाने के चारों तरफ़ विशेषकर ऊपर की तरफ़ नाभि और मूत्रेन्द्रिय की सीवन में पेशाब करते समय दुःसह पीड़ा होती है और बालक बेचैन होकर रोता है। उसे ऐसा मालूम पड़ता है कि अब पेशाब हुआ, परन्तु मूत्र निकलता नहीं। एक या दो बूँद निकल कर दर्द कुछ कम हो जाता है। इसके सिवाय कभी-कभी पथरी का कोई टुकड़ा अलग होकर मूत्र-स्रोत में आ जाता है, तो पेशाब करते समय मूत्र की दो धारें निकलती हैं।

चिकित्सा—यह एक स्थानिक तथा भयानक रोग है। इसकी चिकित्सा सिवाय योग्य डॉक्टर से ऑपरेशन कराने के और कुछ नहीं हो सकती। परन्तु रोग के आरम्भ में ही पता लग जाने से शारीरिक चिकित्सा से भी लाभ हो सकता है। आरम्भिक दशा में निम्न-लिखित योगों को काम में लाना चाहिए :—

१—छोटी इलायची, पाषाणभेद, पीपर, मुलैठी, बड़ा

गोखुरू, सँभालू के बीज, अडूसा और एरण्ड की जड़—सब को समान भाग में ले क्वाथ बना कर उसमें थोड़ा असली शिलाजीत मिला दे। इसे दोनों समय पिलाने से बालकों की प्रारम्भिक पथरी और मूत्राघात रोग नष्ट होते हैं।

२—छोटी हरड़, जवाखार और तगर का बारीक चूर्ण बना कर अदरक के रस और बकरी के दही में मिला कर दोनों समय भोजन के दो घण्टे पूर्व सेवन कराने से प्रारम्भिक अवस्था में बालकों की पथरी गल कर गिर जाती है।

३—राजमार्तण्ड में लिखा है कि ग्वाल ककड़ी (गोरच कर्कटी) की जड़ को बासी पानी से पीस-छान कर तीन दिन तक निरन्तर पीने से अवश्य ही पथरी चूर-चूर होकर निकल जाती है।

४—तिल, अपामार्ग, केला, ढाक और जौ का चार, भेड़ के मूत्र के साथ सात दिन तक दोनों समय पिलाने से सब प्रकार की पथरी नष्ट हो जाती है।

५—वरणे को छाल सवा छः सेर बत्तीस सेर जल में पकावे, चार सेर जल बाक़ी रहने पर उतार ले। फिर उसमें इन्द्रायण, केला, बेल की छाल, कुश, कास, नरसल, गन्ने और धान की जड़, गिलोय, पाषाणभेद या शिलाजीत, खीरे के बीज, दूब, तिलचार, पलासचार और जुही के फूल—सबको एक-एक तोला लेकर जल में पीस कर लुगदी बना कर डाल दे। इसम एक सर घी मिला कर किसी क़लई किए

हुए पात्र में पकावे। घी मात्र शेष रहने पर उतार-छान कर रख ले। इसमें से देश, काल का पूरा विचार कर बालक को योग्य मात्रा में पिलावे। भोजन जीर्ण हो जाने पर दुबारा पिलावे। किसी दिन अजीर्ण हो जाय तो इसको दही के जल के साथ पिलावे। इससे पथरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होते हैं। इसका नाम वरुणादि घृत है।

पथ्य—पथरी-रोग वाले को कुलत्थ की दाल, गेहूँ की रोटी, मूँग की दाल, पुराने चावल, चौलाई, पुराने पेठे का शाक, अदरक और जवाखार आदि पदार्थ हितकारक हैं। मीठे, ठण्डे, भारी, क़ाबिज़ पदार्थ अपथ्य हैं।

मूत्रकृच्छ्र

वंक्षण (रान), वस्ति और मूत्रेन्द्रिय में भयङ्कर पीड़ा के साथ थोड़ा-थोड़ा करके पेशाब होना; अथवा मूत्रेन्द्रिय तथा वस्ति में दाह, जलन तथा भारीपन और शोथ के साथ कष्ट से पेशाब होना मूत्रकृच्छ्र-रोग कहा जाता है। मूत्राघात की अपेक्षा इसमें चिनग और दर्द के साथ बार-बार पेशाब होता है। परन्तु मूत्राघात में चिनग न होकर पेशाब में रुकावट ही अधिक होती है। मूत्रकृच्छ्र को भाषा में "चिनग" कहते हैं। इसकी चिकित्सा-विधि नीचे लिखी जाती है :—

१—पीपल, मिश्री, छोटी इलायची, सेंधानमक और शहद—सबको मिला कर थोड़ा-थोड़ा करके चटाने से पेशाब साफ़ आने लगता है और जलन भी शान्त हो जाती है।

२—बबूल के गोंद की चार-पाँच डली एक बारीक कपड़े में बाँध कर भिगो दे। दो घण्टे बाद उस जल में थोड़ी मिश्री मिला कर पिला दे। दिन में चार-पाँच बार यह दवा सेवन कराने से बालक की चिनग शीघ्र शान्त हो जाती है।

३—हजरूल यहूद या पत्थर-बेर (यह पन्सारी और अत्तारों के यहाँ आमतौर से बिकता है) पानी में घिस कर तीन-चार बार पिलाने से चिनग की बीमारी शान्त होती है।

४—बड़ी उम्र के बालक को गोखुरू, अमलतास, डाभ, कास, जवासा, पित्तपापड़ा, पाषाणभेद, हरड़—इनका क्वाथ शीतल करके शहद मिला कर चटाने से अनेक प्रकार के मूत्र-कृच्छ्र-रोग नष्ट होते हैं।

५—जवाखार में समान भाग मिश्री मिला कर जल या ताज़े (धारोष्ण) दूध के साथ पिलाने से मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है।

६—दो रत्ती जवाखार पके हुए पेठे के एक तोले रस में मिला कर मिश्री डाल कर चार-पाँच बार पिलाने से मूत्रकृच्छ्र दूर होता है।

७—छोटी कटेली के रस में शहद मिला कर तीन-चार बार पिलाने से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है।

शय्या पर मूतना

बहुत से बालक बड़े होने पर भी सोते हुए बिछौने में पेशाब कर दिया करते हैं। इनमें से बहुतों का तो बिछौने में

मूतने का स्वभाव ही पड़ जाता है, परन्तु अनेक बालक शारीरिक विकृति के कारण भी ऐसा करते हैं। रक्तहीन और कमज़ोर बालकों की मूत्र-धारण शक्ति क्षीण हो जाती है और बिछौने में उनका पेशाब निकल जाता है। इसके सिवाय स्वस्थ बालक भी स्नायविक उत्तेजना तथा कृमि-रोग के कारण बिछौने में पेशाब कर देते हैं। इस रोग की चिकित्सा-विधि नीचे लिखी जाती है :—

१—शीतलचीनी का चूर्ण शीतल जल के साथ एक मास तक निरन्तर सेवन कराने से बालकों का शय्या पर मूतना बन्द हो जाता है।

२—चन्द्रप्रभा-वटी की एक गोली को पीस कर शहद में मिला कर सोते समय चटाने से बिछौने में मूतने का स्वभाव छूट जाता है।

३—धनिए को पानी के साथ सिल पर बारीक पीस कर उसमें थोड़ा जल मिला दे। उसमें मिश्री मिला और छान कर प्रातःकाल पिलावे। इस प्रकार डेढ़ या दो मास तक निरन्तर सेवन कराने से बिछौने में मूतना बन्द हो जाता है।

बहुमूत्र

बहुमूत्र-रोग दो प्रकार का होता है ; प्रथम शर्करा-रहित बहुमूत्र और दूसरा शर्करा-सहित बहुमूत्र। पहले प्रकार के बहुमूत्र-रोग में केवल मूत्र बार-बार और अधिक प्रमाण में

आता है। दूसरे प्रकार के वहुमूत्र की परीक्षा करने से पेशाव में शर्करा जाती हुई मिलती है।

पूर्वोक्त दोनों प्रकार के वहुमूत्र-रोगों में मूत्र का परिमाण वढ़ जाता है और शरीर क्षीण हो जाता है। इसके सिवाय सम्पूर्ण शरीर में, विशेष कर हाथ-पैरों के तलुओं में दाह होता है, तथा भयानक तृष्णा, पाचन शक्ति की कमी, क़ब्ज़ और अनेक प्रकार के स्नायविक लक्षण प्रकट होते हैं। रोग के पुराने पड़ने पर शरीर में फोड़े और भयानक पृष्ठ-व्रण उत्पन्न होकर रोगी को दुःख देते हैं। शर्करा-रहित वहुमूत्र में मूत्र का आपेक्षिक गुरुत्व वहुत अल्प हो जाता है। किन्तु शर्करा-सहित वहुमूत्र में उसका आपेक्षिक गुरुत्व अधिक वढ़ा हुआ रहता है। वहुमूत्र रोग में मूत्र की गन्ध नष्ट हो जाती है।

चिकित्सा—ऐलोपैथिक चिकित्सा में इसके लिए अनेक प्रकार की औषधियों का व्यवहार किया जाता है। किन्तु उनमें से सर्वोत्तम अहिफेन (अफ़ीम) का प्रयोग है। इसके विषय में डॉ० हुईटिल साहव का मत है कि अफीम का जलीय सार आध ग्रेन मात्रा में पहले दिन तीन-चार वार सेवन किया जाय। फिर धीरे-धीरे उसकी मात्रा वढ़ाई जा सकती है। परन्तु तीन-चार ग्रेन से अधिक मात्रा नहीं होनी चाहिए। यह मात्रा बड़े मनुष्यों की है। परन्तु एक दूसरे डॉक्टर का मत है कि अफ़ीम की मात्रा २० ग्रेन तक वढ़ाई

जा सकती है। यदि अफ़ीम न सही जाय या माफ़िक न हो तो मार्फ़िन या कोडिन का प्रयोग करना चाहिए। इसमें भी कोडिन का प्रयोग अधिक अच्छा है, क्योंकि इसमें औरों की अपेक्षा नशा कम होता है। बड़े मनुष्यों को आध ग्रेन से आरम्भ कर दो या तीन ग्रेन तक कोडिन की मात्रा दी जा सकती है। यदि इन औषधियों से आराम न हो तो एण्टीपाइरन का प्रयोग करना हितकारक है।

आयुर्वेद के मतानुसार केले की एक फली, आँवले का रस एक तोला, शहद चार माशे, मिश्री या चीनी चार माशे और दूध पाव भर—सबको मिला कर एक तोला परिमाण में सेवन कराने से बालक का बहुमूत्र-रोग शान्त हो जाता है। इसके सिवाय बृहत्वङ्गेश्वर-रस, तारकेश्वर-रस, सोमनाथ-रस, वसन्तकुसुमाकर-रस, हेमनाथ-रस, बृहत्धात्री घृत, कदल्यादि घृत आदि औषधियों के सेवन से भी बहुमूत्र-रोग में लाभ होता है।

बहुमूत्र-रोग में साधारण स्वास्थ्य के लिए योग्य व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक है। रोगी को हर समय फ़लालेन का अथवा और कोई गरम कपड़ा पहनाए रखना उचित है। उसको एक सप्ताह में दो या तीन दिन गरम जल से स्नान करा देना चाहिए। कभी-कभी वाष्पस्नान (बफ़ारा) कराना भी हितकारक है। बहुत से डॉक्टरों का कथन है कि गर्दन और शिर के ऊपरी हिस्से में "इयर डूशं" (कर्ण-स्नान) देना

विशेष उपकारी है। कुछ रोगियों के लिए समुद्र के किनारे रहना या समुद्र के जल से स्नान करना हितकारक होता है। यदि बालक बड़ा हो तो थोड़ा-थोड़ा व्यायाम करना (घूमना-फिरना), हाथों को हिलाना भी हितकारक है।

बहुमूत्र-रोग में पीने की चीज़ों के सम्बन्ध में विशेष सावधानी की आवश्यकता है। दूध में शर्करा होती है, इस वास्ते दूध हानिकारक समझा जाता है। किन्तु डॉ० कोयन तथा रॉब्रर्ट्स का कथन है कि दूध को अल्प प्रमाण में देने से ख़राबी के बजाय लाभ होता है। यदि आवश्यकता हो तो दूध के साथ सोडा वा चूने का पानी मिला कर दिया जा सकता है। यदि रोगी पचा सकता हो तो उसे दूध की मलाई देनी चाहिए।

पथ्यापथ्य—रोगी को दिन में बारीक पुराने चावलों का भात, मूँग, मसूर या चनों की दाल, मांसाहारी होने पर बकरी, हिरन, कबूतर, मुर्ग़ी आदि का शोरवा और गूलर, परवल, अञ्जीर, कच्चे केले, सहिजने की फली का शाक देना चाहिए। रात्रि के समय जौ की रोटी पूर्वोक्त शाक के साथ और मक्खन निकाला हुआ दूध देना चाहिए। इस रोग में आँवला, जामुन, पका हुआ केला, काग़ज़ी नींबू और पुरानी शराब लाभदायक होती है। रोग की बढ़ी हुई दशा में केवल जौ की रोटी और मक्खन-रहित दूध का प्रयोग करना चाहिए। गरम जल ठण्डा करके पीने को देना

चाहिए। कफ पैदा करने वाले तथा देर में पचने वाले पदार्थ दही, मीठी चीज़ें, कद्दू का शाक, खट्टी चीज़ें इसमें अपथ्य हैं। अधिक जलपान, तेज़ शराब, दिन में सोना, रात्रि में जागना, अधिक दूध पीना आदि भी हानिकारक हैं।

अफरा

अजीर्ण, बदहज़मी या खान-पान के नियमों का उल्लङ्घन करने से या क़ब्ज़ रहने से अन्न-रस का पाक भली-भाँति नहीं होता और मल की क्रिया भी बिगड़ जाती है। इससे शरीर तथा आँतों में वायु का कोप बढ़ जाता है। इस कारण बालक का आँव (कच्चा रस) और मल धीरे-धीरे इकट्ठा होता जाता है तथा वायु की ख़राबी से वह अच्छी तरह बाहर भी नहीं निकलता। ऐसी दशा में मल से रुका हुआ वायु पेट को फ़ुला देता है। इसको देश-भाषा में लोग अफरा कहते हैं। जब अफरा बहुत बढ़ जाता है, तो पेट फूलने के साथ मूत्रावरोध, शूल, शिर में पीड़ा, तृष्णा, शरीर भारी, वमन और मूर्च्छा आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। इस रोग में निम्न-लिखित चिकित्सा करनी चाहिए :—

१—अफरा होने पर पहले पेट को साफ़ करने की आवश्यकता है। विरेचक औषधियों से दस्त न होता हो तो बालक की गुदा में ग्लेसरीन की पिचकारी लगा कर मल या आँव को निकाल देना चाहिए। फिर वायु तथा मल की क्रिया को ठीक रखने के लिए औषधि देनी चाहिए।

२—छोटी हरड़ ३ माशे, मुनक़्क़ा ६ माशे—दोनों को जल में पीस कर दो तोले जल में घोल दे। इसको छान कर थोड़ा-थोड़ा तीन-चार बार पिलाने से क़ब्ज़ दूर होकर अफरा शान्त हो जाता है।

३—सूखा पोदीना, छोटी हरड़, छोटी इलायची, पीपल, काली मिर्च और काला नमक—ये सब समान भाग में पीस कर जल के साथ गरम करके तीन-चार दिन तक दोनों समय पिलाने से अफरा और क़ब्ज़ दोनों दूर हो जाते हैं।

४—फुलाई हुई हीरा हींग, छोटी इलायची का दाना, भारङ्गी, सेंधानमक और सोंठ—सबको समान भाग में लेकर चूर्ण कर ले। इसे एक रत्ती से डेढ़ माशे तक गरम जल के साथ दो-दो घण्टे के अन्तर से तीन-चार बार पिलाने से क़ब्ज़, अफरा और वायु की विकृति दूर होती है।

५—असली हीरा हींग को भून कर पानी में घिस कर बालक की नाभि के चारों ओर लेप कर देने से अफरा तुरन्त शान्त हो जाता है।

६—छः माशे गुलकन्द, दो तोले दूध या गरम जल में अच्छी तरह घोल, छान कर दो-दो घण्टे के अन्तर से तीन-चार बार पिलाने से क़ब्ज़ दूर हो जाता है।

७—एक माशा से दो माशे पर्यन्त रेवतचीनी का शरबत चटाने या जल में घोल कर पिलाने से क़ब्ज़ दूर होता है।

८—मदार या एरण्ड के पत्ते पर घी या तेल चुपड़,

कर गरम करके बालक के पेट में बाँधने से पेट का फूलना बन्द होता है।

९—दूध पीने वाले बच्चों को एलवा और साबुन समान भाग जल में पीस कर गुनगुना करके पेड़ तथा पेट में लेप करने से दस्त साफ होकर अफरा मिट जाता है।

१०—चूहे की लेंडी और एरण्ड की मिङ्गी को समान भाग में पानी के साथ पीस डाले। इसे गुनगुना कर नाभि, गुदा और पेडू पर लेप करने से बहुत लाभ होता है।

११—हींग और सेंधानमक शहद में घोंट कर उसकी बालक की गुदा में जाने के योग्य, छोटी पतली बत्ती बना ले। इस बत्ती को घी में भिगो कर बालक की गुदा के भीतर कुछ देर तक डाल कर रखने से अफरा दूर होता है।

१२—कूट, काली मिर्च, घर का धुआँ, पीपल, मैनफल, सरसों, सेंधानमक और सोंठ—एक-एक तोला लेकर बारीक चूर्ण कर ले। इसे मधु में मिला कर अग्नि पर पकावे। पक कर जब बत्ती बनाने के योग्य गाढ़ा हो जाय तो उसकी पतली बत्ती बना कर सुखा ले। इस बत्ती को गुदा में घी चुपड़ कर रखने से तुरन्त दस्त होकर क़ब्ज़ और अफरा आदि रोग दूर होते हैं।

उदर-शूल

कभी-कभी बालकों के पेट में वायु की विकृति से भयङ्कर शूल उत्पन्न हो जाता है और उसके साथ अफरा, वमन

और बेचैनी आदि उपद्रव भी देखने में आते हैं। इसके कारण बालक अच्छी तरह श्वास नहीं ले सकता। और सीधा लेट भी नहीं सकता। वह बड़े जोर से चीखता रहता है। ऐसी दशा में यदि शीघ्र ही चिकित्सा न की जाय तो बड़े अनिष्ट की आशङ्का रहती है। निम्न-लिखित उपायों तथा प्रयोगों द्वारा इस रोग में विशेष लाभ होते देखा जाता है:—

१—एक बोतल में गरम पानी भर, डाट लगा कर उसे धीरे-धीरे पेट पर फेरने से बालक का उदर-शूल शान्त हो जाता है।

२—छोटी इलायची, भारङ्गी, सेंधानमक, सोंठ और भुनी हुई हीरा हींग—ये सब समान भाग लेकर चूर्ण बना ले। इसे एक रत्ती से छः रत्ती तक गुनगुने जल में घोल कर पिलाने से उदर-शूल, अफरा आदि रोग शान्त होते हैं, तथा पाचन शक्ति बढ़ती है।

३—काले तिलों को जल में पीस कर गरम कर ले। इसकी पोटली बना कर सेंक करने से उदर-शूल अच्छा हो जाता है।

४—मिट्टी को पानी मे सान कर गरम कर ले और फिर उसकी कपड़े में पोटली बना कर पेट पर सेंक करे।

५—सरसों के बराबर हींग फुला कर और गरम जल में घोल कर बालकों को पिला देने से पेट का शूल आराम हो जाता है।

६—कभी-कभी पुराने क़ब्ज़ के कारण भी रोगी के दाहिनी तरफ़ जिगर के नीचे या आँतों में दुःसह शूल हो जाता है। यह बिना दस्त कराए शान्त नहीं होता। इस दशा में प्रायः विरेचन की औषधियाँ वमन द्वारा निकल जाती हैं। इसलिए मल को साफ़ करने के लिए गुदा में पिचकारी लगाना हितकारक है। यह बतलाया जा चुका है कि बालकों को सदैव ग्लेसरीन की पिचकारी लगाना लाभदायक है।

७—पसुली-रोग में लिखी हुई एलवा, जयपाल की गोलियों को भी विरेचन के लिए दे सकते हैं। उससे दस्त साफ़ होता है और पेट का शूल शीघ्र ही बन्द हो जाता है।

अजीर्ण

इसके विषय में पहले बहुत-कुछ लिखा जा चुका है। अधिकांश लोग अजीर्ण-रोग को साधारण समझते हैं और उसे मामूली बदहज़मी कह कर कुछ भी परवा नहीं करते। परन्तु कुछ दिनों में वह इतना भयानक रूप धारण कर लेता है कि फिर जान बचना कठिन हो जाता है। अजीर्ण के ही कारण बालकों को प्रायः वमन, लार का गिरना, हिचकी, क़ब्ज़, अतीसार आदि अनेक रोग घेर लेते हैं। छोटे बच्चों के दूध के न पचने और बार-बार वमन होने का कारण प्रायः अजीर्ण ही होता है।

चिकित्सा—इस रोग में नियमों का पालन करना मुख्य है, अर्थात् जब तक बालक स्वयं अपनी इच्छा से दूध या

कोई चीज़ न माँगे, तब तक उसे कुछ नहीं देना चाहिए। रोग शान्त होने पर धीरे-धीरे दूध, साबू, बार्ली आदि दे सकते हैं। अजीर्ण से कभी-कभी हैज़ा भी हो जाता है और कभी अलसक (गुम-हैज़ा) हो जाता है। इन रोगों की चिकित्सा पृथक् करनी चाहिए। साधारण अजीर्ण में निम्न-लिखित उपचार करने से लाभ होता है :—

१—चौकिया सुहागा, बड़ी हरड़, सेंधानमक—इन तीनों का बारीक चूर्ण बना कर सहिजने की छाल के रस में भावना देकर सुखा ले। इसको तीन रत्ती से डेढ़ माशे तक लेकर जल में घोल कर दिन में तीन-चार बार पिलाने से बालकों का अजीर्ण नष्ट होता है। इस चूर्ण से पेट की पीड़ा व अरुचि भी नष्ट होती है और निरन्तर सेवन कराते रहने से बालक हृष्ट-पुष्ट और बलवान् हो जाता है।

२—चौकिया सुहागा, काला नमक, छोटी हरड़, ज़ीरा, और सेंधानमक एक-एक तोला तथा भुनी हीरा हींग तीन माशे—इन सबको बारीक कूट कर कपड़छान चूर्ण कर ले—इसको प्रतिदिन जल में घोल कर पिलाने से बालक को अजीर्ण का रोग नहीं होने पाता, और भोजन या दूध अच्छी तरह पच कर शरीर पुष्ट होता है।

रक्त-पित्त या नक़सीर

बालकों को अत्यन्त तेज़, गरम, खट्टी, चरपरी और रूक्ष चीज़ों के अधिक खाने; या अधिक तेज़ धूप में फिरने;

या अग्नि के अधिक तापने आदि से पित्त में विकृति आकर रक्त में तेजी आ जाती है। इससे रक्त पित्त के साथ मिश्रित होकर ऊपर की तरफ़ उठता है और प्रायः नासिका द्वारा बाहर निकलने लगता है। इसे आम-लोग नकसीर कहते हैं। यों तो रक्त-पित्त का रोग अनेक प्रकार का होता है, परन्तु बालकों को विशेष कर नकसीर के रूप में ही होता है। नकसीर की चिकित्सा नीचे लिखी जाती है :—

१—नाक से रुधिर के निकलने पर बालक की नाक में अनार के फूल या सफेद दूब का रस तीन-चार बार लगाना चाहिए।

२—नकसीर के निकलते ही बालक के शिर पर ठण्डा जल डालना चाहिए अथवा बरफ़ का टुकड़ा रख कर बाँध देना चाहिए।

३—सफेद फिटकरी को पानी में घोल कर उसको नाक से खिंचवाना चाहिए।

४—एक रत्ती रस-कपूर को दो तोले पानी में पीस कर उसकी दो-तीन बूँद नासिका में डालने से नकसीर तुरन्त बन्द हो जाती है।

५—पोतनी मिट्टी पर जल डाल कर बार-बार सुँघाने से नकसीर बन्द हो जाती है।

६—अडूसे का स्वरस और शहद मिला कर कुछ दिन सेवन कराने से रक्त-पित्त रोग तथा श्वास, कास शान्त हो

जाते हैं। इसी तरह कुछ दिन वासा-घृत को दूध के साथ सेवन कराने से भी परम लाभ होता है।

७—यदि नासिका में खून के जम जाने से या भीतरी खराबी से कीड़े पड़ गए हों, तो उनको निकालने के लिए परमैगनेट पोटाश (कुओं में डालने की अङ्गरेजी दवाई) की नाक में पिचकारी देनी चाहिए। इससे सब कीड़े बाहर निकल आते हैं। अथवा फिनाइल के पानी की पिचकारी देनी चाहिए।

८—पिण्डोल मिट्टी को लेकर डले कूट डाले। रोगी के मुख और नथुनों पर बहुत बारीक कपड़ा ढीला करके बाँध दे। फिर उसे औंधा सुला कर उसकी नासिका के नीचे पूर्वोक्त मिट्टी को पर्याप्त प्रमाण में रख दे और रोगी की आँखें बन्द कराके उसके मस्तक को भी मिट्टी से ढक दे। फिर मिट्टी के ऊपर धीरे-धीरे पानी डालने लगे। जब सब मिट्टी तर हो जाय तो पानी डालना बन्द कर दे और रोगी को थोड़ी देर के लिए उसी प्रकार औंधा लिटाए रक्खे। ज्योंही इस मिट्टी की गन्ध नासिका द्वारा मस्तक में जायगी, वैसे ही कीड़े बाहर निकल आवेंगे। इस क्रिया को सावधानी के साथ करने से तीन-चार दिन में सब कीड़े बाहर निकल आते हैं।

लू लगना

कभी-कभी बालकों को बहुत गरम और तेज़ हवा में चलने से; या धूप में फिरने और जल के न मिलने से; या

नङ्गे शरीर धूप में फिरने से; अथवा हवा के न चलने पर अत्यन्त व्याकुलता होने से लू (गर्मी) लग जाती है। इसके लगने पर बालक बड़ा बेचैन रहता है; इसे प्यास बहुत लगती है; सम्पूर्ण हाथ-पैर जलते से मालूम होते हैं; दिल बहुत घबराता है; ज्वर हो जाता है और शिर अत्यन्त गरम हो जाता है। ठण्डी और तरावट की चीज़ों के देने से रोगी को बड़ी शान्ति मिलती है। इस दशा में इमली, मुनक्का, खजूर, फ़ालसा, महुवा और गाम्भारी के फलों में से किसी का पना या शरबत बना कर पिलाना चाहिए। इसके सिवाय नीचे लिखे प्रयोगों से भी इसमें लाभ पहुँचता है :—

१—कच्चे आमों को भूभल में दबा कर पका ले। इनको पानी में मथ कर मिश्री या नमक मिला कर पिलाने से लू का असर दूर हो जाता है।

२—पुराने पेड़े को जल में घोल कर शरबत बना ले, इसको पिलाने और हाथ-पैरों के तलवों में मलने से लू का लगना अच्छा हो जाता है।

३—वायु की अधिकता में प्याज़ का अर्क पिलाने से भी इस रोग में विशेष लाभ होता है।

अलाई निकलना

यह एक प्रकार की फुन्सियाँ हैं, जो बरसात में लाल वर्ण के चकत्ते के रूप में शरीर में निकलती हैं। यह विशेष कर पीठ और छाती में ही निकलती हैं। इनमें से कुछ फुन्सियों

का मुख श्वेत हो जाता है। इनके निकलने पर प्रतिदिन मुलतानी मिट्टी को उनके ऊपर पोत दे और एक घण्टे बाद लेप को उतार दे। इस प्रकार दिन में तीन-चार बार करने से दो-तीन दिन में ही सब फुन्सियाँ मिट जाती हैं। अथवा मसूर के छिलके, आँवले की राख, मेंहदी और कवीला—समान भाग में लेकर सबको पीस डाले। इसको घी में मिला कर फुन्सियों के ऊपर मल दे। इसी दवा क मेंहदी के जल में पका-छान कर रोज़ बालक को स्नान करा दे। इससे अलाई निकलना बन्द हो जाता है।

तृष्णा

कभी-कभी बालकों को प्यास इतनी लगती है कि उनका तालु, कण्ठ, होंठ और मुख सूख जाते हैं। इसके सिवाय बालक को अत्यन्त गर्मी से चक्कर आने लगते हैं। बराबर पानी पीते रहने से भी उसकी शान्ति नहीं होती। इसको हिन्दी में प्यास या ढुकास कहते हैं। इसकी चिकित्सा-विधि यह है :—

१—मुनक़्क़ा को साफ करके, उसके बीज निकाल कर सेंधानमक के साथ पीस डाले। इसे प्रातःकाल दो-तीन बार चटाने से बालक की बढ़ी हुई प्यास मिट जाती है।

२—ज़हरमोहरा ख़ताई को जल में पीस या रगड़ कर तीन-चार बार पिलाने से तृष्णा-रोग शान्त होता है।

३—कमलगट्टे की गिरी को नीम की छाल के साथ

जल में पीस-छान कर तीन-चार बार पिलाने से बढ़ी हुई प्यास बुझ जाती है।

४—अनारदाना, नागकेशर और सफेद ज़ीरा—इनका बारीक चूर्ण बना कर शहद और मिश्री के साथ चटाने से बालकों की तृष्णा दूर हो जाती है।

५—जामुन की पत्ती, आम की पत्ती, छोटी पीपल और मुलैठी—इन सबका चूर्ण कर ले। इसे पानी के साथ घोट कर और शहद मिला कर चटाने से बालकों की तृष्णा शान्त होती है।

६—पलास की छाल, सेंधानमक और हींग का चूर्ण शहद के साथ चटाने से बालकों की प्यास बुझ जाती है।

हिचकी

छोटे बच्चों को प्रायः हिचकी आया ही करती है। उसके लिए किसी प्रकार की चिन्ता करना ठीक नहीं। क्योंकि एक वर्ष से कम उमर में आने वाली हिचकियाँ प्रायः बालकों को दूध के अनियमित रूप से पिलाने से आती हैं। वे किसी प्रकार दुखदाई नहीं होतीं। परन्तु लगातार घण्टों हिचकी आना चिन्ता का विषय है। बहुत हिचकी आने से बालक की तमाम आँतें बाहर को खिंचती हैं, छाती में बड़ा कष्ट होता है, दूध को उलट देता है और कमज़ोर होकर अन्त में मृत्यु-मुख में चला जाता है। इस रोग में निम्न-लिखित प्रयोग लाभदायक होते हैं :—

१—सोनागेरू का बारीक चूर्ण शहद के साथ चटाने से बालकों की हिचकी शान्त होती है।

२—कुटकी का बारीक चूर्ण शहद के साथ चटाने से बालकों की हिचकी और वमन शीघ्र ही शान्त होते हैं।

३—छोटी पीपल और सँभालू के बीजों का क्वाथ बना कर उसमें हींग और शहद मिला कर पिलाने से बालकों की हिचकी शान्त होती है।

४—नागरमोथा, मुलैठी, सोनागेरू, काकड़ासिङ्गी, सोंठ और हींग का चूर्ण शहद के साथ चटाने से बालकों की हिचकी बन्द हो जाती है।

५—नारियल को पीस कर और मिश्री मिला कर चटाने से बालकों की हिचकी शान्त हो जाती है।

६—गीला कपड़ा बालक के तलुवे पर रखने से उसकी हिचकी शान्त हो जाती है।

७—रीठे को डोरे में पिरो कर बालक की गर्दन में बाँध देने से उसको हिचकी नहीं उठती।

विस्फोट या अफोह

मौसम की ख़राबी से अथवा अत्यन्त तेज़, गरम, खट्टी, खारी चीज़ों के खाने से शरीर में वातादि दोष कुपित होकर रक्त में एक प्रकार का उफान पैदा कर देते हैं। इससे शरीर में आग से जले हुए के सदृश फफोले उठने लगते हैं, जिनका आकार प्रायः शीतला के फफोलों के समान होता है। इनके

उठने के पूर्व बालक को वातादि दोषों की विकृति के अनुसार तेज़ अथवा मन्द ज्वर होता है और ज्वर की दशा में ही यह फफोले निकलने लगते हैं। ये फफोले दूसरे या तीसरे दिन फूट जाते हैं और उनकी जगह नए फफोले उत्पन्न हो जाते हैं। इनकी झिल्ली बहुत ही पतली होती है और खाल प्रायः श्वेत दिखाई देती है। फफोलों के चारों ओर ललाई रहती है। शरीर में प्रतिदिन दस-बीस फफोले उठते हैं और फूटते जाते हैं। इनके साथ वातादि दोषों के अन्यान्य लक्षण भी होते हैं। यह एक प्रकार का छूत वाला रोग है। इस रोग वाले बालक के पास उठने-बैठने वाले बालकों को भी यह हो जाया करता है।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा करने में सफ़ाई की विशेष आवश्यकता है। रोगी का मकान, कपड़े आदि साफ़ रहने चाहिएँ और शुद्ध वायु के आवागमन के लिए पूरा प्रबन्ध करना चाहिए। मैले-कुचैले तथा अपवित्र मनुष्यों को रोगी के पास नहीं जाने देना चाहिए।

१—लाल चन्दन और नागकेशर दोनों को चावलों के जल के साथ बारीक पीस कर लेप करने से विस्फोट की जलन तथा पीड़ा नष्ट हो जाती है।

२—सिरस की छाल, चमेली के पत्ते और लाल चन्दन—इनको चावलों के जल के साथ पीस कर लेप करने से विस्फोट अच्छा हो जाता है।

३—पटोलपत्र, गिलोय, चिरायता, अडूसा, नीम, पित-पापड़ा, खैर और नागरमोथा—इनका क्वाथ बना कर पिलाने से अथवा इस क्वाथ में मिश्री की चाशनी मिला कर शरबत बना कर चटाने से ज्वर तथा विस्फोट नष्ट होता है।

४—चिरायता, अडूसा, कुटकी, पटोलपत्र, त्रिफला, लाल चन्दन और नीम की छाल—इनका काथ बना कर पीने से विस्फोट, ज्वर, विसर्प, तृष्णा, वमन, दाह आदि अनेक रोग शान्त होते हैं।

५—इस रोग को हिन्दी में अफोह कहते हैं। इसके लिए अफोह नाम के पेड़ की डाली को प्रातःकाल तारों की रोशनी में मँगावे। उसे चलनी में रख, उसके नीचे बालक को बैठा कर और चलनी में जल डाल कर बालक को खूब अच्छी तरह स्नान करा दे। इससे इसका ज़ोर बिल्कुल कम हो जाता है। अथवा अफोह की छाल और पत्तों को जल में औटा तथा छान कर उस जल से बालक को अच्छी तरह स्नान करा दे।

हक़लाना या तुतलापन

बहुत से बड़ी उम्र के बालक शब्द का ज्ञान होने पर भी हक़ला कर बोला करते हैं। इनमें से बहुतों की जिह्वा मोटी या छोटी होती है, जिससे शब्दोच्चारण में उनकी जीभ अच्छी तरह घूम-फिर नहीं सकती। कितनों की ही जीभ की शिराएँ अग्र-भाग से जुड़ी रहती हैं, जिससे वे ठीक-ठीक

नहीं बोल सकते। इसके सिवाय बहुत से बालक लाड़ में आकर तुतला कर बोलने लगते हैं और फिर बड़े होने पर उनकी वही आदत हो जाती है। इनमें से छोटी जीभ वाले बच्चों का तुतलापन कष्टसाध्य है। जीभ के अग्र-भाग से शिरा जुड़ी हुई रहने पर किसी योग्य सर्जन से उन शिराओं को कटवा देना चाहिए। परन्तु ध्यान रहे कि जीभ एक मर्म स्थान है। उसमें शस्त्र-कर्म बड़ी ही सावधानी से करना चाहिए। साधारणतः तुतलाने के कारण कोई शब्द साफ न बोला जा सकता हो, तो उसके लिए निम्न-लिखित उपाय करने चाहिएँ :—

१—बालबच, सहिजने के बीज, पाढ़, काली मिर्च, पीपल, सेंधानमक, सोंठ और हरड़—प्रत्येक ढाई-ढाई तोले; गाय का घी एक सेर और बकरी का दूध चार सेर ले। पहले सम्पूर्ण सूखी औषधियों को जल के साथ सिल पर पीस कर कल्क बना ले। फिर वह कल्क घी और दूध में मिला कर एक क़लई के पात्र में डाल कर मन्द अग्नि से पकावे—जब केवल घी शेष रह जाय तब उतार कर छान ले। इस घी को छः माशे से एक तोला तक दूध या मिश्री के साथ सेवन कराने से बालकों का तुतलापन मिट जाता है तथा बुद्धि, स्मरण-शक्ति और जठराग्नि की वृद्धि होती है। इसका नाम सारस्वत-घृत है।

२—बालबच, कूट, पीपल, मुलैठी, श्वेत जीरा, अजवायन,

सेंधानमक, सोंठ और हरड़—प्रत्येक दो-दो तोले, गाय का घी एक सेर, गाय का दूध चार सेर लेकर पूर्वोक्त विधि से घी तैयार कर ले। इसे दूध-मिश्री के साथ सेवन कराने से कुछ दिनों में बालक की वाणी शुद्ध होकर तुतलाहट मिट जाती है।

३—दुधबच को हर समय मुख में रख कर उसका रस चूसने से भी बालक का तुतलापन मिट जाता है और बुद्धि बढ़ती है।

४—अपामार्ग की जड़, कचूर, गिलोय, कौडेनी, बाय-विडङ्ग, बालबच, सोंठ और हरड़—प्रत्येक ढाई-ढाई तोले, घी एक सेर और बकरी का दूध चार सेर लेकर पूर्वोक्त प्रकार से घी तैयार कर ले। कुछ दिनों तक निरन्तर दूध या मिश्री के साथ सेवन कराने से वाणी स्पष्ट हो जाती है।

५—ब्राह्मी, अनन्तमूल, कूट, पीपल, बालबच, श्वेत सरसों और सेंधानमक—प्रत्येक तीन-तीन तोले, गाय का घी एक सेर, जल चार सेर लेकर पूर्वोक्त विधि से घृत तैयार कर ले। इसके सेवन कराने से हकलाना बन्द हो जाता है और स्मरण-शक्ति, धारणा-शक्ति तथा आयु की वृद्धि होती है।

अन्यान्य उपाय—औषधियों का सेवन करने के अतिरिक्त निम्न-लिखित उपायों का ध्यानपूर्वक पालन करने से भी बालकों के हकलापन या तुतलापन को दूर करने में बड़ी सहायता मिलती है:—

१—जब बालक हकलावे तो उसकी ओर देख कर किसी को हँसना या उसे चिढ़ाना नहीं चाहिए। उसकी नक़ल भी नहीं उतारनी चाहिए।

२—बालक के ठीक शब्दोच्चारण करने पर उसे शाबाशी देना चाहिए।

३—बालक को बोलने में शीघ्रता न करने दे, किन्तु धीरे-धीरे बोलने का अभ्यास करावे, और श्वास लेकर बोलने दे।

४—हकलाने वाले बालक से एकान्त में प्यार के साथ बातचीत करे। जिस शब्द के बोलने में वह हकलाता हो उसे कई बार धीरे-धीरे कहलावे।

५—जब बालक हकलावे तो उससे उसके बाएँ हाथ की तर्जनी को दाएँ हाथ की अँगुली से मोड़ने को कहे।

६—बोलते समय बालक को सीधा खड़ा रक्खे या बिठावे—झुकने या मुड़ने न दे।

७—बालक को धीरे-धीरे गाने का अभ्यास डलवाए, इससे शीघ्र ही तुतलापन मिट जाता है। इसके सिवाय उससे कुछ शारीरिक व्यायाम भी कराना हितकारक है।

काग का लटक आना

शरीर में गर्मी के बढ़ जाने या अत्यन्त खाँसने से प्रायः बालकों का काग सूज कर नीचे को लटक आता है। इसके

लटकने पर बालक दूध पीना छोड़ देता है अथवा पीकर तत्काल उलट देता है। रोता भी बहुत है, परन्तु रोया नहीं जाता। खाँसी के कारण काग के लटकने पर फिर खाँसी, अनेक उपायों से भी नहीं जाती। इसको काग लटकने की खाँसी कहते हैं। काग के बैठ जाने पर खाँसी स्वयं शान्त हो जाती है। निम्न-लिखित उपायों के करने से इस रोग में लाभ पहुँचता है:—

१—काग लटकने पर चतुर धाय या माता, चूल्हे की राख और काली मिर्चों को पीस कर अपनी अँगुली में लगा कर उसके सहारे काग को धीरे-धीरे ऊपर को उठा दे। बालक को गरम चीज़ खाने को न दे और स्वयं भी गरम चीज़ न खावे।

२—चतुर स्त्री अपने हाथ की अँगुली को गले में डाल कर काग को धीरे-धीरे दबा कर बैठा दे और उस पर सिरके में घिस कर माजूफल लगा दिया करे। इस प्रकार काग के यथास्थान बैठ जाने से खाँसी भी स्वयं शान्त हो जाती है।

३—मुलतानी मिट्टी को सिरके में घोट कर अँगुली से काग पर लगाने से काग का लटकना और खाँसी दोनों ही आराम हो जाते हैं।

नाभि जाना

अनेक बार बालकों की ठुण्डो या नाभि गिर जाती है। जब तक वह न चढ़ाई जाय, बालक को किसी तरह शान्ति

नहीं मिलती है। नाभि जाने पर बालक दस्त जाने में रोता है और दस्त पतला होता है। दस्त होवे समय 'फिट-फिट' शब्द भी होता है। गुदा के नीचे एक नस के अपने स्थान से हट जाने से ये लक्षण दिखाई देते हैं। इसकी चिकित्सा के लिए किसी चतुर दाई या स्त्री से इसको सुतवा कर उठवाना चाहिए।

हँसली जाना

ग्रीवा के नीचे के भाग में छाती के ऊपर हँसली नाम की एक हड्डी होती है, जो हँसली की भाँति दोनों कन्धों से इधर-उधर लगी रहती है। तथा ग्रीवा के आगे के भाग में फैली रहती है, यह हड्डी कभी-कभी बालक को असावधानी से उठाने के कारण झटका खा जाती है, जिससे वह नीचे को बैठ जाती है या टेढ़ी हो जाती है। इससे ग्रीवा में ज़ोर पड़ने पर या इधर-उधर करवट बदलने पर बालक रोया करता है। इसको बैठाने के लिए किसी चतुर दाई से उसे अच्छी तरह सुतवाना चाहिए। नीम के पत्तों की धूनी देने से भी हँसली ठीक हो जाती है। गुञ्जा की माला अथवा चाँदी की हँसली गर्दन में पड़ी रहने से भी हँसली जाने का भय नहीं रहता।

मृगी

यह रोग बालकों को प्रायः होते देखा जाता है। बहुत से अज्ञान मनुष्य तो इसको न समझ कर बालक को भूत लगा

हुआ बताते हैं और स्यानों से उसकी झाड़-फूँक कराते हैं। इसका फल बहुत अमङ्गलजनक होता है। इस रोग की प्रथम अवस्था में ठीक चिकित्सा न होने से रोग पुराना हो जाता है और फिर उससे पूरी तरह छुटकारा पा सकना एक प्रकार असम्भव हो जाता है! अतएव ज्योंही यह रोग उत्पन्न हो, त्योंही चिकित्सा करानी चाहिए।

कारण—माता-पिता के इस रोग में ग्रस्त होने पर बालकों को भी यह रोग प्रायः हो जाता है। इसके सिवाय मस्तक (जहाँ पर सम्पूर्ण ज्ञान-तन्तुओं का समुदाय रहता है) में आघात (चोट) लगने, मस्तक के पूर्ण अवस्था को प्राप्त न होने, अस्वास्थ्यकर या गन्दे स्थानों में रहने, उचित भोजन आदि के न मिलने और कृमि-रोग के होने से यह रोग उत्पन्न होता है।

लक्षण—बिल्कुल अज्ञानावस्था के साथ-हाथ पैरों में आक्षेप (खिचाहट के साथ झटके) होना इस रोग का प्रधान लक्षण है। अर्थात् इसमें रोगी बिल्कुल बेसुध होकर एकदम गिर पड़ता है। वहाँ पर चाहे आग हो या पानी, उसको इस बात का कुछ भी ध्यान नहीं रहता। इसका दौरा होने के पहले कभी-कभी कुछ पूर्व-रूप (रोग उत्पन्न होने की पहली पहिचान) भी प्रकट होते हैं। जैसे शरीर में ऐसी चिनचिनाहट मालूम पड़ना कि शरीर में बहुत सी चिउँटियाँ दौड़ रही हैं; दृष्टि और श्रवण-शक्ति में अनेक विलक्षण

घटनाओं का भान होना, इत्यादि। इसके बाद रोगी चीत्कार करके जहाँ का तहाँ पड़ जाता है, उसके हाथ-पैर सिकुड़ जाते हैं, मुट्ठियाँ बँध जाती हैं, श्वासोच्छ्वास में कष्ट मालूम होता है, दम घुटने सा लगता है, गले की नसें तन जाती हैं, गला फूल जाता है, आँखें बाहर को निकली सी मालूम पड़ती हैं, मुख में झाग आ जाते हैं, और बिल्कुल बेहोशी की दशा उपस्थित हो जाती है। जीभ के दाँतों तले दब कर कट जाने से ख़ून निकलने लगता है। इसके बाद नींद सी आकर रोगी मरे हुए की तरह पड़ जाता है।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा में जिस तरह शारीरिक अवस्था में परिवर्त्तन हो, वैसी चेष्टा करनी चाहिए। अज्ञान और आक्षेप होते समय औषधि प्रयोग करने से कोई विशेष लाभ नहीं होता। आक्षेप तथा अज्ञानावस्था के बाद औषधि प्रयोग करने से लाभ होता है। मृगी का दौरा होते ही रोगी के बटन खोल देने चाहिएँ और धीरे-धीरे पङ्खे से हवा करनी चाहिए। हाथ-पैरों के आक्षेप को दूर करने के लिए उनको दबा कर ज़बरदस्ती सीधा करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। रोगी को होश में लाने के लिए उसके मुँह में ठण्डे जल के छींटे देने चाहिएँ। यदि इस तरह होश न हो तो धनुष्टङ्कार रोग में लिखा हुआ चूना और नौसादर का प्रयोग करना चाहिए। गाँवों के लोग इस प्रयोग को नहीं जानते। वहाँ पर एक विचित्र प्रथा यह

प्रचलित है कि मृगी का दौरा होते ही बूढ़ी स्त्रियाँ एक जूते के तले से रोगी के नथुनों को बराबर रगड़ती हैं। इस प्रकार जब तक बालक को अच्छी तरह होश नहीं आता है, तब तक रगड़ती रहती हैं। कुछ लोग मृगी का दौरा होते ही जूते की हल्की तीन चोट रोगी के शिर में मारते हैं। इसका अर्थ असल में बालक को होश में लाना है। नासिका की शिरा, धमनी और स्नायुओं का शिर से विशेष सम्बन्ध रहता है। नासिका के मर्दन करने से शिर के स्नायुओं में शिथिलता नहीं आने पाती। इसके साथ ही स्त्रियाँ रोगी के कानों को भी सेंकती रहती हैं। दौरा शान्त होते ही रोगी को बलवर्द्धक चीजों का सेवन कराना हितकारक है। यदि दौरे के समय गिलहरी को काट कर उसका दो तोले ताजा रक्त नासिका में डाल दे या पिला दे तो इस रोग का फिर कभी दौरा नहीं होता। दौरा शान्त होने पर निम्न-लिखित उपाय करने चाहिएँ :—

१—प्रतिदिन रोगी को शहद के साथ दुधबच का चूर्ण; या दूध के साथ शतावर का चूर्ण; या पुराने पेठे के रस के साथ मुलैठी का चूर्ण; या ब्राह्मी के स्वरस में शहद मिला कर सेवन करावे। इनके सिवाय आयुर्वेदोक्त पानीय कल्याण, क्षीर-कल्याण तथा पञ्चगव्य आदि घृत और शुद्ध पुराना दश वर्ष का रक्खा हुआ घृत सेवन कराने से विशेष उपकार होता है। अपस्मारारि-लोह, चतुर्मुख-रस, रसराज-रस और

वृहत्-चिन्तामणि-रस आदि औषधियाँ त्रिफला का जल या बच का चूर्ण मिला कर पेठे के जल या अन्य किसी योग्य अनुपान के साथ सेवन कराना परम लाभदायक है।

२—काली मिर्च ४ रत्ती और अगथिए की हरी पत्ती २ माशे लेकर थोड़े से गोमूत्र के साथ महीन पीस कर कपड़े में डाल कर उसका रस निचोड़ ले। दिन में पाँच-छः बार इसकी नस्य लेने से मृगी-रोग शान्त होता है।

३—अकरकरा का चूर्ण शहद के साथ दोनों समय चटाने से बालकों की मृगी अवश्य शान्त होती है।

४—शुद्ध सोनामक्खी की भस्म और बालबच समान भाग में पीस कर कपड़छन चूर्ण बना ले। इसको एक रत्ती से दो माशा पर्यन्त शहद के साथ दोनों समय चटाने से बालकों की बहुत पुरानी मृगी अच्छी हो जाती है।

५—जस्ता और ताँबे की चादर को एक में पिटवा कर एड़ियों के नाप का जूते के आकार का यन्त्र बनवा ले। उसको रात को सोते समय प्रतिदिन एड़ियो में बाँधने से मृगी के रोग में अपूर्व लाभ होते देखा गया है।

६—पीपल छोटी, चोपचीनी, बालबच, सोंठ, अकरकरा, काली मिर्च—सब तीन-तीन तोले; तिल का तेल एक सेर और जल दो सेर ले। सब औषधियों को जल में पीस, कल्क बना ले। फिर जल में तेल और लुगदी मिला कर पका ले। पकने पर तेल को छान ले। इस तेल की नस्य देने से और

गाय के पाव भर दूध में एक या दो माशे यह तेल मिला कर दोनों समय पिलाने से तथा साथ ही बालक के शिर में इस तेल की मालिश करने से मृगी-रोग में बड़ा लाभ होता है।

७—गाय का घी, गाय के गोबर का रस, गाय का दही और गाय का दूध एक-एक सेर तथा जल दो सेर लेकर सबको एक क़लई के पात्र में डाल कर मन्दाग्नि पर पकावे। घी मात्र अवशेष रहने पर उतार कर छान ले। इस घी को निरन्तर दूध या मिश्री में मिला कर दोनों समय सेवन कराने से बालकों का मृगी-रोग नष्ट हो जाता है। इसका नाम पञ्चगव्य-घृत है।

८—मुलैठी एक पाव, गाय का घी एक सेर, पेठे का रस अठारह सेर। मुलैठी को जल में पीस, कल्क (लुगदी) बना ले। फिर इस कल्क; घी और पेठे के रस को एक क़लई के पात्र में डाल कर मन्द अग्नि से पकावे। घृत मात्र अवशेष रहने पर उतार कर छान ले। इस घृत को दूध या मिश्री के साथ दोनों समय सेवन कराने से बालकों का मृगी-रोग अवश्य ही नष्ट होता है। अनेक बार यह दवा आज़माई हुई है—बहुत कम लोग इसके सेवन से फ़ेल हुए हैं। इसका नाम महाचैतस घृत है।

९—हींग तलाव और सेंधानमक पाँच-पाँच तोले, गाय का घी आध सेर, गोमूत्र दो सेर—सबको एकत्र पका कर घृत मात्र अवशेष रहने पर उतार कर छान ले। इसको दो

या तीन रत्ती से तीन माशे पर्यन्त दूध के साथ दोनों समय सेवन कराने से मृगी-रोग में लाभ होता है।

१०—दो माशे ब्राह्मी-रस में बालबच और कुलिञ्जन घिस कर दोनों समय पिलाने से, और साथ ही एक तोला तिल के तेल में चार तोला ब्राह्मी-रस पका कर शिर में मलने से बालकों की मृगी शान्त हो जाती है।

११—पुराने पेठे के रस में मुलैठी का चूर्ण मिला कर दोनों समय एक सप्ताह तक सेवन कराने से बालकों की मृगी आराम होती है।

१२—शङ्ख का कीड़ा, जो अधिकतर द्वारका, गया आदि तीर्थों में मिलता है, लेकर जल के साथ खूब घोट कर मूँग के बराबर गोली बना ले। मृगी के दौरे के पहले इसकी एक गोली जल में घिस कर पिलावे और एक गोली दौरे के समय पिलावे। इससे बालकों की मृगी में विशेष लाभ होता है।

पाण्डु-रोग

नवजात बालक के पाण्डु-रोग को अङ्गरेज़ी में "एकटेरस न्यूनोटौरस" कहते हैं। हिन्दी में इसे साधारण रूप से पीलिया या कमलवाय कहते हैं। सद्यःप्रसूत बालक के लिए यह रोग विशेष कठिन नहीं होता। क्योंकि दस्त के साफ होते ही यह अच्छा हो जाता है। किन्तु कुछ बड़े

(४-६ महीने के) बालक के लिए यह रोग अत्यन्त विपत्ति-कारक होता है। हम यहाँ पर सद्यःप्रसूत बालक के पाण्डु की चिकित्सा के विषय में लिखते हैं। बड़े बालकों का पाण्डु बड़ी कठिनता और विशेष अनुभव से ही अच्छा किया जा सकता है। इसलिए बड़ी अवस्था में यह रोग होने पर किसी अनुभवी बाल-चिकित्सक से सावधानी के साथ चिकित्सा कराना चाहिए।

सद्यःप्रसूत बालक अधिक ठण्ड या गर्मी लगने के कारण इस रोग में ग्रसित हो जाता है। माता के दूध में खराबी होने से भी यह रोग हो सकता है। प्रसव होने के बाद शीघ्र ही बालक को मल-त्याग न होने से यकृत् क्रिया अच्छी तरह नहीं होती। इससे भी पाण्डु-रोग उत्पन्न हो जाता है।

लक्षण—इसमें बालक का शरीर और विशेष कर आँखें पीली पड़ जाती हैं, मूत्र तथा मल भी पीले रङ्ग का आता है, पेट कड़ा मालूम पड़ता है, और छाती के नीचे पेट में कुछ सूजन सी दीखने लगती है। इसके कारण बालक अच्छी तरह दूध नहीं पीता और उसको खुश्की मालूम होती है। इसके साथ कभी-कभी ज्वर हो जाया करता है। इससे बालक अत्यन्त कमजोर हो जाता है। और अन्त में उसकी मृत्यु तक हो जाती है।

चिकित्सा—यदि बिना औषधि-प्रयोग के स्वतः यह पीड़ा शान्त हो सकती हो तो यह सबसे अच्छी बात है। स्वतः

शान्त न होने पर साधारण रूप में मृदु विरेचन देने से रोग शान्त हो जाता है। यदि रोग अधिक बढ़ जाय और यह जान पड़े कि माता के दूध में कोई दोष है, तो उसके लिए औषधि-प्रयोग द्वारा माता के दूध को शुद्ध करना चाहिए। बालकों के पाण्डु-रोग में निम्न-लिखित प्रयोग लाभदायक होते हैं :—

१—हल्दी, देवदारु, छोटी कटेली, गजपीपल, पृष्ठपर्णी (पिठवन), शतावर, अमलतास का गूदा—इन सबको समान भाग में लेकर, क्वाथ करके दिन में दो बार पिलाने से पाण्डु-रोग नष्ट होता है।

२—उपरोक्त प्रयोग की औषधियों में से अमलतास को छोड़ कर बाक़ी औषधियों का बारीक चूर्ण कर दो रत्ती प्रमाण में शहद और घी के साथ दिन में दो-तीन बार चटाने से बालकों का पाण्डु-रोग दूर होता है।

३—दूध में पीपल डाल कर पकावे। उस दूध को दिन में कई बार पिलाने से पाण्डु, प्लीहा तथा मन्दाग्नि-रोग नष्ट होते हैं।

माता के दूध में दोष होने पर पहले लिखी हुई स्तन्य-शोधक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए और माता को पूरे पथ्य से रखना चाहिए। साथ ही बालक की क़ब्ज़ से रक्षा करना आवश्यक है। बड़ी उमर के बालकों को यदि यकृत्-वृद्धि के कारण पाण्डु-रोग हो तो यकृदरिलोह-रस

का सेवन कराना चाहिए। इससे बहुत लाभ होता है। इसके बनाने की विधि यह है :—

सहस्रपुटी अभ्रक, कान्तलोह, षड्गुण बलिजारित मकरध्वज, जम्बीरी नींबू के बीज की मिङ्गी, अतीस, शरपुङ्खे की जड़, लाल चन्दन और पाषाणभेद—प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण करके गिलोय के रस में खूब खरल करे। इसकी आधी रत्ती की गोली बना कर शहद और अदरक के रस के साथ अथवा कुमार्यासव के साथ सेवन कराने से बालकों के यकृत्, प्लीहा, ज्वर, शोथ, पाण्डु, क़ब्ज़, कास, आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं।

रक्त-ज्वर (लाल बुख़ार)

इसको हिन्दी में लाल बुख़ार कहते हैं, क्योंकि इसमें ज्वर के साथ अत्यन्त लाल फफोले या चकत्ते उठते हैं। यह मसूरिका या शीतला की तरह विशेष रूप से बाल्यावस्था में होने वाला रोग है। कभी-कभी बड़ी उमर के मनुष्यों को भी यह होता देखा गया है। यह रोग जन्म-भर में दुबारा आक्रमण नहीं करता। दरिद्रता और बड़े-बड़े नगरों की घनी बस्ती में निवास तथा बाल्यावस्था इसके पूर्वप्रवर्त्तक कारण हैं। यह तीन दिन से लेकर पाँच दिन तक में प्रकट होता है और कभी-कभी आठ दिन भी लग जाते हैं। इन दिनों में रोगी बड़ा दुर्बल और बेचैन हो जाता है।

लक्षण—रोग के आरम्भ में सामान्य रूप में शीत

और कम्प होता है। शरीर का ताप धीरे-धीरे १०४ डिग्री हो जाता है। कभी-कभी इससे भी अधिक रहता है। इसके साथ आलस्य, भूख की कमी और प्यास की अधिकता रहती है। किसी-किसी को बेचैनी, प्रलाप और आक्षेप आदि लक्षण देखे जाते हैं। इसके आरम्भ में सर्वाङ्ग में वेदना और कण्ठ में व्यथा होने लगती है। दूसरे दिन छाती के ऊपर गले के पास छोटे-छोटे लाल दाग़ दिखाई देते हैं। शीघ्र ही ये दाग़ मुख-मण्डल तथा सारे शरीर में फैल जाते हैं। दाग़ों का रङ्ग गहरा लाल होता है। ये धीरे-धीरे मिल कर बड़ा आकार धारण कर लेते हैं। दाग़ पाँच दिन तक प्रबल रूप में रहते हैं और छठे दिन से बैठने लगते हैं। नवें अथवा दसवें दिन इनके ऊपर की त्वचा झड़ने लगती है।

इस रोग के चार भेद होते हैं—स्कार्लेटिना मिसप्लेक्स (मण्डलात्मक रक्त-ज्वर); स्कार्लेटिनाएजिनोसा (गोभी के सदृश पिडिका-युक्त), स्कार्लेटिना मलिग्ना (घोर रक्त-ज्वर) और स्कार्लेटिनालेटेण्ट (गुप्त रक्त-ज्वर)। इसमें से पहले प्रकार का रक्त-ज्वर अत्यन्त मृदु होता है। दूसरे और चौथे प्रकार के रक्त-ज्वर पहले प्रकार की अपेक्षा कुछ कठोर होते हैं। परन्तु तीसरे प्रकार का अत्यन्त कठोर प्रकृति का होता है। प्रथम प्रकार के स्कार्लेटिना मिसप्लेक्स में शरीर का ताप १०० या १०२ डिग्री रहता है, और गले में सामान्य वेदना रहती है। दूसरे में गले के भीतर लाल वर्ण, अत्यन्त वेदना,

खाने या मुख के फैलाने में अत्यन्त कष्ट, और गले की (ग्रन्थि) का फूलना आदि लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। तीसरे में अत्यन्त दुर्बलता, श्वास में दुर्गन्ध, बेचैनी, प्रलाप, अचैतन्यता, नाड़ी की गति दुर्बल और तेज आदि लक्षण होते हैं। शरीर के अनेक स्थानों के रक्त निकलने लगता है और कभी-कभी शीताङ्ग आदि भयानक विकारों के लक्षण भी देखने में आते हैं। चौथे प्रकार में कोई विशेष लक्षण नहीं दिखाई देते। किन्तु त्वचा के गिरने और अन्त में शोथ उत्पन्न होने से रोग का निर्णय आसानी से किया जा सकता है।

इस रोग का भावी फल बालक तथा गर्भिणी के लिए आशङ्काजनक होता है। गले में अधिक क्षत होने, या फफोलों के धूम्रवर्ण होने, या शरीर के अनेक स्थानों से रक्त-स्राव होने पर इसका भावी फल अत्यन्त भयङ्कर होता है। दुर्बलता अधिक बढ़ जाना और सम्पूर्ण विकार-लक्षणों के एक साथ उत्पन्न होने पर भी इसका फल अमङ्गलकारक होता है।

चिकित्सा—इसमें मृदु विरेचक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। आभ्यन्तरिक ताप निवारण के लिए पोटाशक्लोरस् और लाइकर एमोनिया एसिटेटिस् का प्रयोग करना चाहिए। कुछ गुनगुने जल में कार्बोलिक लोशन मिला कर शरीर को पोंछना चाहिए। कुनैन और टिङ्क्चर-स्टील मिला कर सेवन कराना लाभदायक है। इस दवा के साथ में यदि गन्धकाम्ल मिला दिया जाय तो बहुत उत्तम

होता है। खाने के लिए दूध और दलिया आदि देने चाहिएँ। ब्राण्डी और अन्य प्रकार की शराब भी देने में हानि नहीं है। रोगी यदि गले से निगल न सकता हो तो उसे गुदा में पिचकारी लगा कर आहार देना चाहिए। प्रलाप और अचैतन्य की अवस्था होने पर रोगी को राई के जल से स्नान कराना और रोगी के शिर पर ठण्डा जल छोड़ना चाहिए।

शीतला (डॉक्टरी मत)

यह एक संक्रामक और स्पर्शाक्रमक स्फोट-ज्वर है। इसके विष का बीज शरीर में पहुँच कर कुछ समय तक गुप्त रहता है। फिर भयङ्कर ज्वर और त्वचा में एक प्रकार की खुजली पैदा कर देता है, जिससे समस्त देह में बड़े-बड़े दाने या फफोले उठ आते हैं।

कारण—खाने, पीने, पहनने और रहन-सहन में मैलापन रखना, मन में इस रोग के होने का डर रखना आदि इसके पूर्व-प्रवर्तक कारण हैं। स्पर्शाक्रमण इस रोग का उद्दीपक कारण है। मैले-कुचैले और काले रङ्ग वाले मनुष्यों को यह रोग अधिक होता है।

लक्षण—इसका अन्तःस्फुरण-काल बारह दिन तक है। विष के संक्रमण के प्रथम दिन से तेरह दिन तक रोगी अल्प या अधिक ज्वर से पीड़ित रहता है। ज्वर के आक्रमण होने पर रोगी का शरीर खूब हिलता है। इसमें शारीरिक ताप आरम्भ में ही १०६ डिग्री तक चढ़ जाता है।

इस रोग के प्राथमिक ज्वर में शिर की वेदना, मुख-मण्डल लाल, हाथ और पैरों का भड़कना, अत्यन्त दुर्बलता, प्रलाप, बेचैनी, बेहोशी, आक्षेप, सर्दी और गले में वेदना का होना, आदि लक्षण देखने में आते हैं। यह सम्पूर्ण लक्षण दो दिन तक रहते हैं और फिर फफोले निकल आते हैं। पहले कपाल और हाथों में छोटे-छोटे लाल दाग़ दिखाई देते हैं। ये दाग़, धीरे-धीरे बढ़ते हुए एक या दो दिन में सम्पूर्ण शरीर में फैल जाते हैं। आम तौर से इनकी संख्या १०० से ३०० तक होती है, पर कभी-कभी १००० तक भी देखी गई है। सबसे अधिक फफोले या दाने मुख पर उठते हैं।

इस रोग के अनेक भेद होते हैं। उनमें से पहले भेद का नाम विच्छिन्न-शीतला है। इसकी प्रकृति बहुत मृदु होती है और इसमें विशेष खतरा नहीं होता। यदि विच्छिन्न-शीतला बालकों के दाँत निकलते समय आक्रमण करे तो वह अवश्य कुछ कष्टसाध्य होती है।

दूसरे भेद को स्रावयुक्त-शीतला कहते हैं। इसमें पहले शरीर में बहुत से छोटे-छोटे दाने उठते हैं और शीघ्र ही वे भर कर सूखने लगते हैं। देखने में ये दाने कम ऊँचे और अधिक चौड़े होते हैं। इनमें पीब और रक्त भरा रहता है। मस्तक, मुख-मण्डल और कण्ठ में यह दाने अधिक संख्या में निकलते हैं। इनके सूख जाने पर रोगी के मुख पर सूखे हुए चमड़े का एक बड़ा टुकड़ा दिखाई देता है। इसी को

लोग पपड़ी जमना कहते हैं। पपड़ी को ज़बर्दस्ती निकालने से उसके नीचे दाग़ रह जाते हैं। जब ये दाने शरीर में निकलते हैं तो इनके मध्यवर्ती स्थान में लाल रङ्ग की रेखाएँ नहीं दिखाई देती हैं। सम्पूर्ण त्वचा काले और लाल रङ्ग की हो जाती है। इस रोग के आरम्भ में जो ज्वर चढ़ता है वह अन्त तक चढ़ा रहता है। यदि पहली बार का ज्वर उतर जाता है तो दुबारा फिर ज्वर हो आता है, जो बहुत तीव्र नहीं होता। ज्वर के साथ-साथ बेचैनी, प्रलाप आदि कठिन स्नायविक लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार की शीतला साङ्घातिक होती है।

तीसरे भेद को अर्द्ध-स्रावयुक्त-शीतला कहते हैं। यह प्रथम तथा द्वितीय प्रकार की शीतला के बीच की होती है। इसके दाने पूरे भरे हुए और पास-पास होते हैं। इसमें किसी प्रकार का प्राण-भय नहीं रहता।

चौथे भेद को द्राक्षागुच्छ-शीतला कहते हैं। यह अत्यन्त साङ्घातिक होती है। इसके दाने अङ्गूर के गुच्छों के सदृश एकत्रित दिखाई देते हैं।

पाँचवे भेद को भयानक-शीतला कहते हैं। यह भी साङ्घातिक होती है। इसके दाने काले और रक्त से परिपूर्ण होते हैं। इसमें कभी-कभी शरीर में से रक्तस्राव होने लगता है। मुख-मण्डल मैला और कान्तिहीन हो जाता है। इसके सिवाय बेचैनी, प्रलाप, त्वचा में घाव, पाक और सड़न आदि उपद्रव भी देखने में आते हैं।

छठे भेद को साधारण-शीतला कहते हैं। इसके दानों के भीतर पीब सञ्चित नहीं होता, और वे चार-पाँच दिन में ही सूख जाते हैं। इसमें दूसरी बार ज्वर भी नहीं आता। यह शीतला टीका लगने के बाद निकलती है।

भावी फल—इस रोग का भावी फल अत्यन्त साङ्घातिक होता है। इसमें दो तिहाई के क़रीब रोगियों की मृत्यु हो जाती है। शीतला में प्रबल ज्वर, दुर्बलता, श्वास लेने में कष्ट, शरीर में से पीब बहना और रक्तस्राव आदि लक्षणों के प्रकट होने पर रोग भयङ्कर हो जाता है। बहुत छोटे बालकों, युवा पुरुषों और गर्भिणी स्त्रियों को यह रोग होने पर कठि-नता से आराम होता है। परन्तु दस वर्ष की आयु से लेकर पन्द्रह वर्ष तक के बालक प्रायः अच्छे हो जाते हैं। शीतला के दाने बाहर निकलने के बाद यदि गर्मी की अधिकता, कमर में दर्द और अत्यन्त वमन हो, तो रोग को कठिन समझना चाहिए।

साधारण चिकित्सा—शीतला-रोग के निवारण का सबसे अच्छा उपाय यह है कि बालक को छोटी अवस्था में ही टीका लगवा दे। टीका लगाने पर शीतला उत्पन्न होने से उसकी लक्षणों के अनुसार चिकित्सा की जा सकती है। जैसे रोगी को प्रलाप होने पर ब्रोमाइड पोटाशियम के साथ लाइकर एमोनिया एसिटेटिस् मिला कर चार-चार घण्टे बाद सेवन कराने से लाभ होता है। क़ब्ज़ होने पर सल्फेट

ऑफ़ मिगनेशिया के साथ क्षार मिला कर दिन में चार बार देने से तकलीफ दूर हो जाती है। अतीसार के होने पर अफीम मिली हुई औषधि का प्रयोग करना चाहिए। शीतला के दाने निकलने से उनके पूर्ण हो जाने और पपड़ी या खुरण्ट के गिर जाने तक पोस्त के तेल के साथ कार्बोलिक एसिड का लेप करना आवश्यक है। इस क्रिया से केवल रोगी का दुःख ही निवृत्ति नहीं होता, किन्तु रोगी के पास रहने वाले या उसके घर के पास रहने वाले मनुष्यों की भी रक्षा होती है। क्योंकि यह एक संक्रामक रोग है और उचित प्रतिबन्धक उपायों के न करने से दूसरे लोगों को भी इसकी छूत लग जाने का डर रहता है। इसलिए रोगी की पपड़ी या खुरण्ट और ओढ़ने-बिछाने के सम्पूर्ण कपड़ों को आग में जला देना अत्यन्त आवश्यक है। संक्रामक रोगों को रोकने के लिए जो और उपाय हैं उनको भी पूरी तौर से काम में लाना चाहिए।

शीतला-रोग में जब दुबारा ज्वर आवे तो कोई मृदु-विरेचक औषधि देनी चाहिए। अतीसार होने पर सङ्कोचक या स्तम्भक औषधि देना उचित है। पथ्य के लिए दाल का पानी, दूध, मलाई और मुर्ग़ी के कच्चे अण्डे देने चाहिएँ। शरीर में बहुत अधिक कमज़ोरी या ढीलापन होने पर कोई उत्तेजक औषधि (शराब आदि) सेवन करावे। शारीरिक ताप के बहुत बढ़ जाने पर २०० डिग्री के गरम जल से रोगी का

स्नान कराना चाहिए। फोड़े या विद्रधि होने पर उन्हें चीर कर साफ़ कर देना उचित है।

शीतला (आयुर्वेदिक मत)

आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थों में शीतला के सात भेद बतलाए गए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—बृहती, कोद्रावा, पाणिसहा, सर्षपिका, दुःख-कोद्रावा, हाम या खसरा, और चर्मन्नी।

पूर्वरूप—शीतला उत्पन्न होने के पूर्व रोगी की आँखें लाल और पानी से भरी हुई रहती हैं। मुख-मण्डल लाल और भरमाया हुआ दिखाई देता है। देह में खुजली और फूटन के साथ शोथ होता है। शरीर जकड़ा हुआ सा, बेहोशी, भ्रम (चक्कर), अन्न में अरुचि, भोजन करने पर वमन आदि उपद्रव भी देखने में आते हैं। शरीर के वर्ण में परिवर्त्तन हो जाता है। छोटे-छोटे बालक बार-बार चौंकते और डरते हैं। खसरे में तीन दिन तक ज्वर बना रहता है और फिर ज्वर कम होकर दाने निकलते हैं। बड़ी शीतला में सात दिन तक ज्वर बराबर बना रहता है और फिर दाने निकलने शुरू होते हैं। सातों प्रकार की शीतला के लक्षण नीचे लिखे जाते हैं :—

बृहती शीतला—इसमें पहले ज्वर आकर पश्चात् बड़ी-बड़ी फुन्सियाँ शरीर में उत्पन्न होती हैं। यह शीतला प्रथम सात दिन में निकलती है और दूसरे सात दिनों में भर जाती है। तीसरे सप्ताह में स्वयं सूख कर और खुरण्ट बँध कर

झड़ जाती है। इसमें खुरण्ट को निकालने तथा फुन्सियों को फोड़ देने से मुख में दाग़ रह जाते हैं। जिनसे मनुष्य जन्म भर कुरूप दिखाई देता है। परन्तु बहुत छोटी अवस्था में पैदा हुए शीतला के दाग़ युवावस्था में प्रायः भर जाते हैं। यदि इस शीतला के दाने पक कर फूटें और बहने लगें तो उनके ऊपर जङ्गली उपलों की राख को बुरकना चाहिए। नीम के पत्तों से मक्खियों को उड़ाता रहे। ज्वर की दशा में भी ठण्डा जल देना चाहिए। क्योंकि इसमें गरम चीज़ का प्रयोग निषेध है। रोगी को एकान्त, रमणीक, पवित्र और शीतल स्थान में रखना चाहिए। किसी अपवित्र मनुष्य को उसके पास न बैठने दे, क्योंकि अपवित्रता से रोग को बल मिलता है। इस रोग में आम तौर से चिकित्सा करने में दोष माना जाता है। किसी प्रकार की औषधि देना इसमें भयङ्कर समझा जाता है। परन्तु विदेशी चिकित्सा-पद्धतियों में इस विषय का कोई कथन नहीं मिलता। इसलिए जो लोग औषधि देना चाहें, उनको योग्य चिकित्सक से चिकित्सा करानी चाहिए।

कोद्रावा—यह वात और कफ की विशेष विकृति से उत्पन्न होती है। इसका आकार कोदों के समान होने से इसको कोद्रावा कहते हैं। बहुत से अनजान मनुष्य इसको पकने वाली शीतला कहते हैं। परन्तु वास्तव में यह शीतला पकती नहीं। इसके कारण शरीर में जलशूक (एक प्रकार

का कीड़ा) के काटने के समान पीड़ा होती है। यह पीड़ा सात या ग्यारह दिन में बिना औषधि के ही शान्त हो जाती है। यदि इसमें औषधि देने की आवश्यकता पड़े तो "खदिराष्टक" क्वाथ देना चाहिए।

पाणिसहा—यह गर्मी के कारण उत्पन्न होती है। यह देखने में राई के समान आकार की होती है और इसमें खुजली विशेष चलती है। इसके ऊपर धीरे-धीरे हाथ रगड़ने से रोगी को बहुत अच्छा लगता है और इसी वास्ते इसको 'पाणिसहा' कहते हैं। यह अपने आप सात दिन में सूख जाती है।

सर्षपिका—सरसों के समान आकार वाली और पीली सरसों के समान रङ्ग वाली शीतला सर्षपिका कही जाती हैं। इसमें तेल की मालिश नहीं करनी चाहिए।

दुःख-कोद्रवा—यह शीतला साधारण होती है और किसी प्रकार की गर्मी के कारण बालक के मुख पर राई के समान आकार में उत्पन्न होती है। यह अपने आप सूख जाती है।

खसरा—इसमें पहले ज्वर आता है और फिर लाल तथा ऊँचे चकत्ते पड़ जाते हैं। उनमें वेदना भी होती है। इस शीतला में ज्वर तीन दिन तक रहता है। इसकी फुन्सियों के मिल जाने से अनेक फुन्सियाँ दीखने लगती हैं।

चर्मनी—जिस शीतला में कुछ फुन्सियों का रङ्ग काला होता है, उसको चर्मनी कहते हैं।

शीतला के उपद्रव—शीतला की अवस्था में ज्वर, दाह, खुजली, हड़फूटन, भयङ्कर पीड़ा, शिर में दर्द, अरुचि, वमन, मूर्च्छा, श्वास, हिचकी, फफोलों का पक कर बहना और मांस का सड़ना, शरीर का रङ्ग काला या पीला हो जाना, कम्प, प्रलाप, निमोनिया, प्लूरिसी मूर्च्छा आदि अनेक उपद्रव होते हैं।

शीतला के घातक लक्षण—यदि आरम्भ ही में शीतला के दाने काले, अत्यन्त लाल, रूक्ष और कठोर हों; या शरीर में असह्य पीड़ा, कँपकपी, बेचैनी, मूर्च्छा, खाँसी, कण्ठ-शोष और प्यास की अधिकता आदि लक्षण दिखाई दें तो वह कष्टसाध्य समझी जाती है। यदि दाने काले रङ्ग के, चिपटे, उभड़े, फैले हुए तथा बीच में गहरे और चारों ओर किनारों पर हुए हों, मांस सड़ कर दुर्गन्ध आती हो, सड़ा हुआ पीब निकलता हो, वेदना के कारण रोगी अत्यन्त बेचैन हो, तो उस शीतला को असाध्य समझना चाहिए। अथवा यदि शीतला के दानों में से कोई काले, कोई लाल और कोई सफ़ेद हों, नासिका और मुख से रक्त-प्रवाह होता हो, श्वास, मूर्च्छा और तीव्र-ज्वर का वेग हो, गले में कफ के कारण घर-घराहट होती हो, रोगी के चारों तरफ़ दुर्गन्ध फैल रही हो, और गठिया, वायु आदि भयङ्कर व्याधियाँ उत्पन्न हो गई हों तो शीतला को असाध्य समझना चाहिए। अथवा यदि रोगी नाक से ही अधिक श्वास खींचता हो, प्यास अधिक

लगती हो, तथा उसके शरीर में वात-व्याधि, अपतान, लक़वा, पक्षाघात, धनुस्तम्भ आदि रोगों का उदय हो गया हो तो उसका जीवन तत्काल ही नष्ट हो जाता है।

सान्निपातिक ज्वर के समान शीतला में भी उतरते समय शोथ हो जाता है। यह शोथ कोहनी और मणिबन्ध (पहुँचा) में अथवा कन्धों के ऊपर भयानक रूप से उत्पन्न होता है। इसकी चिकित्सा बहुत कठिनता से हो सकती है। बहुत से वैद्य तो इसे असाध्य कहते हैं और इसकी चिकित्सा नहीं करते।

खसरा के विशेष लक्षण—खसरा के उत्पन्न होने के पूर्व ज्वर होता है और साथ ही सर्वाङ्ग में वेदना होती है। यह ज्वर तीन दिन लगातार बना रहता है। इस रोग में आँखें लाल रहती हैं, शरीर में थोड़ी-थोड़ी खुजली सी मालूम पड़ती है, और शरीर की त्वचा लाल तथा खिंची हुई सी रहती है। ज्वर शान्त होते ही शरीर में खसरा निकलना शुरू हो जाता है। यह पहले कपाल और ठोड़ी में निकलता है, बाद को सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है। इसमें ज्वर की दशा में क़ब्ज़, अतीसार, अरुचि, कास, श्वास लेने में कष्ट, छाती में दर्द, मूर्च्छा, बेहोशी तथा बेचैनी होती है। अगर किसी कारण खसरे के दाने अच्छी तरह न निकलें, किन्तु रुक जायँ तो रोगी की दशा ख़राब हो जाती है, उसको बहुत दिन तक दुःख भोगना पड़ता है, और रोग कष्टसाध्य हो जाता है।

प्रायः यह रोग बालकों को ही होता है। इसमें लाल रङ्ग की छोटी-छोटी फुन्सियाँ शरीर में उठती हैं और मिल कर मसूर के दाने के बराबर रूप धारण कर लेती हैं। ये दाने सात से लेकर ग्यारह दिन में अच्छी तरह सूख जाते हैं।

यदि खसरे की फुन्सियाँ नीली, चपटी, फैली हुई, बीच में नीची, अत्यन्त वेदनायुक्त, देर में पकने वाली हों, और उनके पकने पर दुर्गन्धयुक्त पीब निकलने लगे तो उनको असाध्य समझना चाहिए। उपद्रव और अन्यान्य विकृतियाँ शीतला के समान ही समझना चाहिए। खसरा शीतला का एक भेद है, अतएव शीतला के अनुसार ही उसकी रक्षा आदि की जाती है और शीतला की चिकित्सा से विशेष लाभ हो सकता है।

चिकित्सा—शीतला के निकलने पर रोगी को किसी अनुभवी विद्वान् वैद्य की अनुमति से देश, काल का विचार करते हुए सर्व-प्रथम वमन-विरेचन देना चाहिए। वमन-विरेचन से कभी-कभी रोग का वेग बहुत कम हो जाता है तथा अन्य उपायों के करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वमन का क्वाथ बनाना नीचे लिखा जाता है:—

मुलेठी, मैनफल, बच और कुड़े की छाल—छः छः माशे लेकर कपड़छन चूर्ण बना ले। फिर अडूसे की जड़ की छाल, नीम के तथा पटोल के पत्ते छः छः माशे जौकुट कर आध सेर जल में पकावे। आध पाव रहने पर उतार कर छान

ले। इसमें पूर्वोक्त कपड़छन चूर्ण दो माशे मिला कर बालक को पिला दे, इससे वमन होकर दोष निकल जाता है। यह मात्रा दश वर्ष आयु के बालक के वास्ते है, अवस्थानुसार इसमें घटा और बढ़ा भी सकते हैं। एक बार पिलाने से वमन न हो तो दो-तीन बार इसी तरह पिलावे।

वमन अच्छी तरह होने पर भी दोष का वेग न घटे तो रोगी के बलवान् होने पर उसकी अवस्थानुसार साधारण विरेचक औषधि देकर दो-तीन दस्त करावे। इसके लिए सफ़ेद निशोथ का चूर्ण या कास्टर ऑइल (एरण्ड-तैल) देना बहुत अच्छा है। दस्त कराने के लिए बहुत तेज़ औषधि कभी नहीं देनी चाहिए।

शीतला के दाने प्रकट होकर छिप जावें तो उनको प्रकट करने के लिए नीम की छाल, पित्तपापड़ा, पाढ़, पटोलपत्र, कुटकी, अडूसा, धमासा, आँवला, खस, लाल चन्दन— इनका क्वाथ बना कर और मिश्री मिला कर पिलाना चाहिए। इससे शीतला-ज्वर नष्ट होता है और छिपे हुए दाने प्रकट हो जाते हैं। अथवा कचनार की छाल का क्वाथ बना कर उसमें स्वर्णमाक्षिक की भस्म डाल कर पिलाने से छिपे हुए दाने बाहर निकल आते हैं। इसी तरह अनविधे मोती देने से अथवा मुनक़्क़ा में केशर रख कर देने से छिपी हुई शीतला प्रकट हो जाती है।

शीतला के पूर्व-रूप में ज्वर आने पर तत्काल केले के

अर्क़ के साथ, अथवा चन्दन के रस के साथ, अथवा अड़ूसे के रस के साथ, अथवा मुलैठी के रस के साथ, अथवा चमेली के पत्तों के रस के साथ शहद मिला कर चटा दे, इससे शीतला के विकार नष्ट हो जाते हैं।

पटोलपत्र, गिलोय, नागरमोथा, अड़ूसा, धमासा, चिरायता, नीम की छाल, कुटकी और पित्तपापड़ा—इन चीज़ों का क्वाथ बना कर देने से कच्ची शीतला और मसूरिका शान्त हो जाती हैं। पकी हुई दशा में देने से वह साफ़ हो जाती हैं। इसके सिवाय यह क्वाथ ज्वर, विसर्प, व्रण आदि को भी नष्ट करता है। शीतला के ज्वर को दूर करने के लिए इससे उत्तम क्वाथ दूसरा नहीं है। इसका नाम पटोलादि क्वाथ है।

शीतला के रोग में जहाँ तक हो सके, सब उपचार शीतल करने चाहिएँ। छूत से बचाने के लिए घर के चारों ओर नीम की पत्तियाँ बाँध देवे और घर में जूठन आदि कभी नहीं ले जावे। शीतला की फुन्सियों में यदि दाह, जलन हो तो सूखे हुए साफ़ अरने (जङ्गली) उपलों की राख उन पर लगा दिया करे। इस राख से सब फुन्सियाँ सूख जाती हैं और पकतीं नहीं।

लाल चन्दन, अड़ूसा, नागरमोथा, गिलोय और दाख—इनका हिम बना कर, अर्थात् क्वाथ को रात्रि में बाहर रख कर, पिलाने से शीतला का ज्वर नष्ट हो जाता है।

कोद्रव शीतला की चिकित्सा—मोचरस और सफेद चन्दन; अथवा अडूसे का रस और मुलैठी; अथवा चमेली का रस और मुलैठी—इनमें से किसी योग को शीतला की आरम्भिक दशा में पिलावे तो उसे शीतला नहीं निकल सकती।

स्फोट-दाह—शीतला के फोड़ों में पक कर दाह होने लगे तो उसमें जङ्गली उपलों की राख, पित्तपापड़ा और रोहिष घास—इनका चूर्ण लगावे। इससे फोड़े सूख जाते हैं और अधिक पकने नहीं पाते।

चन्दनादि हिम—चन्दन, अडूसा, नागरमोथा, गिलोय और दाख—इन चीजों को दूध में पका कर ठण्डा करके सेवन कराने से शीतला-सम्बन्धी ज्वर आदि विकार नष्ट होते हैं।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि कोद्रव-शीतला में खदिराष्टक क्वाथ सर्वोत्तम है। इसके बनाने की विधि यह है—खैर की छाल, बहेड़ा, हरड़, आँवला, नीम की छाल, पटोलपत्र, गिलोय और अडूसा—इन औषधियों का क्वाथ बना ले। इसके पिलाने से शीतला, मसूरिका, शीतपित्त, विस्फोटक, विसर्प, खाज और कुष्ट तक शान्त होते हैं।

कण्ठ और मुखपाक—शीतला के कारण रोगी के गले और मुख के भीतर घाव हो गए हों, तो आँवला और मुलैठी एक-एक तोला कुचल कर सेर भर पानी में पका ले। जब

आध सेर जल रह जाय तब उतार-छान कर ठण्डा कर ले। उसमें दो तोले शहद मिला कर थोड़ा-थोड़ा करके तीन-चार बार पिलाने से और कुल्ले कराने से मुख तथा गले के घाव सूख कर अच्छे हो जाते हैं।

नेत्रपाक—यदि आँख के पलक और उसके आस-पास की फुन्सियाँ (दाने) पक गई हों तो आँवला, कमलफूल, खस, दारुहल्दी, बहेड़ा, मजीठ, मरोड़फली, मुलैठी, लोध और हरड़ का क्वाथ बना कर और शीतल करके छान ले। इस जल से दिन में चार-पाँच बार आँखों को धोने से सब दाने मिट जाते हैं और घाव भी शीघ्र ही भर जाते हैं। अथवा पञ्च-बल्कलों (वड़, पीपर, गूलर, पाकर और आम की छाल) का चूर्ण कर थोड़ा-थोड़ा करके बुरकते रहने से भी शान्ति रहती है।

शम्बूक स्वरस—सीप के भीतर रहने वाले कीड़े को शम्बूक कहते हैं। उसके मांस के स्वरस का दोनों नेत्रों में अञ्जन करने से नेत्रपाक का कुछ भी भय नहीं रहता। शीतला की अवस्था में इसे लगाने से बहुत लाभ होता है।

नेत्रों में फूली—शीतला के निकलने से यदि नेत्रों में फूली पड़ गई हो, तो अर्क-गुलाब में गधे का दाँत घिस कर लगावे। शीतला के शुरू से ही अर्क-गुलाब में गधे के दाँत को घिस कर एक बार प्रतिदिन आँखों पर लेप करने से कोई विकार नहीं होता।

वर्ण का उपचार—शीतला के उठने पर शरीर का वर्ण कभी-कभी उसके बिगड़ने से ख़राब हो जाता है। उसके लिए नीम के पत्ते, मोती, कायफल, कटूरी और बेत की छाल का क्वाथ बना कर दिन में दो-तीन बार धोवे। इससे वर्ण साफ़ हो जाता है।

क्रिमियों का उपचार—यदि शीतला के दाने अत्यन्त पकने के कारण बहने और सड़ने लगे हों और उनमें कीड़े पड़ गए हों तो राल, हींग, लहसुन—इनको बारीक कूट कर धूनी देवे। इससे सब कीड़े शीघ्र ही दूर हो जाते हैं।

उपद्रवों पर उपचार—शीतला में कभी-कभी निमोनिया खाँसी, अरुचि, पसुली का दर्द आदि उपद्रव हो जाते हैं। उनको शान्त करने के लिए उन्हीं की चिकित्सा करनी चाहिए। सर्दी और खाँसी के विशेष कठिन रूप से होने पर मुलैठी के क्वाथ के साथ मकरध्वज या लक्ष्मीविलास-रस का सेवन कराने से विशेष उपकार होता है। इसी तरह अन्यान्य दशाओं में भी समझ कर चिकित्सा करनी चाहिए। परन्तु बिना विचारे कोई औषधि इसमें नहीं देनी चाहिए। इसकी अपेक्षा प्रकृति देवी के ऊपर छोड़ देने से इसमें बड़ा लाभ होता है। इसी कारण पहले से यह प्रथा चली आई है कि माता की चिकित्सा नहीं करना चाहिए।

खसरे की विशेष चिकित्सा—बिजौरा नींबू की केशर को काँजी के साथ पीस कर सर्वाङ्ग में लेप करने से खसरे

का दाह शीघ्र शान्त हो जाता है और दाने शीघ्र ही पक जाते हैं। अथवा हरड़, बहेड़ा, आँवला, खैर की छाल, नीम की छाल, गिलोय, अडूसे की छाल, पटोलपत्र—इनका क्वाथ बना कर मिश्री मिला कर दोनों समय पिलाने से खुजली आदि उपद्रवों से युक्त भयङ्कर खसरा शान्त हो जाता है।

खसरा निकल कर अच्छा होने पर प्रायः रोगी को पतले दस्त आने लगते हैं और उनमें सफेद या लाल आँव अत्यन्त पीड़ा के साथ निकलता है। ऐसी दशा में निम्न-लिखित क्वाथ देने से शीघ्र ही आराम होता है :—

पोस्त का छिल्का एक तोला और सौंफ दो तोले लेकर दोनों को जौकूट कर ले। इसको अवस्थानुसार दो रत्ती से पाँच माशे पर्यन्त मात्रा में लेकर क्वाथ बना ले। इसमें मिश्री डाल कर दोनों समय पिलाने से आँव और पेचिश की बीमारी शीघ्र ही मिट जाती है। दस्त बन्द होने पर इस औषधि को पिलाने से क़ब्ज़ होने की आशङ्का रहती है।

पथ्यापथ्य—रोगी के वस्त्रों को प्रतिदिन बदल कर स्वच्छ वस्त्र पहिनाना और साफ स्थान में रखना परमावश्यक है। क्योंकि यह रोग छुआछूत तथा अपवित्रता से बिगड़ जाता है और घाव भयङ्कर रूप धारण कर लेते हैं तथा सड़ने लगते हैं। अन्त में उनमें कीड़े तक पड़ जाते है। रोगी का बिस्तर साफ और कोमल होना चाहिए। उस पर नीम के कोमल पत्ते बिछा कर रोगी को सुलाना चाहिए। सब

घावों के पकने पर वस्त्र से छनी हुई कण्डे की राख बिछौने में बिछा कर रोगी को सुलाना चाहिए और वही राख घावों के ऊपर भी बुरकना चाहिए। तुलसी के पत्तों को चबाना तथा ठण्डी चीज़ों का शरीर में लेप करना लाभदायक है। शीतला वाले रोगी को साधारण दशा में दो-चार मुनक्का देना अच्छा है। ज्वर शान्त होने पर साबूदाना, जल-बार्ली, मूँग की दाल का पानी आदि हल्का पथ्य देना चाहिए। साठी चावल, चना, मसूर, जौ आदि का यूष देना भी अच्छा है। फलों में सेब, अनार, केला, ककड़ी, अङ्गूर, दाख आदि देने चाहिएँ।

बफारा देना, तेल, मिर्च, खटाई, भारी अन्न आदि खाना, परिश्रम करना, धूप में बैठना, आग सेंकना, क्रोध करना, वेगों को रोकना, अधिक भोजन करके पचा न सकना आदि इस रोग में कुपथ्य हैं।

शीतला में चिकित्सा की उपेक्षा

आजकल इस रोग के विषय में ऐसी प्रथा प्रचलित है कि इसमें वैद्य को बुला कर चिकित्सा कराना तो दूर रहा, औषधि देने के नाम से ही लोग बुरा मानते हैं। इस रोग के उत्पन्न होने पर इसका कुल भार अनभिज्ञ स्त्रियों के ऊपर रहता है। वे पूरी लकीर की फ़क़ीर होती हैं। एक ही उपचार सबके लिए करती हैं। उनके लिए देश, काल, प्रकृति, बला-बल का समझ सकना असम्भव होता है। अपने मन से

वे चाहे जो कोई चीज़ दे दें; परन्तु किसी सद्वैद्य की सलाह से कोई औषधि देने में बड़ा दोष मानती हैं। उनका विचार है कि माता के निकलने पर किसी प्रकार की औषधि देने से वह कुपित हो जाती है और शरीर की बलि ले लेती है। इसलिए उसमें कोई उपचार नहीं करना चाहिए। इसका फल यह होता है कि हज़ारों बच्चे अकाल में ही इस रोग के कारण काल की गोद में समाते रहते हैं। कुछ भी हो, पुराने विचार के मनुष्य इसमें चिकित्सा नहीं कराना चाहते। चिकित्सा न कराने का मतलब यह नहीं है कि उसके कराने से माता रानी कुपित हो जाती हैं। और न पौराणिक चिकित्सा का ही यह मतलब है कि इसमें सिवाय दैवाश्रित चिकित्सा (बलि, मङ्गल, जप, होम, दान, नैवेद्य, देव, गो, ब्राह्मण आदि की पूजा आदि) के और कुछ नहीं करना चाहिए। किन्तु इसका मतलब प्राचीन काल में आचार्यों तथा मुनियों ने यह लगाया था कि मसूरिका-रोग प्रायः दुःसाध्य होता है, इसमें ज़रा सी ग़लती हो जाने से फिर रोगी के बचने की सम्भावना नहीं रहती। विशेष कर यह रक्त-पित्त-प्रधान रोग है, इसलिए इसमें शीत-क्रिया की बड़ी आवश्यकता रहती है। इसलिए उन्होंने इसमें शीत (ठण्ड) की अधिष्ठात्री देवी, शीतला का अर्चन-पूजन करना बताया था, और स्तोत्र-पाठ, नियम, व्रत, स्नान, शुद्धि आदि करने का उपदेश दिया था। इससे इस रोग का स्पर्शा-

क्रामक और संक्रामक होना सिद्ध होता है। इस तरह रहने से दूसरे लोगों में यह रोग नहीं फैल सकता है। परन्तु काल के प्रभाव से इसका ऐसा उलटा असर मनुष्यों पर हुआ कि वे रोग की असलियत को भूल गए हैं और शीतला के पूजन आदि को देख कर इस रोग का नाम ही उन्होंने शीतला या माता रख दिया है। अन्यथा इस रोग का नाम प्राचीन ग्रन्थों में मसूरिका ही लिखा हुआ पाया जाता है। यह बात भी ध्यान देने की है कि यदि इसमें औषधि देने से कोई ख़राबी होती या शीतला देवी.जी कुपित हो जातीं तो स्त्रियाँ इस रोग में जो केशर, मुनक्का, अनविधे मोती, लौंग, काली मिर्च आदि दिया करती हैं, वे क्या औषधियाँ नहीं हैं? इन सब बातों से ज्ञात होता है कि इसके विषय में लोग केवल अन्ध-परम्परा को मान रहे हैं। पर अब पुराना ज़माना नहीं रहा है, अब बात-बात में लोग कारण पूछने लगते हैं। इसलिए इसमें पूर्ण अनुभवी वैद्य को बुला कर चिकित्सा करानी चाहिए, जिससे हज़ारों की संख्या में होने वाली बालकों की अकारण प्राण-हानि रुक सके।

शीतला से बचने के उपाय

संक्रामक रोगों के फैलते ही प्रत्येक मनुष्य को आत्म-रक्षार्थ प्रयत्न करना आवश्यक है। क्योंकि संक्रामक रोग बहुत ही सूक्ष्म अदृष्ट सूत्र के द्वारा एक देह से दूसरी देह में जाते हैं। ऐसी दशा में विशेष सावधानी की आवश्यकता

है। संस्कृत में एक कहावत है कि "प्रक्षालनाद्धिपङ्कस्य दूरादस्पर्शनंवरम्" अर्थात् रोग होने पर उसको दूर करने की चेष्टा करने की अपेक्षा रोग न पैदा करने वाले कर्मों के विषय में प्रयत्न करना कहीं अच्छा है।

हमारे देश में अज्ञान और निरक्षर लोग अपने किसी स्वजन को रोग होने पर स्नेहवश धीरज-रहित होकर, बड़ी लापरवाई से रोगी की सेवा-शुश्रूषा करते हैं। ऐसा करने से उनको भी रोग होने की पूरी सम्भावना रहती है, पर इस बात को अनसमझ लोग बहुत कम समझते हैं। इसलिए हम गृहस्थों के हितार्थ कुछ ऐसे नियमों का निर्देश करते हैं जिनके प्रतिपालन करने से रोगी तथा स्वस्थ मनुष्यों की इस रोग से बहुत-कुछ रक्षा हो सकती है :—

१—इस देश में बहुत से अनसमझ और अशिक्षित लोग अनेक बार झाड़-फूँक करने वाले स्यानों के द्वारा चिकित्सा कराते हैं। इनसे रोग निवृत्त हो सकने का विश्वास करना नितान्त भूल है। इसलिए घर में किसी को शीतला-रोग होने पर किसी योग्य चिकित्सक को बुला कर चिकित्सा करानी चाहिए।

२—इस रोग के बालक को ऐसे स्थान में रखना चाहिए कि जहाँ प्रत्येक आदमी का आना-जाना न हो। रोगी के घर में अनावश्यक असबाब, वस्तु, वस्त्रादि नहीं रखने चाहिएँ। इससे उस घर में शुद्ध वायु के आवागमन में

बाधा पड़ती है। घर में शुद्ध वायु तथा सूर्य का प्रकाश होने के लिए पूरा प्रबन्ध करना चाहिए।

३—जो लोग रोगी की सेवा-शुश्रूषा में नियुक्त हों उनको अत्यन्त पवित्र रहना आवश्यक है। उनको कपड़ों के परिवर्त्तन तथा मर्करी लोशन से हाथ-पैर आदि धोने में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। इसके सिवाय सेवा करने वालों को टीका लगवा लेना अत्यन्त आवश्यक है। यदि उन्होंने पहले टीका लगवाया हो तो उनको दुबारा टीका लगवाने की विशेष आवश्यकता नहीं है।

४—अन्य देशों (विलायत आदि) में शीतला के रोगी को देखने जाने वाले उसके इष्ट-मित्र अपने को एक मोटे कपड़े से ढक कर जाया करते हैं और लौटने पर उसको बाहर ही उतार कर घर के भीतर जाते हैं। यदि सम्भव हो तो यहाँ भी ऐसा करना चाहिए।

५—मक्खी आदि के द्वारा शीतला का विष-बीज चारों तरफ़ फैल जाता है। इसलिए रोगी को शुद्ध, साफ़ मसहरी में रखना चाहिए। घर में अन्य लोगों के काम में आने वाली चीज़ों को रोगी के संस्पर्श से बिल्कुल बचा कर रखना चाहिए। रोगी का मकान या कोठरी यदि रास्ते के आस-पास हो तो उसे दूसरी जगह हटा देना चाहिए।

६—जिस तरफ़ शीतला-रोग फैला हुआ हो उस तरफ़ होकर काम-काज के लिए जाना या बालकों को भेजना कुछ

दिनों के लिए रोक देना चाहिए। सरकारी कार्यालयों में इस विषय का विशेष ध्यान रक्खा जाता है। ऐसे समय में प्रायः दफ्तरों और विद्यालयों में छुट्टी कर दी जाती है।

७—यदि किसी घर मे शीतला-रोग हुआ हो तो सम्पूर्ण वस्त्रादि विशोधक-जल (रसकर्पूर-जल) में भिगो और अग्नि में पका कर धोबी को देने चाहिएँ। यदि गाँव में संक्रामक रूप में शीतला-रोग फैला हो, तो उस समय धोबी के यहाँ वस्त्र धुलने के लिए नहीं देने चाहिएँ।

८—रोगी के मल-मूत्रादि में इस रोग का विष होता है। इसलिए मल-मूत्र करने के स्थान पर सौ भाग जल में एक भाग "करोसिव सबलीमेट लोशन" मिला कर उस स्थान पर हर समय छिड़कते रहना चाहिए। रोगी के पीब, खुरण्ट आदि को कपड़े से पोंछ कर विशोधक जल में या किसी वस्तु में भिगो कर जला देना चाहिए। कार्बोलिक-पोस्त तेल (Carbolised Poppy Oil) द्वारा रोगी के शरीर को साफ करना चाहिए।

९—शीतला के दिनों में रोगी के घर में राल या गन्धक की धूप देनी चाहिए।

१०—घर के चारों तरफ नाली और पाखाना आदि के साफ रहने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इसके लिए पूर्वोक्त "करोसिव सबलीमेट लोशन" अथवा कार्बोलिक सोल्यूशन का व्यवहार करना लाभदायक है।

१२—दूध व बाज़ार की मिठाई आदि चीज़ों के विषय में विशेष सावधान रहने की आवश्यकता है।

१३—छः सप्ताह से कम समय में रोगी सर्वथा निर्दोष नहीं हो सकता। इस समय के पहले रोगी को घर से बाहर नहीं निकलने देना चाहिए।

१४—यह रोग प्रायः फाल्गुन और चैत में होता है। इसीसे इसे बँगला में बसन्त-रोग कहते हैं। इस समय बालकों को क़ब्ज़ न होने पावे, इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए। इस वास्ते बालकों को हल्का विरेचन देकर या वस्ति (एनिमा) से उनका पेट साफ़ रखना परमावश्यक है। इन दिनों जल को पका कर पिलाना और वायु का शुद्ध रखना अत्यन्त लाभदायक है। खाने-पीने, ओढ़ने-बिछाने में स्वच्छता का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। घर में मक्खी आदि न रहें, इसलिए प्रतिदिन कार्बोलिक जल से छिड़काव करना बहुत अच्छा है। किसी बालक को टीका न लगाया गया हो तो उसको तुरन्त टीका लगवा देना चाहिए।

अब हम कुछ ऐसी औषधियाँ लिखते हैं, जिनको शीतला फैलने के समय यदि स्वस्थ मनुष्य सेवन करता रहे तो उसे रोग होने का डर नहीं रहता।

१—शीतला या ख़सरा-रोग के दिनों में जो मनुष्य प्रतिदिन नीम के बीज, बहेड़े के बीज और हल्दी—इनको शीतल जल में अच्छी तरह पीस-छान कर पीता है, उसके शरीर में

दुःसह पीड़ाकारक शीतला का विकार कभी उत्पन्न नहीं हो सकता।

२—बालकों को दूसरे या तीसरे दिन अनविधे दो-तीन दाने मोती के गुलाबजल में पीस कर पिलाते रहने से शीतला निकलने का डर बहुत कम रहता है।

३—नीम, पाकर, बेत के पत्ते, तितलौकी, अशोक की छाल—सबको कुचल कर शाम को जल में भिगो दे। सुबह छान कर उस जल से बालक को स्नान करावे। प्रतिदिन ऐसा करने से शीतला निकलने से बचाव रहता है।

४—रुद्राक्ष को पानी के साथ घिस कर थोड़े जल में घोल, प्रतिदिन बालक को पिलाने से शीतला निकलने की बहुत कम सम्भावना रहती है।

५—जो मनुष्य शीतला के फैलने पर इमली के बीज के चूर्ण, और हल्दी के चूर्ण को शीतल जल में मिला कर प्रतिदिन पीता है, उसको दुःसह पीड़ाकारक शीतला का विकार कभी नही हो सकता।

बालक का अधिक रोना

बालकों का अधिक रोना बड़ा पेचीदा रोग है। किस कारण से बालक रोता है, इसका निर्णय करना अति कठिन है। इसलिए उसका निवारण करना भी कठिन होता है। हम यहाँ पर सिर्फ अधिक रोने के रोग और उसकी चिकित्सा का वर्णन करेंगे। अन्य किसी रोग या बीमारी के

कारण यदि बालक रोता हो तो उसके निवारण के लिए उस रोग की दवा करना चाहिए।

१—आँवला, हरड़, बहेड़ा और छोटी पीपल का बारीक चूर्ण कर शहद के साथ दोनों समय चटाने से बालकों का अधिक रोना बन्द हो जाता है।

२—उड़द, छछून्दर की बीट, इन्द्रजौ, बेल और सिरस के सूखे पत्ते और हल्दी—ये सब समान भाग में कूट कर और कोयलों की आग में डाल कर बालकों को धूनी देने से उनका अधिक रोना बन्द हो जाता है।

बालक की दुर्बलता

बहुत बार ऐसा देखा गया है कि बालक अच्छी तरह खाता है और उसे भूख भी अच्छी लगती है, परन्तु शरीर देखने में अत्यन्त दुर्बल रहता है। ऐसी दशा में उसको निम्न-लिखित पौष्टिक योगों को देकर हृष्ट-पुष्ट करना चाहिए :—

१—बिदारीकन्द, गेहूँ और जौ—इनके चूर्ण को घी में भून कर उसमें शहत और घी मिला कर चटावे। ऊपर से मिश्री मिला हुआ अच्छा गाय का दूध पिलावे। इससे बालक की दुर्बलता दूर हो जाती है।

२—एक चावल के बराबर सोने की भस्म को कूट और बालबच के चूर्ण के साथ घी और शहद में अच्छी तरह मिलावे। इसे कुछ दिनों तक निरन्तर सेवन कराने से बालक की दुर्बलता दूर हो जाती है।

३—स्वर्ण-भस्म, शङ्खाहुली और गूलर के रस में घी और शहद मिला कर निरन्तर सेवन कराने से बालक की दुर्बलता दूर होती है।

इसके सिवाय कुमारकल्याण-घृत तथा अष्टमङ्गल आदि घृत बालकों की दुर्बलता को दूर करते हैं। इसी तरह सूखा-रोग में लिखा हुआ अश्वगन्धा-घृत भी बालकों के लिए परम पुष्टिकर है। दो माशे च्यवनप्राश में दो चावल भर सहस्रपुटी अभ्रक-भस्म मिला कर खिलावे, ऊपर से मिश्री मिला दूध पिलावे। इससे बालक खूब हृष्ट-पुष्ट होते हैं।

दैवी दुर्घटनाएँ

खान-पान के दोष के सिवाय संसार में रहते हुए मनुष्य के लिए दैवी दुर्घटनाओं के फल से कष्ट-ग्रसित हो जाना काई कठिन बात नहीं है। ज़रा सी असावधानी से कभी-कभी बड़ी आपत्ति उपस्थित हो जाती है, जिसकी तत्काल चिकित्सा न करने से प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। आग से जलना, पानी में डूबना, गिर कर चोट लगना, सर्प आदि का दंशन, अकस्मात् विष-भक्षण आदि दैवी-दुर्घनाओं में गिने जाते हैं। इन सभी बातों से बालक की रक्षा करने पर वह सुखी रह सकता है। प्रायः देखा गया है कि जब बालक थोड़ा चलने-फिरने लगता है, तब उसकी निगरानी करना बड़ा कठिन हो जाता है। ज़रा आँख बची कि वह कुछ न कुछ कर लेता है। इस तरह बालकों को आग से

जलना, पानी में डूबना आदि सभी दैवी विपत्तियाँ सता सकती हैं। अब आगे इनका अलग-अलग वर्णन किया जायगा।

आग से जलना

बालक कभी-कभी खेलते हुए आग में पड़ जाते हैं, या उसमें हाथ डाल देते हैं, या आग के पास बैठने से उनके कपड़ों में आग लग जाती है। यदि अकस्मात् बालक के कपड़ों में आग लग जाय तो उसे पहले बुझाने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए, बल्कि कपड़ों को निकाल कर फेंकना या चीर कर निकाल देना चाहिए। यदि कपड़ों के खुलने में कठिनाई हो तो किसी मोटे कपड़े या कम्बल से शरीर को चारों तरफ़ से ढक कर दबा देना चाहिए। इस प्रकार कपड़ों में लगी हुई अग्नि शीघ्र ही शान्त हो जायगी। अग्नि बुझने के बाद दाह-शान्ति के निमित्त निम्न-लिखित कोई प्रयोग करना चाहिए। इसी तरह बालक कभी जलती आग या दीपक आदि में हाथ डाल देता है, तो उसका शरीर दग्ध हो जाता है। बहुत से लोग जले हुए स्थान में कीचड़ आदि का लेप करते हैं, परन्तु यह अत्यन्त हानिकर है।

१—जले हुए स्थान में आलू को चन्दन की तरह घिस कर लेप करने से दाह शीघ्र ही मिट जाता है।

२—असली शहद या शराब के लगाने से, अथवा ककरोंदे के पत्तों के रस के लगाने से दाह शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

३—नारियल का तेल और चूने का साफ नितारा हुआ पानी दोनों को खूब फेंट कर लगाने से तत्काल जलन शान्त हो जाती है।

४—इमली की छाल को जला कर और गाय के घी में मिला कर दिन में तीन-चार बार लगाने से जलन शान्त होकर व्रण भी अच्छा हो जाता है।

५—साधारण जले हुए अङ्ग को उसी समय आग से ही सेंक देने से अथवा उसके ऊपर बूरा मल देने से वहाँ पर फफोला नहीं पड़ता है।

६—यदि जलने से घाव पड़ गया हो तो उस स्थान पर बार-बार कड़वा तेल चुपड़ कर पत्थर के कोयले का बारीक चूर्ण बुरकना चाहिए।

७—यव (जौ) को जला कर बारीक पीस ले। उसमें तिल का तेल अन्दाज़ का मिला कर दो-तीन दिन तक बराबर घोट कर मरहम बना ले। इस मरहम के लगाने से भयङ्कर रूप से जलने का दाह भी मिट जाता है और पाँच-सात दिन में घाव ठीक हो जाता है।

८—गाय के घी में नीम के पत्तों को भून कर घी को छान ले। इस घी को जले हुए स्थान पर लगावे। फिर थोड़ी साफ और नई रूई नीम के जल में पका और निचोड़ कर जले हुए स्थान के ऊपर रख एक साफ कपड़े से बाँध देवे। जला हुआ स्थान कभी खुला नहीं रखना चाहिए।

चोट लगना

कभी-कभी बालकों को अकस्मात् चोट लगने से या किसी तेज़ चाक़ू आदि से कट जाने से ख़ून निकलने लगता है। उसको एकदम बन्द करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से कभी-कभी बहुत ख़राबी पैदा हो जाती है। साधारणतः कटे हुए स्थान का ख़ून दो-चार मिनट में अपने आप ही बन्द हो जाता है। ख़ून बन्द करने की आवश्यकता होने पर निम्न-लिखित किसी उपाय से बन्द करना चाहिए। ख़ून बन्द होने के बाद एक साफ़ कपड़े या रूई को थोड़ी देर गरम जल में पका कर कटे हुए स्थान पर बाँधना चाहिए :—

१—अत्यन्त ठण्डा जल, या बर्फ़, या अत्यन्त गरम जल जितना सहा जाय, कटे हुए स्थान पर प्रयोग करने से शीघ्र ही रक्त बहना बन्द हो जाता है।

२—एक साफ कपड़े से दो-तीन मिनट तक क्षत-स्थान को दबाए रखने से ख़ून का निकलना बन्द हो जाता है।

३—यदि हो सके तो चोट लगे हुए अङ्ग को कुछ देर तक ऊपर उठाए रखना चाहिए। इससे रक्त का निकलना बन्द हो जाता है।

४—रक्त के बन्द होने पर यदि किसी कारण से क्षत स्थान में शोथ होकर पाक हो जावे और पीब पड़ जाय तो उसका पीब निकाल कर नीम के जल से अथवा बोरिक

ेड के जल से धोकर तिलों का कल्क बाँधना चाहिए। व के साफ़ और लाल होने पर उसी कल्क में थोड़ा और शहद मिला कर व्रण पर बाँध देना चाहिए। इससे ाघ्र ही व्रण भर जाता है। कटे हुए स्थान के पक जाने पर ाकी चिकित्सा व्रण के समान ही की जाती है, जो अन्यत्र ाखी है।

जल में डूबना

यदि कोई बालक जल में डूब गया हो तो जहाँ तक ा सके शीघ्र निकालने की चेष्टा करनी चाहिए, तभी उसके चने की आशा हो सकती है। पानी से निकालने के बाद ासके पैरों को ऊपर और शिर को नीचे करके खूब झकोरे देने ााहिएँ। एक मनुष्य उसके पेट को तथा एक मनुष्य उसकी ाती को दोनों तरफ़ से पकड़ कर दबावे, जिससे उसके पेट व ाती का पानी बाहर निकले और वायु का सञ्चार होने ागे। फिर उसको किसी सूखे हुए कम्बल से ढक कर सुला े और सम्पूर्ण शरीर को अच्छी तरह पोंछ कर कृत्रिम ासोत्पादन क्रिया (जिसका हमारी "उपयोगी चिकित्सा"* ें भली-भाँति वर्णन है) द्वारा उसका पुनरुज्जीवन करना चाहिए। यदि जल में डूबे हुए बालक को श्वासोत्पादन के बाद भयानक निमोनिया हो गया हो, जैसा अनेक बार देखा

* यह पुस्तक 'चाँद' कार्यालय, द्वारा प्रकाशित हुई है और १॥) में मिलती है।　　　　—लेखक

जाता है, तो किसी योग्य चिकित्सक द्वारा चिकित्सा कराना चाहिए।

मकड़ी फर जाना

कभी-कभी मकड़ी कपड़ों तथा बिछौने में पड़ कर बालक के शरीर से रगड़ जाती है या काट खाती है। उसके रगड़ने से उस स्थान पर असंख्य चौलाई के दानों के समान छोटी-छोटी फुन्सियाँ उत्पन्न होकर जलन और खाज होने लगती है। वह स्थान चारों तरफ़ से लाल हो जाता है तथा उसमें से चेपदार पानी सा रिसने लगता है। वह चेप शरीर में जहाँ कहीं लगता है, वहीं फुन्सियाँ होकर शोथ हो जाता है, जिससे बालक को ज्वर हो जाता है और वह बेचैन रहता है। इसमें निम्न-लिखित उपचार करने चाहिएँ :—

१—मकड़ी फरे हुए स्थान में तत्काल काग़ज़ी नींबू के रस में चूना पीस कर लगाने से आराम हो जाता है।

२—अमचूर (आम की खटाई) को जल में खूब बारीक पीस कर लेप कर देने से मकड़ी का दाह और फुन्सियाँ शान्त हो जाती हैं।

३—हल्दी, दारुहल्दी, पतङ्ग, मजीठ, तगर, नागकेशर—इन औषधियों को जल में बारीक पीस कर घी, शहद मिला कर लेप करने से मकड़ी का विष शान्त हो जाता है।

४—गोबर का रस, चीनी, घी और शहद—सबको बरा-

बर भाग में मिला कर लेप करने से सब प्रकार की मकड़ी का विष तथा कीड़ों का विष शान्त होता है।

५—अपामार्ग, मैनशिल, दारुहल्दी, हरताल, गन्धतृण, गेरू, तगर, इलायची, कूट, काली मिर्च, मुलैठी—सब को समान भाग में पीस कर उसमें घी और शहद मिला कर लेप करने से सब प्रकार की मकड़ी का विष नष्ट हो जाता है।

मक्खी का काटना

बहुत बार बालकों की आँख आदि स्थानों में एक प्रकार की विषैली मक्खी काट खाती है। मक्खी के काटे हुए स्थान पर शोथयुक्त फुन्सी पैदा होती है, जिसमें से पानी सा रिसता है और जलन होती है। विशेष विषैली मक्खी के काटने पर कभी-कभी बालक को ज्वर के साथ बेहोशी भी हो जाती है। इसमें निम्न-लिखित उपचार करने चाहिएँ :—

१—मक्खी के काटे हुए शोथयुक्त स्थान पर खैर की छाल, शाल वृक्ष की छाल, गोजिह्वा (गावज़बान), हंसपदी, हल्दी, दारुहल्दी, गेरू—इन सबको समान भाग में लेकर जल के साथ पीस कर लेप करने से मक्खी का विष शान्त होता है।

२—लोहे को घी के साथ अच्छी तरह घिस कर लेप करने से मक्खी का विष शान्त हो जाता है।

३—मक्खी के काटने पर उस स्थान पर यदि मक्खी की ही विष्टा जल के साथ पीस कर लेप कर दी जाय तो उसका

विष उतर जाता है। यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि जो जीव काटे यदि उसकी विष्टा उस स्थान पर लगा दी जाय तो उसका विष उतर जाता है। उदाहरण के लिए बन्दर के काटने पर उसकी विष्टा (यदि ताज़ा मिल सके तो बहुत अच्छा है) घाव में भर कर उसे बाँध दिया जाय तो बहुत जल्दी घाव भर जाता है।

ततैया या बर्र का काटना

बरसात के दिनों में बालकों को प्रायः ततैया काट लेता है। इससे उस स्थान पर एक ददोरा पड़ जाता है और उसमें दर्द के साथ जलन सी मालूम पड़ती है। ददोरे के मुख में कुछ काला सा चिन्ह दिखाई देता है। इसमें निम्न-लिखित उपचार करने चाहिएँ :—

१—ततैया के काटते ही उसका डङ्क निकाल कर उस स्थान पर अपने मुख के थूक को ज़मीन या पत्थर पर रगड़ कर लेप कर दे। इससे पीड़ा तुरन्त मिट जाती है और शोथ भी नहीं होता।

२—चूना और नौसादर दोनों को समान भाग मिला कर उस स्थान पर मल देने से पीड़ा और जलन शान्त हो जाती है।

३—चार-पाँच गन्धक वाली दियासलाइयों को जल में भिगो कर काटे हुए स्थान पर रगड़ने से ततैया का विष शान्त हो जाता है।

४—काटे हुए स्थान में सेंधानमक और मिट्टी का तेल मिला कर रगड़ने से ततैया का विष तत्काल शान्त होता है।

५—गेंदा के फूल की पत्तियों को काटे हुए स्थान पर अच्छी तरह रगड़ने से ततैया का विष शान्त हो जाता है।

बिच्छू का काटना

बिच्छू के काटने पर उस स्थान में एकदम आग सी लग जाती है और विष ऊपर को बड़े ज़ोर की लहरें मारता हुआ चढ़ने लगता है। इसमे रोगी के शरीर में पसीना आ जाता है और पीड़ा के कारण किसी तरह भी चैन नहीं मिलता। इसमें निम्न-लिखित उपचार करने चाहिए :—

१—अपामार्ग की हरी पत्तियों को हाथ से मसल कर बिच्छू के काटे हुए स्थान पर अच्छी तरह लगा कर नीचे की तरफ़ सूतना चाहिए। साथ ही ओङ्गे की जड़ को घिस कर काटे हुए स्थान पर लेप कर देना चाहिए।

२—बिच्छू के काटते ही सेंधानमक और मिट्टी के तेल का लेप करने से तुरन्त आराम होता है।

३—एक माशा चूना और एक माशा नौसादर को पीस कर रोगी को सुँघाने तथा काटे हुए स्थान में लगाने से तुरन्त आराम हो जाता है।

४—यदि बिच्छू के काटे हुए स्थान में विष से दग्ध (जले हुए) रक्त को किसी तेज़ चाक़ू या उस्तरे से चीर कर निकाल दिया जाय तो बहुत शीघ्र पीड़ा शान्त हो जाती है।

५—जमालगोटे की मिङ्गी को जल में घिस कर काटे हुए स्थान पर लगाने से विष शान्त हो जाता है।

कुत्ते का काटना

कभी-कभी बालक खेल में कुत्ते के कान, नाक, पूँछ को ज़ोर से खींच लेता है और वह अपने बचाव के लिए उसको काट खाता । इससे वह स्थान शोथयुक्त होकर दर्द करने लगता है। साधारण कुत्ते के काटने पर निम्न-लिखित उपचार करने चाहिएँ :—

१—कुत्ते के काटते ही घाव में लाल मिर्चों को पीस कर भर देना चाहिए। इससे घाव सूजने नहीं पाता और पकता भी नहीं।

२—कुत्ते के काटने पर तत्काल उसी कुत्ते की अथवा अन्य कुत्ते की विष्टा पीस कर लेप कर देनी चाहिए।

३—चिरचिटे की जड़ को पीस कर उसमें शहद मिला कर लेप करने से कुत्ते के काटने में विशेष लाभ होता है।

४—घीग्वार के खूब मोटे-मोटे पत्तों को लेकर एक तरफ़ से छील दे। फिर उसमें सेंधानमक पीस कर बुरक दे और उसे कटी हुई तरफ़ से काटे हुए स्थान पर बाँध दे। इससे दो-तीन दिन में आराम हो जाता है।

अफ़ीम का विष

यदि बालक किसी प्रकार अफ़ीम खा जाय तो तुरन्त ही वमन करा देना चाहिए और हींग को जल में घोल कर

पिला देना चाहिए। वमन कराने के लिए रीठे का जल सर्वोत्तम है। इससे विष भी शीघ्र ही शान्त हो जाता है। फिटकरी के चूर्ण के साथ बिनोले की मिङ्गी को मिला कर खिलाने से अफीम का विष उतर जाता है। अथवा चौकिया सुहागे को घी मे पीस कर पिलाने से अथवा प्याज के रस को खूब सुँघाने से अफीम का विष शान्त हो जाता है। अफ़ीम खाने पर देर में ज्ञात होने से पहले रोगी को विरेचन (जुल्लाब) देना चाहिए और फिर पूर्वोक्त योगों को काम में लाना चाहिए।

सङ्खिया का विष

सङ्खिया के खाने पर उसके विष को शान्त करने के लिए शीतोपचार करने की परम आवश्यकता है। इसके लिए दूध में घी मिश्री मिला कर खूब पिलाना चाहिए। यदि इसके पीने से वमन हो जाय तो कुछ हानि नहीं है। इसके सिवाय दो तोले इमली को जल में भिगो कर और छान कर तीन-चार बार पिलावे। तुरन्त के खाए हुए विष में उलटी करा कर रोगी को नारङ्गी या सन्तरे का रस निकाल कर पिलाना चाहिए, इससे बहुत शीघ्र आराम होता है। अथवा केले के रस में घी डाल कर पिलावे। इससे उलटी होकर सङ्खिए का विष एकदम दूर हो जाता है। यह दवा कई बार देनी चाहिए। सङ्खिया खाने पर रोगी के पेट में ठण्डा दूध या जल नहीं ठहरता।

धतूरे का विष

कभी-कभी बड़े बालक धतूरे के फलों को या घर में रक्खे हुए धतूरे के बीजों को खा जाते हैं, जिससे अत्यन्त खुश्की, गर्मी, बेचैनी और जलन उत्पन्न हो जाती है; शरीर काँपने लगता है और बेहोशी के साथ शरीर में आक्षेप आने लगते हैं। इसमें निम्न-लिखित उपचार करने चाहिएँ:—

१—धतूरे के विष के लिए सर्वोत्तम औषधि पलास (ढाक) माना गया है। धतूरे के फल के विष को उतारने के लिए ढाक के फूल, धतूरे के पत्तों का विष उतारने के लिए ढाक के पत्ते, धतूरे के फूल-विष में ढाक के फूल, छाल-विष में छाल, जड़ के विष में जड़, घोट कर देने से अत्यन्त लाभ होता है।

२—कपास के फल, फूल, पत्ते, लकड़ी सबको बारीक पानी में घोट कर पिलाने से धतूरे का विष तत्काल उतर जाता है।

३—नीम की निबोली को अथवा उसकी मिङ्गी को जल में घोट कर रोगी को पिलाने से धतूरे का विष शान्त होता है।

४—बैंगन के फल, पत्ते अथवा जड़ को जल में पीस कर पिलाने से धतूरे का विष शान्त हो जाता है। अथवा चौलाई की जड़ या गिलोय को पानी में घोट कर पिलाने से धतूरे का विष शान्त होता है।

ग्रह-बाधा

आयुर्वेद में बालकों को पीड़ा करने वाले ग्रहों की उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है कि शिवजी महाराज ने अपने पुत्र स्वामि कार्तिकेय के उत्पन्न होने पर उनकी देख-रेख और रक्षा करने के निमित्त बारह ग्रहों की रचना की। ये ग्रह स्वामि कार्तिकेय की रक्षा करते हुए शिवजी के यहाँ रह कर अपना जीवन निर्वाह करते थे। उनमें से पाँच ग्रह तो पुरुष-शरीर में नौकरों का काम करते थे और सात स्त्री-शरीरधारी कार्तिकेय की धाय आदि का काम देते थे। इस तरह कार्तिकेय के बड़े होने तक ये बारह ग्रह शिवजी की आज्ञानुसार उनकी रक्षा करते रहे। उनके बड़े हो जाने पर उन्हें उनकी जीविका का मार्ग बता कर छोड़ दिया गया। अब वे ही ग्रह शिवजी के बताए हुए मार्ग के अनुसार सांसारिक बच्चों को पीड़ा करके अपना निर्वाह करते हैं।*

---

*ऐसी कथाओं और ग्रह सम्बन्धी बातों पर विश्वास करने का एकमात्र कारण लोगों का अन्ध-विश्वास और अज्ञान है। हम नहीं चाहते कि इस प्रकार के भ्रम या ढोंगों को और अधिक बढाया जाय। इसलिए हमने इस 'ग्रह-बाधा' के प्रकरण में से मन्त्र-तन्त्र और टोना-टोटका सम्बन्धी बातों को बिल्कुल निकाल दिया है, और केवल उन्हीं बातों को रखा है जिनका सम्बन्ध किसी दृष्टि से शारीरिक रोग और दैहिक उपद्रवों से हो सकता है।

—प्रकाशक

ग्रहों के नाम पूर्वोक्त बारह ग्रहों में से स्कन्द, विशाख, मेषाख्य, श्वग्रह और पितृग्रह—ये पाँच पुरुष-शरीरधारी ग्रह हैं। और शकुनि, पूतना, शीतपूतना, दृष्टिपूतना मुख-मण्डलिका, रेवती और शुष्क रेवती ये सात ग्रह स्त्री-शरीर वाले माने गए हैं।

जब इनमें से कोई ग्रह बालक को ग्रहण करने वाला होता है तो अन्य रोगों की तरह पूर्व-रूप में कुछ लक्षण दिखाई देते हैं। जैसे बालक निरन्तर रोता रहता है और उसको ज्वर बना रहता है। उसी ज्वर या रोदन की दशा में धीरे-धीरे या एक साथ परिवर्त्तन होकर ग्रह-बाधा का भयङ्कर रूप दिखाई देने लगता है। इस रोग को बोलचाल की भाषा में जमुआ रोग कहते हैं।

ग्रह-बाधा के लक्षण

साधारणतः ग्रह-बाधा की परीक्षा यह है कि बालक अनायास या अकस्मात् रोता और चिल्लाता हुआ चीख मारने लगता है। आकाश की ओर टकटकी लगा कर देर तक देखता रहता है। उसकी भौंहें चढ़ जाती हैं, बार-बार जँभाई आने लगती है, वह अपने होठों को दाँतों से चबाता है, और माता को नख तथा दाँतों से बेहोशी की दशा में खसोटता रहता है। इस अवस्था में शरीर में कमजोरी तथा अपवित्रता ज्ञात होती है, गला घरघराने लगता है, रात्रि में नींद नहीं आती, शरीर काँपने लगता है और शरीर पर

कभी-कभी काले, पीले, लाल, धुमेले या ताम्र-वर्ण के धब्बे पड़ जाते हैं। बालक स्तनों को पीना भी छोड़ देता है। इन लक्षणों के देखने से साधारणतः ग्रह-बाधा का ज्ञान हो सकता है। भिन्न-भिन्न ग्रहों की बाधा के पृथक्-पृथक् लक्षण नीचे लिखे जाते हैं:—

स्कन्द ग्रह-बाधा के लक्षण—स्कन्द नामक ग्रह से बालक के पीड़ित होने पर वह शिर को बार-बार इधर-उधर पटकता और हिलाता है; एक आँख से जल पड़ता है; शरीर का आधा हिस्सा मारा जाता है; शरीर जकड़ा हुआ तथा पसीने से तर रहता है; गर्दन नीचे को भीतर की तरफ झुक जाती है; दूध पीना छोड़ देता है; दाँतों को चबाता है; बार-बार चौंकने लगता है; विचित्र शब्द के साथ रोदन करने लगता है; मुँह से लार गिरने लगती है; मुँह टेढ़ा मालूम पड़ता है; दृष्टि ऊपर को खिंची हुई मालूम पड़ती है; शरीर में से चर्बी और रक्त की सी गन्ध आने लगती है; मन में उदासीनता रहती है; मुट्ठियाँ बँधी रहती हैं; दस्त कड़ा आता है; एक तरफ का गाल, आँख तथा भौं फड़कते हैं तथा दोनों आँखें लाल दिखाई देती हैं। इन लक्षणों के होने से बालक बहुत ही बेचैन हो जाता है। कभी-कभी चिकित्सा के ठीक न होने से उसकी मृत्यु भी हो जाती है।

स्कन्दापस्मार या विशाख ग्रह-बाधा के लक्षण—विशाख ग्रह के द्वारा बालक के पीड़ित होने पर वह बेहोश रहता है;

हाथों से अपने बालों को बार-बार नोंचता है; ग्रीवा सीधी नहीं रहती; शरीर में खिंचाव के साथ जँभाई आती है; दस्त तथा मूत्र भी निकलने लगता है; मुख से झाग निकलते हैं; शिर, आँख, हाथ, पैर हिलते रहते हैं; स्तन-पान कराते समय माता के स्तनों को तथा अपनी जीभ को दबा देता है; कभी-कभी भयानक डरावनी सूरत कर लेता है; ज्वर हर समय बना रहता है; नींद बहुत ही कम आती है; और उसके शरीर में से पीब और रक्त की सी गन्ध आती है। इसको स्कन्दापस्मार भी कहते हैं।

नैगमेय अथवा मेषाख्य ग्रह-बाधा के लक्षण—मेषाख्य ग्रह से पीड़ित होने पर बालक के मुख से झाग निकलते हैं; पेट फूल जाता है; हाथ, पैर और मुख में कभी-कभी फड़कन होती है; मुट्ठियाँ बँधी रहती हैं; प्यास बहुत लगती है; दस्त जारी हो जाते हैं; स्वर मन्द पड़ जाता है, शरीर का रङ्ग भी बदल जाता है; रोगी बड़े ज़ोर की चीख़ मारता है; बार-बार उलटी के साथ खाँसी और हिचकी आने लगती है; नींद बहुत ही कम आती है; रोगी होठों को चबाता तथा सिकोड़ता है; शरीर में जकड़ाहट के साथ वस्ति (मसाना) में से दुर्गन्ध आने लगती है; ऊपर को देख कर हँसता है; शरीर के मध्य-भाग में खिंचावट के साथ ज्वर हो जाता है; और मूर्च्छा की अधिकता के साथ एक आँख में शोथ भी हो जाता है। इसको नैगमेय ग्रह भी कहते हैं।

श्वग्रह-बाधा के लक्षण—श्वग्रह से पीड़ित होने पर बालक अधिक काँपता है; उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं; शरीर में पसीने की अधिकता के साथ आँखें मिंची हुई रहती हैं; शरीर बाहर की तरफ मुड़ जाता है; दाँतो के बन्द होने के कारण जीभ कट जाती है; गले में कबूतर के सदृश शब्द होता है; भागने की चेष्टा करता है, चीख मारता है; कुत्ते की तरह भूकता है; शरीर से विष्टा की सी गन्ध आती है।

पितृ ग्रह-बाधा के लक्षण—पितृ ग्रह से पीड़ित होने पर बालक के शरीर में हर समय रोंगटे खड़े रहते हैं; बार-बार चौंक पड़ता है; अकस्मात् रोने लगता है; ज्वर, खाँसी, दस्त, उलटी, जँभाई तथा प्यास भी रहती है; शरीर में से मुर्दे की सी गन्ध आने लगती है; अपने हाथ-पैरो को इधर-उधर पटकने लगता है; शरीर में जकड़ाहट के साथ विवर्णता (रङ्ग का बदलना) और शोथ होने लगता है; मुट्ठियाँ बँधी हुई रहती हैं तथा आँखों से पानी गिरने लगता है।

शकुनि ग्रह-बाधा के लक्षण—शकुनि ग्रह से पीड़ित होने पर बालक का शरीर ढीला रहता है; दस्त लग जाते हैं; जीभ, तालु, गले में घाव हो जाते हैं; रात्रि के समय सन्धि-स्थानों में दाह और पीड़ा के साथ पाकयुक्त फफोले या फोड़े उत्पन्न होते हैं जो दिन में प्रायः शान्त रहते हैं। गुदा और मुख पक जाता है तथा ज्वर की दशा में बालक हर समय डरता रहता है।

पूतना ग्रह-बाधा के लक्षण—पूतना ग्रह से पीड़ित होने पर बालक का शरीर ढीला रहता है; रोंगटे उठे हुए रहते हैं, देह में कौए के सदृश दुर्गन्ध आती है; उल्टी, तन्द्रा, कम्प, रात्रि जागरण, हिचकी, पेट में अफरा, पतले दस्त आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं; प्यास ज्यादा लगती है और मूत्राघात (मूत्र बन्द होना) हो जाता है।

शीतपूतना ग्रह-बाधा के लक्षण—शीतपूतना ग्रह से पीड़ित होने पर बालक के शरीर में से कच्ची मछलियों की सी गन्ध आने लगती है; उसका एक तरफ़ का पसवाड़ा गरम और दूसरी तरफ़ का ठण्डा रहता है; दृष्टि टेढ़ी हो जाती है; बार-बार रोता और काँपता है; और तृष्णा के साथ आँतों में गुड़-गुड़ाहट और दस्त होने लगते हैं।

अन्धपूतना ग्रह-बाधा के लक्षण—अन्धपूतना ग्रह से पीड़ित होने पर बालक ज्वर, छर्दि और खाँसी से पीड़ित रहता है; पाचकाग्नि मन्द पड़ जाती है; पतला, दुर्गन्धित, अस्वाभाविक रङ्ग का दस्त होता है; बालक का प्रत्येक अङ्ग सूखने लगता है; दृष्टि कमज़ोर हो जाती है; आँख में पीड़ा; खाज के साथ रोहे पैदा हो जाते हैं; दूध पीना छोड़ देता है; बीच-बीच में उसको हिचकी आने लगती है; चित्त उदासीन रहता है; शरीर के रङ्ग में परिवर्त्तन हो जाता है; स्वर क्षीण हो जाता है; शरीर हर समय काँपता रहता है और उसमें मछली की सी गन्ध अथवा खट्टी दुर्गन्ध आती

है। इसको दृष्टिपूतना- रोग भी कहते हैं, क्योंकि इसके होने पर प्रायः दृष्टि की शक्ति नष्ट हो जाती है।

मुखमण्डलिका ग्रह-बाधा के लक्षण—इस ग्रह से पीड़ित होने पर बालक के हाथ-पैरों तथा मुख में अच्छी चमक और कान्ति पैदा हो जाती है, किन्तु पेट काले रङ्ग वाली शिराओं से व्याप्त हो जाता है; इसके साथ उसे थोड़ा-थोड़ा ज्वर भी हो जाता है जिससे शरीर में ढीलापन रहता है; कोई काम करने को जी नहीं चाहता। तथा शरीर में से गोमूत्र की सी गन्ध आने लगती है।

रेवती ग्रह-बाधा के लक्षण—रेवती ग्रह से पीड़ित होने पर बालक के शरीर का रङ्ग काला, नीला हो जाता है; वह अपने कान, नासिका और आँखों को बार-बार मलता है; खाँसी, हिचकी, आँखों में फड़कन, मुख में टेढापन् और लालिमा आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं; दिन प्रति दिन शरीर सूखने लगता है; ज्वर बना रहता है; शरीर से बकरे की सी गन्ध आती है तथा पतले हरे दस्त होते हैं।

शुष्क रेवती ग्रह-बाधा के लक्षण—शुष्क रेवती ग्रह से पीड़ित होने पर धीरे-धीरे बालक का सम्पूर्ण शरीर क्षीण होकर सूखने लगता है; अस्थि-पिञ्जर मात्र अवशेष दिखाई देता है; थोड़े बहुत अंश मे ज्वर सदा रहता है तथा किसी प्रकार की पौष्टिक औषधि के सेवन करने से शरीर पुष्ट नहीं होता। इसको सूखा-रोग भी कहते हैं।

ग्रह-बाधा की चिकित्सा

यदि ग्रह-बाधा द्वारा पीड़ित होने पर बालक की देह में किसी विशेष ग्रह के लक्षण प्रकट न होकर सामान्य लक्षण ही दिखलाई दें, तो उसकी चिकित्सा नीचे लिखी विधि से करनी चाहिए :—

१—सामान्य ग्रह-बाधा वाले बालक को माषपर्णी, गोरखमुण्डी और नेत्रबाला—इन औषधियों से स्नान करावे। अथवा बालक के शरीर में पुराने घी की मालिश करके खरेंटी की छाल, नीम की छाल, वैजयन्ती की छाल, अर्जुन वृक्ष की छाल, बकायन, श्योनाक (अरलु), जामुन, वरना की छाल, कतृण, कपोतबङ्का (ब्राह्मी), अपामार्ग, पाढल, लाल सहिजना, काकजङ्घा, मालकाँगनी, कैथ की छाल; तथा बड़, पीपल, पारस पीपल, गूलर, पाकर, करञ्ज और कदम्ब की छाल—इन सबका काढा बना कर स्नान करावे। बालक को खूब साफ़ तथा एकान्त घर में रक्खे। वहाँ पर चारों तरफ़ बच, कूट, सरसों आदि औषधियों को बखेर कर सदैव-चौबीसों घण्टे अग्नि जलाए रक्खे। स्नान कराने के बाद गैंड़ा, बाघ, शेर और रीछ का सूखा चमड़ा और साँप की केंचुल—इनको जौकुट करके और घी में मिला कर धूप देनी चाहिए।

२—पूति-करञ्ज, दशाङ्गी, गूगल, सरसों, बच, भिलावा, अजवायन और कूट—सबको जौकुट कर घी मिला प्रतिदिन

तीन-चार बार घर में धूप देने से सब प्रकार के ग्रहों की शान्ति हो जाती है।

३—बच, हींग, वायविडङ्ग, सेंधानमक, गज पीपल, पाढ़, अतीस, सोंठ, मिर्च और पीपल—इन सबको समान भाग में लेकर जौकुट कर ले। इसमें घी मिला कर धूप देने से सब प्रकार की ग्रह-बाधा शान्त हो जाती है।

४—पीली सरसों, नीम के पत्ते, मूली की जड़, घोड़े का नाख़ून, बच, भोजपत्र—सबको समान भाग में लेकर कूट डाले। इसमें घी मिला ग्रह-पीड़ित बालक के समीप धूप देने से सम्पूर्ण ग्रह-बाधा शान्त होती है।

५—नीम के पत्ते, बकरी के रोम, काली मिर्च, तेजबल, दालचीनी, काकड़ासिङ्गी, बच, मधु, लहसुन, सरसों, साँप की केंचुल और हींग—इनकी धूप देने से बालकों की ग्रह-बाधा और अधिक रोना दूर होता है।

६—इन्द्रजव, बेलपत्र, सिरस की पत्ती, हल्दी, उड़द, छछून्दर की बीट—सब को कूट कर उसमें घी मिला कर धूप देने से बालकों की ग्रह-बाधा तथा साधारण ज्वरादि रोग शान्त होते हैं।

७—नीम के पत्ते, गूगल, बच, भेड़ के बाल, कूट और हाथी का नख—समान भाग में कूट कर उसमें घी और शहद मिला कर धूप देने से बालक की ग्रह-बाधा तथा अन्त्र ज्वरादि दूर होते हैं।

८—कुटकी, जौ, अपामार्ग के पत्ते, देवदारु, राल, नीम के पत्ते, छोटी बड़ी कटेली, बहेड़ा, बिनोला, मैनफल, सरसों, साँप की केंचुल, हींग, कुत्ते का सूखा मल, गाय की पूँछ के बाल, शरीर के रोम और सींग—इन सबको कूट-कूट कर बकरे के मूत्र में भिगो ले। इसको धूप में सुखा कर और घी में मसल कर रख ले। इसकी धूप बालकों के पास देने से सम्पूर्ण ग्रह-दोष शान्त हो जाते हैं।

९—अगर, कमलगट्टा, कुटकी, केशर, खस, छोटी इलायची, जटामाँसी, तेजपात, दारुहल्दी, दालचीनी, नागकेशर, नागरमोथा, मजीठ, मुलैठी, लौंग, शिलाजीत, शीतलचीनी, सफ़ेद चन्दन, सरिवन और हल्दी—प्रत्येक दो-दो तोले, काले तिलों का तेल दो सेर और गाय का दूध चार सेर लेवे। शिलाजीत और केशर को छोड़ कर सम्पूर्ण औषधियों को कूट कर और जल के साथ सिल पर पीस कर कल्क बना ले। फिर उसमें बची हुई दोनों औषधियो को मिला दे। फिर उस कल्क, दूध, तेल और चार सेर जल भी एकत्र मिला कर मन्दाग्नि से पकावे। जब तेल पक कर तैयार हो जाय, उतार छान कर रख ले। इस तेल के मर्दन करने से बालकों को ग्रह-बाधा नहीं सताने पाती। यदि जन्म-काल से ही इसका सेवन किया जाय तो ग्रह-बाधा का भय जाता रहता है। जिन मनुष्यों के बालक प्रायः सूतिका-गृह में ही ग्रह-बाधा से मर जाया करते हैं, उनको इस तेल से अवश्य

लाभ उठाना चाहिए। इसके सिवाय इसके सेवन करने से जीर्णज्वर, हृदय की घबराहट, मूर्च्छा, उन्माद और मस्तिष्क की कमजोरी दूर होती है। इसका नाम चन्दनादि तैल है।

९—ऊँट, गधा, गाय, घोड़ा, बकरी, भेड़, भैंस और हाथी का मूत्र आध-आध सेर, तिल का तेल एक सेर, जल चार सेर—सबको एक कड़ाही में डाल कर धीरे-धीरे पकावे। जब पक कर तेल-मात्र अवशेष रहे तो उसे उतार कर रख ले। इसका बालको के शरीर पर मर्दन करने से ग्रह-बाधा निर्मूल हो जाती है। इसका नाम मूत्राष्टक तैल है।

१०—अरणी, गम्भारी, बेल, अरलु, पाढल की छाल, रास्ना, नागरमोथा, शालपर्णी (सरिवन), कवरा या पाढ—पाँच-पाँच तोले लेकर कूट डाले और चार सेर जल में पकावे। चौथाई जल रहने पर उतार-छान कर रख ले। अनन्तमूल, इन्द्रजौ, काली मिर्च, चित्रक, दुधिया, देवदारु, पाढ़, पीपरामूल, पीपल, बायबिडङ्ग, मुलैठी, सोंठ और हींग—डेढ़-डेढ़ तोले लेकर कूट डाले और फिर इसको जल के साथ सिल पर बारीक पीस कर कल्क बनाले। फिर यह कल्क और उपरोक्त क्वाथ, चार सेर जल और एक सेर गाय के घी में मिला कर मन्द-मन्द अग्नि से पकावे। घी मात्र अवशेष रहने पर उतार-छान कर रखले। इस घी को खिलाने तथा शरीर पर मर्दन करने से सम्पूर्ण प्रकार की ग्रह-बाधा का भय जाता रहता है।

११—अनन्तमूल, कुलञ्जन, ब्राह्मी, शङ्खपुष्पी, काली सरसों, बच, अश्वगन्ध और तुलसी—इनको समान भाग में सब मिला कर पाव भर ले। सब औषधियों को जल के साथ पीस कल्क बना ले। फिर इसमें चार सेर जल और एक सेर गाय का घी मिला कर मन्दाग्नि से पकावे। घी मात्र अवशेष रहने पर उतार छान कर रख ले। इस घी के पिलाने और मालिश करने से सम्पूर्ण ग्रह-दोष शान्त होते हैं।

१२—रात्रि के समय पूतिकरञ्ज, बड़, पीपल, गूलर, पाकर और पारिस-पीपल की छाल, तथा पत्ते; और बबई, तुम्बी, इन्द्रायण, अरलु, शमी, बेल, कैथ की छाल लावे। इन सबको समान भाग लेकर चौगुना जल डाल कर क्वाथ बना ले। चौथाई जल शेष रहने पर उतार-छान कर बालक को स्नान करावे। इससे सम्पूर्ण ग्रह-दोष मिट जाते हैं।

१३—किसी प्रकार के ग्रह से पीड़ित होने पर बालक को मुरामाँसी, बच, कचूर, हल्दी, दारुहल्दी, छारछरीला, चम्पा, नागरमोथा, कुड़ा—इन औषधियों के क्वाथ में स्नान कराना चाहिए। इसको "सर्वौषधि-स्नान" कहते हैं। यदि इस क्वाथ से प्रत्येक सप्ताह एक दिन स्वस्थ बालक को स्नान कराया जाय तो उसे किसी प्रकार की ग्रह-बाधा होने का डर नहीं रहता।

यहाँ तक सामान्य ग्रह-बाधा की चिकित्सा बतलाई

गई। यदि बालक किसी विशेष ग्रह की बाधा से पीड़ित हो तो उसकी चिकित्सा उसी ग्रह के अनुसार करनी चाहिए। भिन्न-भिन्न ग्रह-बाधाओं की चिकित्सा-विधि नीचे लिखी जाती है:—

स्कन्द-ग्रह की चिकित्सा—वात-नाशक औषधियों, जैसे सम्भालू, आक, एरण्ड, रास्ना, असगन्ध, सहिजना आदि के पत्तों का क्वाथ बना कर बालक को नित्य स्नान करावे। पीली सरसों, साँप की केंचुल, बच, कौआठोड़ी, ऊँट के बाल, बकरी के बाल और गाय के बाल—इनको घी में मिला कर धूप दे। देवदारु, रास्ना, असगन्ध, बिदारीकन्द, बाराही-कन्द, शतावर, मुलैठी, जावित्री, मूँगपर्णी, माषपर्णी—इन औषधियों के पाव भर कल्क को एक सेर घी और चार सेर दूध में पका कर घी तैयार कर ले। इसे बालक को प्रति-दिन सेवन करावे। गिलोय, अर्जुन, छोटी कटेरी, बेल की छाल, शमी (जाँड) और इन्द्रायण की जड़—इनकी माला बना कर बालक को पहिनावे। इन चारों उपायों के यत्नपूर्वक करने से स्कन्द-ग्रह की बाधा दूर होती है।

स्कन्दापस्मार की चिकित्सा—बेल की छाल, सिरस, गोरोचन, सफेद तुलसी, पाढ़, मजीठ, मरुआ-सुगन्धि, कत्तृण-राई, सफेद बबई, कायफल, अजवायन, कसौंदी, सेई वृत्त, बायबिडङ्ग, निर्गुण्डी (सम्भालू), कचनार, गूलर, खरेंटी, मकोय और कुचला—इनका क्वाथ बना कर बालक

को स्नान करावे और पूर्वोक्त मूत्राष्टक तेल की शरीर में मालिश करे। बड़, गूलर, पीपल, पाकर और पारिस पीपल के चार सेर क्वाथ में असगन्ध, शतावर, बिदारीकन्द, बाराहीकन्द, गिलोय, मूँगपर्णी, माषपर्णी, पद्माक, वंशलोचन, काकड़ासिङ्गी, पुण्डरिया (स्थल कमल), जावित्री, मुलैठी और मुनक्का—इनका पाव भर कल्क बना कर मिलावे। फिर इसमें एक सेर घी, चार सेर जल मिला कर पकावे। इस घी को प्रतिदिन बालक को खिलावे। बच और हींग मिला बालक के शरीर में उबटन करे तथा गीध और उल्लू का सूखा मल तथा बाल, हाथी का नख, बैल के रोम और घी—इनकी धूप दे।

नैगमेय (मेषाख्य) ग्रह की चिकित्सा—फूल प्रियङ्गु, देवदारु, अनन्तमूल, सौंफ़, केवड़ी मोथा—इनका पाव भर कल्क पाव सेर तिल का तेल और दो सेर दही का पानी (तोर)—इन सबको मिला कर पका ले। इस तेल को बालक के शरीर में मालिश करके, बेल की छाल, अरणि, करञ्ज इनके काथ से स्नान करावे। बच, गिलोय, जटामाँसी, गोरोचन—इनको तावीज़ में भर कर हाथ या गले में बाँध दे। साथ ही स्कन्दापस्मार में लिखित उबटन शरीर में लगावे।

पितृ-ग्रह की चिकित्सा—नैगमेय ग्रह की तरह बालक को तेल की मालिश और स्नान कराने के बाद कछुवा, उल्लू और गीध की सूखी विष्टा में घी मिला कर धूप देवे।

शकुनि-ग्रह की चिकित्सा—बेंत, आम की छाल और कैथ—इनके क्वाथ से बालक को स्नान करावे। साथ ही उसके शरीर में नेत्रवाला, मुलैठी, ख़स, अनन्तमूल, कमल, पद्माक, लोध, प्रियङ्गु, मजीठ और गेरू—इन सबको जल के साथ बारीक पीस कर लेप कर दे। स्कन्द-ग्रह-चिकित्सा में लिखे हुए धूप को देवे और स्कन्दापस्मार में लिखित घृत का पान करावे। शतावर, छोटी कटेली, इन्द्रायण की जड़, नागदौन, लक्ष्मणा बूटी, सहदेई और बड़ी कटेली—इनको तावीज़ में रख कर हाथ या गले में बाँध देवे।

पूतना-ग्रह की चिकित्सा—कपोतबङ्का (ब्राह्मी), अरलु, वरणा, नीम, कोयल—इनका क्वाथ बना कर बालक को स्नान कराना चाहिए। कूट, तालीसपत्र, खैर की छाल, विजयसार, अर्जुन, कटहल, बेर की मिङ्गी, मुर्गी के अण्डे के छिलके, पीली सरसों—इनको जौकुट करके तथा घी मिला कर धूप देनी चाहिए। कौआठोड़ी, कुँदरू, घुमची, बच आदि को तावीज में भर कर या माला बना कर पहिनावे। क्षीरकाकोली, गोरोचन, हरताल, मैनशिल, कूट, राल—इनके कल्क में सेर भर गाय का घी पका कर, वंशलोचन तथा शहद के साथ नित्य-प्रति सेवन करावे। साथ ही कूट, तालीस-पत्र, खैर, चन्दन, विजयसार, देवदारु, बच, हींग, कदम्ब, इलायची, सम्भालू के बीज—इनकी धूनी दे।

शीतपूतना की चिकित्सा—नागरमोथा, देवदारु, कूट,

और सर्वगन्धि औषधियों के पाव भर कल्क में दो सेर गोमूत्र, दो सेर बकरे का मूत्र और एक सेर तेल डाल कर पकावे। इस तेल को बालक के शरीर में मालिश करे और पूर्वोक्त तिक्त वृक्षों के क्वाथ से स्नान करावे। फिर कुटकी, नीम, खैर, ढाक और अर्जुन की छाल का चार सेर क्वाथ बना उसमें चार सेर दूध और सेर भर घी डाल कर पकावे। इस घी को प्रतिदिन बालक को खिलावे। गीध और उल्लू की विष्ठा, साँप की केंचुल और नीम के पत्ते—इनकी धूप देवे। घुमच ,खरेंटी और कौआठोड़ी की तावीज़ पहिनावे।

अन्धपूतना-ग्रह की चिकित्सा—तिक्त रस वाले वृक्षों (पटोलपत्र, छोटी कटेली, गिलोय और अडूसा यह पाँच चीज़ तिक्त कही जाती हैं) के पत्तों के क्वाथ से बालक को स्नान करा के सम्पूर्ण शरीर में और आँखों में ठण्डे और सुगन्धित द्रव्यों का लेप करना चाहिए। विशेष कर नेत्रों में गाय के घी का तर्पण प्रयोग करना हितकारक है। फिर मुर्ग़े की विष्ठा और बाल, साँप की केंचुल, पुरानी फटी हुई पहिनने की धोती का कपड़ा—इन सबकी धूप देवे। पीपल, पीपरामूल, असगन्ध, शतावर, विदारीकन्द, बाराही-कन्द, मुलैठी, जावित्री, मूँगपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी तथा छोटी कटेली—इनके कल्क को चार सेर जल तथा एक सेर घी के साथ पका कर घी तैयार कर ले। इस घी को नित्य-प्रति बालक को खिलाना चाहिए।

मुखमण्डलिका-ग्रह की चिकित्सा—कैथ, बेल, अरलु, अडूसा, एरण्ड-छाल, पाढ़—इनका क्वाथ बना कर स्नान करावे, और असगन्ध तथा भाँगरे के चार सेर रस में एक सेर तेल पका कर उसकी शरीर में मालिश करे। बच, राल, कूट, इनको घी में मिला कर धूप देवे।

रेवती-ग्रह की चिकित्सा—कूट और राल के कल्क का तेल में मिला कर पका ले और इसकी बालक के शरीर में मालिश करे। असगन्ध, काकड़ासिङ्गी, अनन्तमूल, पुनर्नवा, माषपर्णी, विदारीकन्द—इनके क्वाथ से बालक को स्नान करावे। लाख, नरसल, सफ़ेद कदम्ब, धवलकड़ी, साल (छोटे पत्तों का) अर्जुन, सलेई वृक्ष और तेंदुआ—इनका और पूर्वोक्त काकोल्यादि-गण का कल्क घी में मिला कर पकावे। इस घी को नित्य बालक को खिलाना चाहिए। जटामाँसी, कुलत्थ और शङ्ख-चूर्ण को बारीक पीस कर बालक के शरीर में प्रतिदिन लेप करना चाहिए। दोनों समय गीध और उल्लू की विष्ठा, अजवायन, जौ, इन्द्रजौ और घी—इनकी धूप देवे।